जैनेन्द्र के कथा साहित्य का अनुशीलन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध पर्यवेक्षक

डॉ० कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया

प्रवक्ता हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

शोध छात्र

जय करण सिंह

४३ सुभाष नगर, उरई
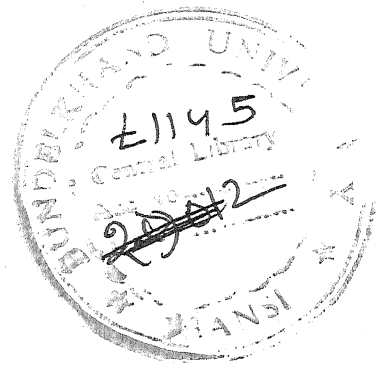
१९९३

आमुख

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द के पश्चात् जो नयी चेतना आयी उसके संवाहकों में जैनेन्द्र कुमार अग्रणी है । प्रेमचन्द्र से प्रभावित होकर जैनेन्द्र कथा साहित्य के क्षेत्र से आए और कालानतर में गांधीवादी विचारों और मानवीय संवेदनाओं के प्रस्तोता के रूप में उभरे । अपनी सामाजिक एवम् राजनीतिक चिन्तनधारा में जहां जैनेन्द्र गांधीवाद से सम्पृक्त है, वहीं उन्होंने मानवीय संवेदना को मनोवैज्ञानिक सन्दर्भो से जोड़कर प्रस्तुत किया है । इस प्रकार हिन्दी के मनोवैज्ञानिक कथाकार के रूप में वे अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के साथ बृहत्त्रयी में आते हैं ।

इस प्रकार जैनेन्द्र कुमार युगीन राजनीतिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य के प्रति पूर्णतया सजग मनोवैज्ञानिक कथाकार है । मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति एवम सामाजिक सजगता के कारण ही उनके कथा साहित्य में व्यक्ति एवं समाज दोनो प्रतिबिम्बित हुए हैं और यही कारण है कि जैनेन्द्र वैयक्तिक आत्म पीड़ा के सिद्धान्त परचलते हुये भी सामाजिकता का पूरा अहसास करते है और भारतीय जन और मन के पारसी कथाकार के रूप में सामने आते हैं । उनके ये दोनो रूप इतने रचे बसे हुए है कि जैनेन्द्र का कथाकार कभी कभी पूर्णतया दार्शनिक बन जाता है ।

मध्यवर्गीय चेतना एवं नारी के अन्तर्मन को उजागर करने वाले जैनेन्द्र के कथा साहित्य में नारी के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना नहीं वरन् उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की निमार्ण प्रक्रिया है उसकी अस्मिता की तलाश है इसी सन्दर्भ में जैनेन्द्र नारी मन के अग्रणी कथाकार है । आधुनिक सन्दर्भो में मध्यवर्गीय परिवारों में नारी जागृति की जो लहर आयी है, वह केवल शिक्षा का परिणाम नहीं है, वरन नारी के अवचेतन में चल रही उथल पुथल का उबाल है । जैनेन्द्र के नारी पात्रों में इस उथल पुथल का पूरा चित्रण है । इसलिये जैनेन्द्र युगीन संदर्भो से जुडे एक सशक्त कथाकार के रूप

में सामने आते है ।

जैनेन्द्र कथा साहित्य में कथ्य एवं संवेदना के साथ ही शिल्प के क्षेत्र में परिवर्तन मिलता हे । प्रेमचन्दीय परम्परा की किस्सागोई को वैचारिक सन्दर्भ देते हुए जैनेन्द्र ने कथाभाषा को परिष्कृत किया है । भाषा का आभिजात्य कथा साहित्य में जैनेन्द्र को प्रेमचन्दीय परम्परा से अलग करता है । वे कथ्य के अनुकूल भाषा को प्रयुक्त करते हुये न तो आग्रही बनते है, न पूर्वाग्रह से ग्रस्त होते है । मनोविज्ञान भी जैनेन्द्र के कथ्य की सहजता को बाधित नहीं करता । इस प्रकार जैनेन्द्र हिन्दी कथा साहित्य की दशा ओर विषय दोनो दृष्टियों से प्रेमचन्द्र और परवर्ती कथा साहित्य के मध्य एक सशक्त कड़ी है ।

जैनेन्द्र के बहुआयामी कथा सन्दर्भो का अनेकशः विवेचन हुआ है किन्तु उनके कथा साहित्य को बिन्दु मानकर उसको परम्परित कथा समीक्षा एवम् नए मानकों के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन कायह प्रयास मात्र अनुधावन नहीं वरन् कथा साहित्य के समस्त मानकों के परिशीलन का प्रयास है । विस्तारमय से उनके उपन्यासों को ही विशेष रूप से केन्द्र बिन्दु बनाकर इस प्रबन्ध जैनेन्द्र के साहित्य को कथा-समीक्षा सिद्धान्तों के आधार पर आंकलित करने का प्रयास हुआ है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है । प्रथम अध्याय में जैनेन्द्र की युगीन पृष्ठभूमि एवम उस परिपार्श्व की प्रस्तुति हुयी है जिससे कथाकार को प्रेरणा मिली । इसी के साथ रचनाकार के व्यक्तित्व एवम् जीवनवृत्त को अनुसंधायित करने का प्रयास किया गया है क्योंकि युग एवं परिवेश रचनाकार की प्रेरणा के प्रमुख केन्द्र बनते है । इसमें जैनेन्द्र की चिंतन धारा के क्रमिक विस्तार का परिचय भी मिलता है ।

प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में जैनेन्द्र की रचनाओं का विंहगावलोकन करते हुए उनके समग्र साहित्य का वर्गीकरण किया गया है । इस अध्याय में जैनेन्द्र के उपलब्ध साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुये उनकी कथायात्रा के प्रत्येक पडाव का रेखांकन किया गया है ।

तृतीय अध्याय में जैनेन्द्र के उपन्यासों के कथ्य औरस्वरूप और उनकी संवेदना के बिन्दुओं को विवेच्य बनाया गया हे । इसके साथ ही उसके चरित्र योजना का विश्लेषण भी किया गया हे । जैनेन्द्र के युग में कथानक की इतिवृत्तात्मकता क्षीण होने लगी थी और चरित्र योजना के साथ कथ्य सम्पृक्त होता गया है । इसीलिए कथ्य एवं चरित्र सृष्टि का पर्यालोचन प्रस्तुत अध्याय में हुआ है ।

चतुर्थ अध्याय में जैनेन्द्र के कथा साहित्य में प्रस्तुत समाज की स्थिति, उसके घात प्रतिघात, रूढियों और परम्पराओं के व्यामोह से उभरते नए समाज की निर्माण प्रक्रिया औरसमाज के विभिन्न वर्गो और उनके सामंजस्य एवम संघर्ष आदि का चित्रण किया गया है । आधुनिक जीवन मूल्यों और विघटित सामाजिक एवम् पारिवारिक स्थितियों का उद्घाटन भी इसी क्रम में किया गया है ।

प्रबन्ध का पचंम अध्याय जैनेन्द्र के कथा साहित्य में आए चरित्रों की मनोवैज्ञानिक समीक्षा से सम्पृक्त है । जैनेन्द्र मनोविज्ञान से प्रभावित है । उन्होने आत्मपीड़ा के सिद्धान्त को स्वीकार किया हे और उनके अधिकांश चरित्र मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर खरे उतरते हैं । ऐसे मनोवैज्ञानिक प्रतिदर्शो की विवेचना पंचम अध्याय में हुयी है ।
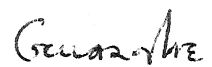
षष्ठ अध्याय में जैनेन्द्र के राजनीतिक और आर्थिक चिन्तन का विवेचन किया गया है । महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन और उसकी परिणतियों से अवगत जैनेन्द्र ने भावी भारत की कल्पना

प्रारम्भ कर दी थी । इसीलिए उन्होंने राजनीतिक सन्दर्भों पर स्पष्ट रूप से विचार किया है, जिसका विश्लेषण षष्ठ अध्याय में हुआ है ।

प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में जैनेन्द्र के कथा साहित्य की कथा भाषा और शिल्पगत प्रयोगों की समीक्षा का प्रयास हुआ है । प्रेमचन्द परवर्ती कथा भाषा के प्रारम्भिक सोपान जैनेन्द्र है, जिसका विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है ।

अष्टम अध्याय में जैनेन्द्र जी की सुदीर्घ कथा यात्रा परपड़े प्रभावों और उनसे प्रेरित कथा सन्दर्भों की विवेचना हुयी है । उनके सहवर्ती रचनाकारों से तुलना करते हुये जैनेन्द्र की मौलिकता का उद्घाटन इस अध्याय में हुआ है और इसी के साथ हिन्दी कथा साहित्य के सन्दर्भ में जैनेन्द्र के प्रदेय को भी अनुशीलित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध गुरूवर डा0 कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया प्रवक्ता राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर के सुयोग्य निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । उनके आद्योपान्त सहयोग के लिये मैं हार्दिक आभारी हूँ । उनके अतिरिक्त उन सभी गुरूजनों एवं मित्रों के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी शुभकामनायें मेरे साथ रहीं हैं ।

[जय करण सिंह]

विषय सूची

(ख) बालमनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

(ग) समाज की मनोविश्लेषिकी

(घ) फ्रायड का सन्दर्भ और प्रयोग

(ङ) एडलर और युग का प्रभाव

(2) अन्तः क्रियायें एवम् अन्तर्द्वन्द्व

षष्ठ अध्याय कथाकार जैनेन्द्र के साहित्य में राजनीतिक एवं आर्थिक चिन्तन

(1) राजनीतिक चिन्तन

(क) राष्ट्रीय पुनर्जागरण का प्रभाव

(ख) गांधीवादी चेतना

(ग) गांधीवाद की परिणतियां

(2) आर्थिक चिन्तन

(क) ज्ञानोदय

(ख) नगरीकरण और आधुनिक बोध

(ग) श्रमिक वर्ग

(घ) आर्थिक वैषम्य

(ङ) आधुनिकता

सप्तम अध्याय जैनेन्द्र के कथा साहित्य में भाषा का स्वरूप :

(1) शब्द योजना

(क) शब्द शक्ति

(ख) गुण

(ग) वर्णन शैलियां

(घ) वाक्य रचना

(2) सूक्तियां

(3) अन्य भाषाओं के शब्द

कथाकार - जैनेन्द्र कुमार : सन्दर्भीय व्यक्तित्व

युगीन पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में

युगीन पृष्ठभूमि :-

साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि माना जाता है । वह अपने युग की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है । फलस्वरूप उसकी कृतियों में युगीन परिस्थितियों की स्पष्ट छाप पाई जाती है । जैनेन्द्र सजग कलाकार हैं । उनकी कृतियों में उनके युग की परिस्थितियों का गहरा प्रभाव है । जैनेन्द्र के सामाजिक विचारों को समझने के लिए उनके युग की परिस्थितियों को जान लेना अत्यन्त आवश्यक है । साहित्यकार एवं उसके युग की परिस्थितियों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के विचार उल्लिखित हैं - "साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है । जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है और विशाल आत्मा अपने देश - बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है एवम् इस तीव्र विकलता में वह रो उठती है । पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है । वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहती है ।"[1]

लेखक अपने युग की देन होता है - इस उक्ति का प्रतिपादन शरतचन्द्र ने अपनी रचनाओं में किया है । जब गंभीरता से लोग उनसे उनके जीवन के विषय में चर्चा करते हैं तो वे कहते हैं, "देखो लेखक के व्यक्तिगत जीवन को लेकर परेशान होने से क्या लाभ । वह लेख है इसलिए अपने जीवन की सब बातें सबको बतानी होंगी । इसका आखिर क्या अर्थ है,

---

1- इस अप्रैल 1932, पृष्ठ - 40

उसकी रचनाओं के भीतर से उसका जितना परिचय मिल सकता है, उसी को लेकर संतुष्ट होना उचित है । यही लेखक का सच्चा परिचय है । इसलिये मैं कहता हूँ, लेखक का व्यक्तिगत जीवन और उसका लेखक जीवन दोनों एक ही नहीं होते । किसी भी कारण से इन दोनों को मिला देना उचित नहीं है । यह जान लो कि मैं अपनी रचनाओं में जितना अपने को व्यक्त कर सका हूँ उतना ही मैं हूँ । पाठकों के लिए मेरा उतना ही परिचय काफी है ।"[1]

जैनेन्द्र जी की भी मान्यता है कि "लेखक के व्यक्तिगत जीवन में न आकर उसकी रचनाओं में उसे ढूंढ़ने का प्रयास करना चाहिये ।"[2]

राजनीतिक :-

हिन्दी प्रारम्भिक उपन्यासों में प्रमुख रूप से उपन्यासकारों का उद्देश्य सामाजिक जीवन का चित्रण करना रहा है । अतः उनके उपन्यासों में राजनीतिक जीवन की अभिव्यक्ति सामाजिक जीवन के अंग रूप में ही हो पाई है । बाद में राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना का मूल्य कमजोर पड़ गया तथा उसकी जगह राष्ट्रीय भावना के मूल्य ने ले लिया है । भारतीय समाज ने महसूस किया कि राष्ट्रीय भावना की शून्यता में कोई भी राष्ट्र असुरक्षित हो सकता है । राष्ट्रीयता को बनाये रखने के लिए जाति, वर्ग, प्रान्त इत्यादि की संकुचित भावनाओं का उत्सर्ग करना पड़ता है । राष्ट्रीय हित में व्यक्ति, वर्ग, समूह प्रान्त इत्यादि के हितों का लक्ष्य राष्ट्रीयता की भावना के आधार पर ही होता है ।

जैनेन्द्र जी का मूलउद्देश्य राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक न होकर मनुष्य के आन्तरिक पक्ष को प्रकट करना है । अतः उनके औपन्यासिक

1- आजकल, मार्च 1960, पृष्ठ - 28 (शरत बाबू - विष्णु प्रभाकर) ।

2- जैनेन्द्र जी से डा0 रमेश जी, की भेंटवार्ता, पृष्ठ - 78 (जैनेन्द्र हिन्दी के शरत) ।

पात्र राजनीतिक मूल्य की अपेक्षा वैयक्तिक मूल्य की प्रतिस्थापना या मूल्य संक्रमणता की स्थिति से गुजरते हैं । उनके उपन्यासों में जिस क्रान्तिकारी चेतना को देखने का अवसर प्राप्त होता है, वह राजनीतिक परिपार्श्व की अपेक्षा प्रेम की असफलता के परिपार्श्व में ज्यादा प्रकट हुई है ।

सामाजिक :-

हिन्दी उपन्यास साहित्य भारतीय समाज में लगातार बदलते हुए जीवन मूल्यों के संघर्ष का दर्पण है । समाज में घटित सूक्ष्म से सूक्ष्म बदलावों का चित्रण उपन्यास में पाया जाता है । अतः वहां परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था और नवीन जीवन मूल्यों के खोज की आतुरता दिखाई पड़ रही है ।

परिवार सामाजिक संगठन का मूलाधार रहा है । प्राचीन समय में यह धारणा थी कि मनुष्य का महत्व उसके परिवार तथा समाज का सदस्य होने में है । हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में संयुक्त परिवार की झांकी प्राप्त होती है । आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव के साथ ही संयुक्त परिवार विषयक धारणाओं में भी बदलाव आया तथा संयुक्त परिवार के प्रति मनुष्य की अनास्था बढ़ने लगी ।

समाज में कुछ ऐसे मूल्य भी विद्यमान रहे हैं जो समाज के साथ बदल नहीं पाये तथा बदलते समय में उपयोगी सिद्ध नहीं हुए हैं । पर्दा - प्रथा, सती - प्रथा, दास - प्रथा, दहेज - प्रथा, अस्पृश्यता इत्यादि ऐसी ही प्रथाएं हैं । विभिन्न समाज सुधारकों ने इन बुराइयों को दूर करने एवम् इनके प्रति निर्मित परम्परागत मूल्यों को तोड़ने का प्रयत्न किया है । प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यासों में ऐसे मूल्यों के चित्रण की प्रवृत्ति पायी जाती है । इसके स्तर सामाजिक मूल्यों में शादी विषय बहुत प्राचीन मूल्य हैं । इनमें देशकाल की परिस्थिति के अनुरूप बदलाव होता आया है । हिन्दी के शुरू के उपन्यासों

में वैवाहिक चुनाव के सन्दर्भ में परम्परागत मूल्यों को समर्थन प्राप्त होता है, जिसमें शादी नियामक माता - पिता माने जाते हैं । शादी के परम्परागत मूल्यों में विधवा - विवाह, अन्तर्जातीय विवाह तथा विवाह विच्छेद की कल्पना को कोई स्थान नहीं मिला था । शादी को आत्मिक सम्बन्ध, जन्म - जन्मान्तर का सम्बन्ध और न टूटने वाला सम्बन्ध स्वीकार किया जाता था, इसीलिए "सुनीता" में श्रीकान्त का "कल्याणी" की कल्याणी पति के माध्यम से कलंकित होने पर वैवाहिक सम्बन्ध को बनाये रखने में सक्षम पाई गई है । विवाह के परम्परागत मूल्यों में बदलाव वर्तमान शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हुआ । प्रेम - विवाह के मूल्य को समर्थन प्राप्त हुआ, जिसमें अभिभावक की धारणा गौण है । बाद में विवाह संस्कार के प्रति अनास्था प्रकट की जाने लगीं ।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती जा रही है । समाज के समस्त नियम, धर्म नारी के लिये ही बने हैं । इनके पालन में किंचित भी त्रुटि नारी कर बैठे तो कुलटा, पतिता के नाम से वह समाज में पुकारी जाती है । आर्थिक दृष्टि से पुरूष पर निर्भर होने की वजह से उसे पुरूष के सभी अत्याचार सहन करने पड़े हैं । वह घर की लक्ष्मी, देवी तथा सामान्य सदस्या समझी जाती है, पर तभी तक जब तक वह पति के अत्याचारों को निर्विरोध सहन करती जाये । नारी जीवन सम्बन्धी इन परम्परागत आदर्शो में स्वातंत्र्य पूर्व युग से बदलाव शुरू हुआ तथा परम्परागत ग्रहस्थ और पतिव्रत के परिवेश में कुण्ठित स्त्री उच्च शिक्षा तथा स्त्री स्वातंत्र्य के प्रभाव में स्वच्छन्द जीवन जीने की तरफ बढ़ी । परम्परागत अबला ने बदलाव के परिवेश में सबला बनकर, पुरूष के सामने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का सृजन किया । "सुखदा" उपन्यास की मुख्य प्रत्यक्ष रूप में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करती है - "स्त्री के भी हृदय होता है ...... उसके बुद्धि भी होती है और निर्णय भी कर सकती है ।"[1]

1- जैनेन्द्र कुमार - सुखदा, पृष्ठ - 25

सामाजिक मूल्य जैनेन्द्र जी के अधिकांशतः सभी उपन्यासों में प्राप्त होता है । मनोविश्लेषणवादी चिन्तन से प्रभावित होने की वजह से उनके उपन्यासों में बाहरी परिवेश की अपेक्षा आन्तरिक चारित्रिकता पर बल दिया गया है । समाज तो उनमें सांकेतिक संगठन के लिए ही प्रयुक्त होता है । उनके औपन्यासिक चरित्र समाज से ज्यादा अपने हैं । जिनके अपने परिवेश हैं, अपने निजत्व हैं, अपने जीवन - मूल्य हैं, अपनी दृढ़ता है । जिसमें सामाजिक स्तर पर वे अपनी अर्हता को प्रतिष्ठित करने में पूणरूपेण सक्षम है ।

आर्थिक :-

समाज का सम्पूर्ण ढांचा अर्थ - व्यवस्था पर ही निर्भर करता है, अतः किसी समाज को पूर्ण रूप से समझने के लिए उसकी आर्थिक स्थिति का अध्ययन आवश्यक होता है । साहित्य समाज से सम्पृक्त होने की वजह से समाज की अर्थ व्यवस्था को भी प्रकाश में लाता है । आधुनिक समाज में अर्थ की महत्ता लगातार बढ़ती जा रही है । अमीर - गरीब का अन्तर कम होने की अपेक्षा बढ़ता ही जा रहा है । नगरीय - जीवन की मध्यम वर्ग विश्रृंखलित हो रहा है । समाज में पूंजीपति वर्ग सबसे अधिक मजबूत है । समाज पर इसी का नियंत्रण है । मूल्य निर्धारण में भी मध्यम वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान पाया जाता है ।

आज समस्त संसार में अर्थ - संघर्ष व्याप्त है । अधिक से अधिक अर्थ प्राप्ति के नियन्त्रित व्यक्तियों में शब्दों, में राष्ट्रों में, वर्गो में परस्पर द्वन्द्व चल रहा है । अर्थ की सम्पन्नता से शक्ति एकत्रित होती है । अतः आर्थिक संघर्ष तीव्र गति से बढ़ रहा है । फलस्वरूप आर्थिक मूल्यों के चिन्तन की प्रक्रिया भी स्पष्ट होती जा रही है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों का उल्लेख मूलतः व्यक्ति चेतना है । अतः अर्थगत मूल्य चेतना का विस्तृत परिवेश उनमें नहीं पाया जाता है, परन्तु

कहां - कहां अर्थ मूल्यगत समीक्षा प्राप्त हो जाया करती है । जैनेन्द्र जी की धारणा है कि - "पैसे बिना इस सभ्यता में सांस लेना मुश्किल हो गया है । पैरा भी अपना - अपना । विवाह हो सकता है, पर पति का पैसा पति का रहेगा, पत्नी का पैसा पत्नी का । इस पैसे ने स्त्री के लिए ही नहीं, विद्वान के लिए, सबके लिए, यह विवशता पैदा कर दी है कि वे बाजार में अपनी विद्या, बुद्धि को बेंचे ओर जीने का उपाय सोंचे इससे वर्तमान पूंजीवादी अर्थ - व्यवस्था का परिचय प्राप्त होता है । पैसे को जीवन का महत्वपूर्ण सार मानते हुए मृणाल कहती है - "वह जानता है कि पैसे की दुनियां है ..... जो बचेगा वही आड़े दिन काम आएगा ।"[1]

सांस्कृतिक :-

सांस्कृतिक मूल्यों में नैतिकता, धर्म के प्रति आस्था, आध्यात्मिकता मानवीयता, त्याग एवम् बलिदान तथा प्रेम के मूल्य अब तक आदर्श रहे हैं, परन्तु जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों की संक्रमणशील परिस्थितियाँ विस्तृत रूप में प्राप्त होती है । मनोविज्ञान तथा यथार्थवाद के आधार पर प्राचीन नैतिक मूल्य कमजोर होकर पाप पुण्य का भेद समाप्त हो गया । वर्तमान कालीन भौतिकवादी समाज में धर्मगत चिन्तन किस रूप में उपलब्ध है, उसमें परम्परागत संकीर्णता अविद्यमान है । अतः धर्म का अर्थ एवम् उसकी परिव्याप्ति का क्षेत्र भी बदल गया है एवम् दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है कि परम्परित धर्मगत मूल्यों से उतने जुड़े हुए नहीं हैं एवम् वे धर्म तथा धर्म के प्रति मनुष्य की आस्था को नवीन दृष्टि से देखते हैं । जैनेन्द्र जी मानते हैं कि - "धर्म का विचार कतिपय लोगों के आने पर निर्भर होना चाहिये । अतः सबके दोषों के प्रति क्षमा और सहानुभूति का भाव रखते

---

1 - जैनेन्द्र कुमार : समय, समस्या सिद्धान्त : पृष्ठ - 170

हुए हम अपनी धर्मनिष्ठा में दृढ़ रह सकते हैं ।"[1] इसीलिए जैनेन्द्र जी की औपन्यासिक रचनाओं में धर्मगत मूल्य संक्रमणता के स्तर पर मानव धर्म की अभिव्यंजना हुई है । "त्यागपत्र" की मृणाल देहदान को नारी धर्म मानती है, सती का आदर्श[2] समझती है । "कल्याणी" उपन्यास की कल्याणी भी मनुष्य के धर्म का समर्थन करती है - मेरा जगन्नाथ तो सब कहीं है .... किसी को घर से निराश लौटाकर मैं मुंह में दाना डालूँ तो मेरा जगन्नाथ मुझे क्या कहेगा ? नर के अनादर में कहां नारायण की पूजा है ।"[3] "जयवर्धन में इला, जय की व्याहता न होकर भी जय के प्रवासकाल में अन्न का दाना तब तक मुंह में नहीं डालती जब तक फोन के माध्यम से जय की कुशल क्षेम मिल न जाये । किन्तु "अनामस्वामी" की उदिता तो स्पष्ट शब्दों में परम्परागत धार्मिक मूल्यों का संक्रमण प्रस्तुत करती है - "मजहब ने हमें मूर्खता में डाल रखा है । वह सत्यानाश की जड़ है । मजहब है तब तक गुलामी है .... दुनियां जो झूठ और ईश्वर को सच मानकर तो दुनिया की तरक्की हो ही नहीं सकती ।"[4]

व्यक्तिगत मूल्यों की स्थापना के कारण जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में परम्परागत नैतिक मूल्यों की संक्रमणशीलता दिखाई देती है । जिनमें उचित अनुचित पाप - पुण्य एवम् मान स्वेच्छाचार आदि का वर्णन प्राप्त होता है । अश्लीलता के सन्दर्भ में जैनेन्द्र जी बहुत कुछ लिखा है एवम् अपने मतों को पर्याप्त स्पष्टता से प्रकट किया है । साधारणतः शरीर के प्रदर्शन को, या शरीर के नग्न रूप के चित्रण को अश्लील माना जा सकता है, परन्तु जैनेन्द्र जी की धारण है कि अश्लीलता का सम्बन्ध शरीर से कदापि नहीं है - देह

1- जैनेन्द्र : समय समस्या और सिद्धान्त : पृष्ठ - 487

2- जैनेन्द्र : त्याग पत्र : पृष्ठ - 55

3- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 69

4- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 94 से 95

से वीर्य से उसका (अश्लीलता का) सम्बन्ध नहीं, मन के मेल से उसका सम्बन्ध है और हम भारी भूल करेंगे अगर देह से चिपटा हुआ उसे देखेंगे .... नग्नता का चित्र सात्विक भी हो सकता है और वस्त्रों के अपार आवरणों में से अश्लीलता झलक सकती है । अश्लीलता कहीं बाहर नहीं है, वह तो मन के छल में है ।"[1]

जीवन रेखा :-

जन्म एवम् बाल्यकाल :-

जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 फरवरी, सन् 1905 को कौड़ियागंज नामक स्थान पर हुआ जो अलीगढ़ में स्थित है । इनके जन्म के दो वर्ष बाद ही पिता की मृत्यु हो गई थी, अतः वह अपने पिता के लालन - पालन एवम् प्रेम से वंचित रहे । अतः उनके लालन - पालन तथा उनकी शिक्षा - दीक्षा का भार उनकी माँ तथा मामा के कन्धों पर आ पड़ा । बालक जैनेन्द्र को अपना प्यार उड़ेलने के लिए घर में कोई न दीखता था । सौभाग्यवश जब इनके ममेरे भाई का जन्म हुआ तो इनकी खुशी का ठिकाना न था । अगर इनका वश चलता तो उसी वक्त उसे अपने पास ले आते क्या आश्चर्य कि उसे कुछ खिलाने में लग जाते । क्योंकि गुरूकुल में यह अधिकांशतः अपने प्रिय भाई को अपने प्यार भरे नेत्रों से निहारा करते थे तथा जब वह इनकी तरफ देखता था तो दोनों मुस्करा देते थे तथा फिर यह मुस्कान हंसी में बदल जाती थी । मामा महात्मा भगवानदीन द्वारा हस्तिनापुर में स्थापित गुरूकुल में जैनेन्द्र को प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त हुई । वहां उनका वास्तविक नाम आनन्दीलाल बदलकर "जैनेन्द्र" रखा गया तथा तत्पश्चात् कुमार शब्द जुड़कर "जैनेन्द्र कुमार" हो गया । जैनेन्द्र के मामा श्री महात्मा भगवानदीन ने ही जैनेन्द्र के संरक्षण का भार उठाया था एवम् इतना प्यार दिया था कि श्री जैनेन्द्र कुमार 15 वर्ष

1- कोहली : नरेन्द्र : उपन्यास सृजन और सिद्धान्त : पृष्ठ - 133

की उम्र तक यही नहीं जान सके कि ये मामा हैं या पिता । जैनेन्द्र जी की दो बड़ी बहने हैं । जैनेन्द्र जी के निर्माण में जितना भाग मां और मामा का है उससे कम उनकी बड़ी बहिन का भी नहीं है । इसके अलावा महात्मा भगवानदीन के चिन्तकपरक अध्यात्मोन्मुख व्यक्तित्व का जैनेन्द्र पर गहरा प्रभाव पड़ा है ।

शिक्षा - दीक्षा :-

जैनेन्द्र ने शुरू से ही तीव्र बुद्धि पाई थी । यद्यपि वह हर एक कक्षा में उत्तीर्ण होते रहे, फिर भी अन्य सहपाठियों के विपरीत लिखने एवम् खेलने में वह ज्यादा संकोचशील प्रकृति के थे । स्वयं जैनेन्द्र के शब्दों में - "एक भटके, निरीह बालक की तरह मेरे छुटपन के दिन गुजरे । मैं भौचक्का सा सब ओर देखता और कभी अपने लिए फैसला करने की जरूरत न समझता । अपनेपन का और अपनी जगह का मुझे बाहर और अन्दर चारों तरफ चक्कर में तैरती हुई ढब में मैं रखता था और दुनियां मुझे बाहर और अन्दर चारों तरफ चक्कर में तैरती हुई मालूम होती हो जिसमें कुछ मेरी समझ की पकड़ में आता न था ।"[1]

जैनेन्द्र का व्यक्तित्व इतना संकोची था कि वह एकान्त पसन्द करते थे । सन् 1918 में गुरूकुल से अलग होने पर उन्हें प्राइविट मैट्रिक की तैयारी के लिए बिजनौर भेज दिया गया । पर वहां से परीक्षा में सम्मिलित न होने पर अगले ही वर्ष उन्होने पंजाब से मैट्रिक की परीक्षा पास की । तत्पश्चात् उच्चतर शिक्षा की प्राप्ति के लिए जैनेन्द्र को बनारस विश्वविद्यालय भेज दिया गया । परन्तु सन् 1920 में कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन के प्रति अपनी सहानुभूति के कारण वे दो वर्ष में ही शिक्षा का परित्याग कर दिल्ली चले आये । बेकार होने के कारण लाला लाजपतराय के 'तिलक स्कूल आफ

1- जैनेन्द्र कुमार : सारिका : अगस्त 1963 : पृष्ठ - 9

पालिटिक्स" में प्रविष्ट हुए पर वहां मन नहीं लगा तथा तुरन्त ही छोड़ने पर बाध्य हो गये । जैनेन्द्र ने अपनी इस दशा का उल्लेख इन शब्दों में किया है - "चलिए ऐसे ही मैट्रिक हो गया और मैं कालेज में पहुँचा और कालेज भी छूट गया और मैं दुनियां में आ पड़ा । पर दुनिया से मेरी किसी तरह की जान - पहचान न थी । समुन्दर की लहरों पर तिनका तैरता है, क्योंकि हलका होता है । मुझसे भी कहीं, किसी तरफ से वजन नहीं था और बरसों लहरों पर मैं इधर - उधर उतराया किया ।"[1]

साहित्यिक जीवन :-

सन् 1920 में जैनेन्द्र जबलपुर में श्री माखन लाल चतुर्वेदी के निकट सम्पर्क में आये । श्री माखन लाल चतुर्वेदी जो कर्णवीर के तात्कालिक सम्पादक थे । वहां सुभद्रा कुमारी चौहान से उनका परिचय हुआ । जैनेन्द्र ने श्रीमती चौहान के प्रति असीम श्रद्धा का अनुभव किया । उन्हीं के साथ जैनेन्द्र ने कुछ समय विलासपुर में कांग्रेस के तत्वावधान में देश कार्य किया । वहीं सन् 1921 के अहमदाबाद के कांगेस अधिवेशन में पहुँचे परन्तु तभी जैनेन्द्र जी की माता जी उन्हें दिल्ली वापस लौटा लायीं । दिल्ली में माता जी की मदद से पूँजी का प्रबन्ध करके जैनेन्द्र ने साझेदारी में फर्नीचर का व्यापार किया । जो बाद में काफी सफल सिद्ध हुआ । परन्तु सन् 1923 में भगवान दीन जी के आह्वान पर जैनेन्द्र नागपुर पहुँचे । वहां चल रहे झण्डाके युद्ध में उन्होने अनेक पत्रों के संवाददाताओं का कार्य किया । परन्तु सरकार इस तरह के संवाददाताओं से नाराज थी । निष्कर्ष यह निकला कि उसी साल जैनेन्द्र एवम् उनके सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया मात्र तीन महीने ही जेल में रहे थे कि सरकार का सरदार पटेल से समझौता हो गया एवम् वह जेल से छूट गये । जेल से छूटने के पश्चात् तुरन्त ही जैनेन्द्र को व्यापार से भी छुटकारा मिल गया ।

1- जैनेन्द्र कुमार : सारिका : अगस्त 1963 : पृष्ठ - 9

कठिनाई से बीत रहा था । पुस्तकालय ही जैसे आश्रय था । यथासम्भव जैनेन्द्र ने ज्यादा से ज्यादा समय पुस्तकालय में व्यतीत किया । घर भी पुस्तकें सच्चाइयों से बचने का साधन थीं । "कुछ समय "मटरगस्ती" में व्यतीत होता था । मानसिक तनाव बढ़ता जाता था तथा वह आत्महत्या की बातें सोंचते रहते । ऐसी मनःस्थिति में उनके अन्दर का कहानी - लेखक उन्हें जीवित रहने के लिए आगे बढ़ा ।

इस आर्थिक दशा के कारण जैनेन्द्र ने अमिट मानसिक यातना का अनुभव किया । अपनी असमर्थता तथा अवस्था के कारण - "मैं बेहद अपने में डूबता जाता था ।" अपने युवावस्था की इन विषम परिस्थितियों ने जैनेन्द्र को आत्म हत्या के प्रश्न पर सोंचने को बाध्य किया । परन्तु मां उनके लिए एक सच्चाई थी । वृद्धा मां के विचार ने ही उन्हें आत्महत्या करने से रोक लिया, "ऐसी बेवसी में मैने लिखा और लिखने ने मुझे जीता रखा" वास्तव में उस समय जितना जैनेन्द्र के लिए पवित्र पलायन तथा क्षतिपूर्ति का साधन था । अपने अन्दर घुमड़ते हुए हीन भावनाओं आकांक्षाओं तथा जीवन - घातक विचारों को जैसे स्वलेखन में उन्होने हूबहू उतार दिया तथा एक तरह से निश्चित होकर सांस ली । तृतीय कहानी "खेल" विशाल भारत पत्रिका में छपी तथा उसके पारिश्रमिक स्वरूप चार रूपये का जब मनीआर्डर जैनेन्द्र के पास आया तो उन्हें ऐसा लगा कि "मेरे निकम्मेपन की भी कुछ कीमत है ।"

पुनः कुछ कहानियां और प्रकाशित हुईं एवम् 1929 में प्रथम उपन्यास परख प्रकाशित हुआ । उसी साल जैनेन्द्र की मां ने उनसे विवाह करने को कहा । जैनेन्द्र स्वीकार कर लिये तथा मां की पसन्द तथा प्रबन्ध पर जैनेन्द्र का विवाह भगवती देवी से विधि - विधान के साथ हुआ । अब तक आर्थिक परिस्थिति में विशेष अन्तर नहीं आया था । लेकिन अगले वर्ष ही परख पर जब 500/- रूपये का हिन्दुस्तानी अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ तो माँ - बेटे ने समझा कि लिखना हमेशा अर्थहीन तथा बेकार नहीं है ।

सन् 1927 में भगवानदीन जी का कश्मीर यात्रा करने का विचार हुआ, जैनेन्द्र जी साथ हो लिये तथा पृथ्वी के इस स्वर्ग को जैनेन्द्र ने देखा । सन् 1929 में "परख लिखा गया । परख के नायक सत्यधन जी कश्मीर यात्रा की घटना इसी व्यक्तित्व अनुभव पर आधारित है ।" व्यतीत उपन्यास में भी जयंत तथा चन्द्रा की कश्मीर यात्रा में भी इस अनुभव ने किंचित अभिव्यक्ति पायी है ।

कश्मीर से लौटे तो समस्या सामने आई कि काम - काज करने की । काम - काज कुछ नहीं था । नौकरी के लिये चतुर्वेदी जी ने कुछ आशा दिलाई परन्तु जैनेन्द्र वहां नहीं गये । कई दिनों पश्चात् माँ से कुछ रूपयों का प्रबन्ध करके नौकरी की तलाश में कलकत्ता पहुँचे । कई प्रयास करने पर भी सफल नहीं रहे । इससे पूर्व अपने पास की सम्पूर्ण पूंजी समाप्त हो जाये एवम् इस वजह कहकत्ते में भूखे मरने पर बाध्य हो जाये । जैनेन्द्र दस बारह दिन में ही दिल्ली लौट आने का वर्णन जैनेन्द्र के शब्दों में इस तरह है - "रूपयो मिले" और कलकत्ते में नौकरी की तलाश हुई । पच्चीस रूपये का काम मिल जाये तो बहुत है । पर पैसे टूटते रहे, नौकरी नहीं मिली । पक्का था कि लौटेंगे नहीं । माँ को तकलीफ देने से मर जाना अच्छा । पर बेटे के दूर परदेश में जाकर मरने में मां को कौन बड़ा सुख कहा जाता । इस्से पास के पैसे पूरी तरह निबटे कि मैं वैरंग वहीं मां के पास लौट आया ।[1]

जैनेन्द्र ने एहसास किया कि निराशा तथा असफलता उसके भाग्य में इत्यादि से अन्त तक सभी जगह लिखी है । उनके शब्दों में "ऐसे में बाइस तेइस वर्ष का हो आया । हाथ पैर से जवान, कैसे नादान । करने धरने लायक कुछ भी नहीं । पढ़ा तो अधूरा और हुनर से अनजाना दुनिया तब तिलस्म लगती, कि जिसके दरवाजे मुझ पर बन्द थे ।"[2] जीवन का एक एक क्षण

1- जैनेन्द्र कुमार : सारिका : अगस्त 1963 : पृष्ठ - 10

2- जैनेन्द्र कुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृष्ठ - 345

हिन्दुस्तानी अकादमी का पुरस्कार तथा उसके प्रभाव को जैनेन्द्र के शब्दों में इस प्रकार है "फांसी के बाद उपन्यास के नाम पर पहली किताब छपी परख । उस पर हिन्दुस्तानी अकादमी का पुरस्कार आ गया और मुझे बरबस साहित्य में जगह मिली । सच यह है कि मैं बेदह अनजान था । लोगों में अनजान का और सहित्य में एकदम अनाड़ी था ही । अकादमी वालों को यह तक मालूम नहीं हुआ कि यह आदमी कहां रहता है जहां इनाम भेजा जाये ?

मैं उस समय गुरूदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर से मिलकर लौट रहा था । साथ में नेता बनारसी दास चतुर्वेदी थे । उन्होने पुकार कर बताया कि तुम्हें इनाम मिला है, जैनेन्द्र ? मुझे खुशी हुयी और असल में इस बात की कि इनाम का मतलब रूपया होता है । सोचा कि चलो मां के मन को इस निखट्टू के बारे में सन्तोष होगा । लौटकर घर आया तो सबने कहा कि तुम्हें इनाम मिला सुनते हैं ।

"मैने कहा कि सुना मैने भी है ।"

"तो कहां है रूपया" —

"क्या मालूम, कब कहां, कैसे मिलेगा ?"

पांच सौ रूपये मेरे लिए आसमानी रकम थी । हाल मेरा यह था कि पास से ट्राम निकलती, तो मन मारकर रह जाता होता था कि पैसे होते तो हम भी ट्राम में बैठते । ऐसे में यकीन ही न होता था कि पांच सौ रूपया मिला है या मिलेगा ।"[1]

सन् 1930 में जब "नमक बनाओ" और "डांडी यात्रा" का आन्दोलन गांधी जी के नेतृत्व में चल रहा था तो दिल्ली के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण जैनेन्द्र को जेल जाना पड़ा । परन्तु जल्दी ही गांधी - दरबिन

1- सारिका : अगस्त : 1963 (जैनेन्द्र अपनी निगाहों में) : पृष्ठ - 11

पैक्ट हो जाने से 10-15 दिन से ज्यादा उनको जेल में नहीं रहना पड़ा । अभी तक जैनेन्द्र कांग्रेस के सदस्य नहीं थे । सन् 1932 में जैनेन्द्र ने इन्द्र विद्यावाचस्पति से कांग्रेस के साधारण स्वयं सेवक बनने की इच्छा जाहिर की । इन्द्र जी उन दिनों दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से थे । उसी साल के सत्याग्रह में से जैनेन्द्र को गिरफ्तार होना पड़ा । इस सिलसिले में उन्हें साढ़े सात महीने की सजा हो गई ।

सन् 1935 में प्रेमचन्द्र की 'हिन्दुस्तानी सभा" में भारत की अनेक भाषाओं के साहित्य के पारस्परिक परिचय एवम् संगम के उद्देश्य से जैनेन्द्र ने "भारतीय साहित्य परिषद" के निर्माण का प्रस्ताव रखने का प्रयास किया । परिषद की स्थापना गांधी जी की अध्यक्षता में इंदौर में हुई । इसका प्रथम अधिवेशन नागपुर में सन् 1936 में हुआ । काका कालेलकर एवम् के0 एम0 मुंशी इसके मन्त्री हैं ।

"हंस" की स्थापना में प्रेमचन्द्र के अलावा जैनेन्द्र की भी प्रेरणा थी । सन् 1936 में कुछ समय तक जैनेन्द्र प्रेमचन्द्र के साथ हंस के सह - सम्पादक रहे । फिर उपन्यासकार प्रेमचन्द्र जी की मृत्यु के बाद जैनेन्द्र के आग्रह पर शिवरानी प्रेमचन्द्र का नाम सम्पादिका के रूप में दिया गया । पर कुछ समय पश्चात् स्वयं जैनेन्द्र ने छह माह के लिये "हंस" का सम्पादन किया । सन् 1939 तक यद्यपि जैनेन्द्र के तीन और उपन्यास "सुनीता" (1935), "त्यागपत्र" (1937) व कल्याण (1939) पांच कहानी संग्रह - "फांसी (1929), वातायन (1930), नीलम देश की राजकन्या (1933), एक रात (1934), दो चिड़ियां (1935)", एवम् एक निबन्ध संग्रह "प्रस्तुत प्रश्न" (1936) प्रकाशित हो चुके थे परन्तु फिर भी जैनेन्द्र की आर्थिक परिस्थिति में बदलाव नहीं आया था । उनके शब्दों में तो "बेफ्रिक्री की रोटी तो कभी मिली नहीं ।

सन् 1939 से 1951-52 तक जैनेन्द्र ने कोई विशेष साहित्य का सृजन नहीं किया । सिर्फ एक - आध, फुटकर कहानी व निबन्ध लिखे ।

इसी समय में हुई चर्चाओं तथा वक्ताओं को लेकर गद्य - संग्रह एवं प्रश्नोत्तर के रूप में कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई । इस अवधि में जैनेन्द्र साहित्य - सृजन क्यों नही कर पाये ? इस पर रघुनाथ शरण झालानी का मत उल्लेखनीय है - "इधर कुछ समय से जैनेन्द्र की विचार - प्रणाली कमाई के विरूद्ध होती जा रही थी । वह अनुभव करते हैं कि समाज पर धन का राज्य है, धन वालों का अधिकार है, जबकि श्रम को महत्व दिया जाना चाहिए । वस्तुतः यह धन के अभाव की प्रतिक्रिया थी जिसे बुद्धि केवल पर औचित्य (जस्टिफिकेशन) दिया गया । क्रमशः धन के और कमाई के प्रति जैनेन्द्र में विशेष इतना अधिक बढ़ा कि जैनेन्द्र ने यह निश्चय कर लिया कि अब वह कमाना बिलकुल बन्द कर देंगे और चूँकि साहित्य - रचना से कमाई होती थी । अतः साहित्य लिखना एक प्रकार से सर्वथा बन्द हो गया । यह स्थिति सन् 1951-52 तक चलती रही ।"[1] इसी प्रकार का मत डा० पद्म सिंह शर्मा "कमलेश" ने दिया है, "लेखकों के साथ इस कमाई का योग उनके मन को ठीक नहीं लगा । पैसे की जरूरत तो रहती ही थी, लेकिन वह पैसा अनायास क्यों न आये-एवज देकर क्यों कमाया जाये ? कुछ इसी तरह के चक्कर में कमाई करने वाली कलम को उन्होने विश्राम दे दिया और वह जगह - जगह बोलने लगे ।"[2] उपर्युक्त 12-13 साल के समय में जैनेन्द्र को कार्य - काल क्या था ? इस सन्दर्भ में स्वयं जैनेन्द्र में भी विस्तार से सूचना प्राप्त नहीं हो पाई । जैनेन्द्र कहते हैं कि इस अवधि में कुछ अवधि उल्लेख्य घटा नहीं - "इस काल में जान - बूझकर कुछ नहीं बना । कारण मैं "कमाई के विरूद्ध हो गया था और मेरे लिखने का सम्बन्ध कमाई से नहीं है - यह निर्णय भीतर से स्पष्ट न आ पाता था । इसलिये कथा लेखक ईराद तक छोड़ना पड़ा ।"[3]

1- रघुनाथ शरण झलानी - जैनेन्द्र और उनके उपन्यास : पृष्ठ - 5

2- बांके बिहारी भटनागर - जैनेन्द्र : व्यक्ति, कथाकार और चिंतक : पृष्ठ - 14

3- डा0 रामदरश मिश्र : जयवर्धन की पहचान, पृष्ठ - 29, द्रष्टिव्य जैनेन्द्र की औपन्यासिक धारा - विजय कुलश्रेष्ठ ।

लेखक से वही विचार जैनेन्द्र जी ने भेंट - वार्ता में व्यक्त किये ।"[1] जब मैने उनका ध्यान रघुनाथ शरण झलानी के इस मत की ओर दिलाया - "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो भौतिक परिस्थितियों के प्रति जैनेन्द्र जी यह प्रतिक्रिया साधारण (नोरमल) और स्वस्थ्य नहीं कही जा सकती ।"[2] इस पर जैनेन्द्र जी का कहना था कि "मैं इसे अस्वस्थ्य तथा निराशावादी दृष्टिकोण को नहीं मानता ।"

सन् 1951 के पश्चात् जैनेन्द्र के उपन्यासों के प्रणयन का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ और क्रमशः सुखदा, विवर्त (1952), व्यतीत (1953), जय वर्धन (1956), एवम् मुक्तिबोध (1965), नामक उपन्यास सामने आये । इसके पश्चात् "अनन्तर" (1968) एवम् "अनामस्वामी" (1970) प्रकाशित हुआ । "सुखदा" धर्मयुग (1952), एवम् "विवर्त साप्ताहिक हिन्दुस्तान" (1953) में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए हैं । "मुक्तिबोध" आकाशवाणी के लिए लिखा गया था । यह साहित्य अकादमी द्वारा पांच हजार रूपये के पुरस्कार से सम्मानित हो चुका है । सन् 1951 में जैनेन्द्र में "पूर्वोदय प्रकाशन से जैनेन्द्र साहित्य के अन्तर्गत अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है ।

व्यक्तित्व के विविध आयाम :-

जैनेन्द्र के व्यक्तित्व पर दो व्यक्तियों की अमिट छाप पड़ी है । वे दोनों व्यक्ति उनकी मां एवम् मामा महात्मा भगवानदीन हैं । जैनेन्द्र ने अपनी मां के प्रति जो अपार श्रद्धा "माता जी"[2] शीर्षक लेख में व्यक्त की है उससे ज्ञात होता है कि मां के महान व्यक्तित्व का प्रभाव उन पर पड़ा है । दूसरा प्रभाव जैनेन्द्र पर अपने मामा का पड़ा है, जिनके सम्बन्ध में महात्मा भगवानदीन ने[3] शीर्षक निबन्ध में उन्होने माना है ।

1- भेंटवार्ता - 22 अप्रैल, 1975, जयपुर ।
2- रघुनाथ शरण झालानी - जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृष्ठ - 5
3- जैनेन्द्र कुमार : ये और वे : पृष्ठ - 142 (दृष्टव्य - माता जी)
4- जैनेन्द्र कुमार : ये और वे : पृष्ठ 137 (दृष्टव्य-महात्मा भगवानदीन)

जैनेन्द्र की रचनाओं में घटनाओं एवम् चरित्रों का जो संकोच पाया जाता है उसका मुख्य कारण उनका संकोची चरित्र है । साहित्य में यह संकोच अस्पष्टता एवम् रहस्य की सृष्टि करता है । "जैनेन्द्र कुमार की मौत" शीर्षक अपने संस्मरण में उन्होने अपने बार में लिखा है मिलने जुलने और दुनियां में राह बनाने का उनमें लियाकत न थी । वह चीज बिलकुल न थी जिसका असर रोज पड़ता है । ऐसे आदमी के पास कुछ सपने जरूर जमा हो जाया करते हैं पर सपनों में दम नहीं होता और असलियत के आगे छू मन्तर हो रहते हैं ।"[1] एक प्रख्यात पत्रकार तथा सम्पादक[2] कार एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होने जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व के बारे में अनेक संस्मरणों का विश्लेषण प्रस्तुत किया था एवम् कहा था - "जैनेन्द्र एक घोर अहंकारी व्यक्ति हैं जिनमें अपरिग्रह के स्थान पर धन के प्रति प्रबल आग्रह और नेतृत्व की तीव्र चाहना है, कि जैनेन्द्र साहित्यकार और सन्त दोनों से पहले राजनीतिक और डिप्लोमेंट है कि वह साहित्य के प्रति प्रमादी और एक "झटके हुए इंसान" हैं, दुख अधिक इसी बात का है कि प्रतिभा के बेजोड़ भण्डार शर्तियां जीनियस हैं । इस तरह जैनेन्द्र हिन्दी में चर्चा के अच्छे खासे विषय बने हुए हैं । कुछ लोगों ने उन्हें अहंकारी कहा । कुछ में उनके भाषणों को शब्द - जाल से लदा हुआ बताया तथा उन्हें दार्शनिक कहा । परन्तु जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व में किसी तरह की जटिलता, अहमन्यता या बनावटी नहीं है । वह भीतर से भी उतने ही सरल एवम् स्वाभाविक है जितना बाहर से ।

जैनेन्द्र जी में अहंकार की भावना बिलकुल नहीं थी । वे स्पष्ट-वादी सरल एवम् ईमानदार तथा कर्मण्य तथा जीवन से संघर्ष करने वाले व्यक्ति थे । उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए डा० शान्ति प्रसाद शर्मा ने

1- जैनेन्द्र कुमार : ये और वे : पृष्ठ - 154

2- ज्ञानोदय : अगस्त 1954

लिखा है "अहंकार की भावना मुझे उनमें कभी नहीं दिखाई देती । हीनता की भावना भी उनमें नहीं थी, जिसकी अपेक्षा शायद साहित्य के क्षेत्र में जाने वाले नये व्यक्ति से की जा सकती । पर जिस शान से जैनेन्द्र कुमार हिन्दी साहित्य में आये थे - एक धूमकेतु के समान भी उसे देखते हुए उसमें हीनता की भावना की अपेक्षा करना भी असंगत होगा । इनके साथ ही पुराने और बड़े साहित्यकारों के प्रति निरादर की भावना भी उनमें कभी नहीं रही । न शब्दों में, न व्यवहार में, माखन लाल प्रेमचन्द्र, जवाहर लाल नेहरू से सभी से बातचीत करते हुए मैने उन्हें सरल और स्वाभाविक ही पाया ।"[1]

जैनेन्द्र जी की वेश - भूषा बहुत सादी थी । उनकी वेशभूषा में सादगी पर डा0 देवराज उपाध्याय का यह कथन उल्लेखनीय है - "एक बात मुझे खूब याद है और वह है इनकी वेश - भूषा की सादगी । वह गांधी का युग था और सादगी तेरा नाम ही गांधी है (सिम्पलिसिटी) दाई नेम इज गांधीत्य जी) । सब लोग अपनी वेश - भूषा में सादगी जाने का प्रयत्न करते थे पर उस युग में मुझे जितने साहित्यकारों से मिलने का सौभाग्य मिला उनमें जैनेन्द्र में मैने अधिक सादगी पायी । आज के जैनेन्द्र की रहन - सहन और पहिरन भी सादी ही है, पर उसमें समय दनमें ज्यादा सादगी थी । कपड़े के तो खद्दर के ही थे पर उसमें समय इनमें ज्यादा सादगी थी । कपड़े वे तो खद्दर के ही पहनते थे पर बगुले की आंख की तरह लकदक, होना उनके लिए आवश्यक नहीं था । कुरते के लिए पिंडलियों तक झूलना जरूरी नहीं था । वे कमर तक ही रहकर सन्तोष कर सकते थे और आधी बांह के भी हो तो कोई परवाह नहीं । जांघिये से भी काम चल सकता था । जैनेन्द्र नवयुवक थे ।"[2] मनोहर श्याम जोशी ने तो जैनेन्द्र जी को हिन्दी साहित्य का महात्मा गांधी

1- बांके बिहारी भटनागर : जैनेन्द्र व्यक्ति कथाकार और चिंतक" (द्रष्टव्य- जैनेन्द्र कुमार - व्यक्तित्व की एक झांकी), पृष्ठ - 3।

2- डा0 देवराज उपाध्याय - जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृष्ठ -

मान लिया था । उन्हीं के द्वारा उल्लिखित हैं - "जैनेन्द्र के साथ महात्मा शब्द जोड़ने को जी चाहता है । मैं समझता हूँ कि जैनेन्द्र का उठना - बैठना, बोलना - चलना, ओढ़ना - पहनना, खाना - पीना सब महात्मा मार्ग का है । उनसे इन्टरव्यू लेते समय मुझे अक्सर यह आभास हुआ है कि बोधिवृद्ध तले कोई प्रवचन सुन रहा हूँ । मेरे ख्याल से जैनेन्द्र को महात्मा सम्बोधन से कोई आपत्ति भी नहीं होगी । शायद जैनेन्द्र चाहते भी यही हैं कि उन्हें हिन्दी साहित्य का महात्मा गांधी समझा जाये ।"[1]

जैनेन्द्र जी का लेखकीय व्यक्तित्व अत्यन्त ही सहज और सामान्य है । उनमें कहां भी आडम्बर नहीं है । डा० नगेन्द्र के अनुसार इस साधार से व्यक्तित्व में जहां कोई दिखावा नहीं है, वहां यहां से वह तीखापन और धार मिलती है जो उनकी सबसे बड़ी शक्ति है और जिसके कारण अपने क्षेत्र में आज भी उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है । यही नहीं, उनके व्यक्तित्व के विषय में श्री रघुनाथ शरण झालानी कहते हैं - "तेजस्विता, प्रखरता तथा तीव्रता, गहनता, दृढ़ता तथा व्यापकता इन छहों दृष्टियों से यदि हम अपने आलोच्य तथा उपन्यासकार का विश्लेषण करें तो जैनेन्द्र में तेजस्विता, प्रखरता, गहनता और सक्षमता इन चार गुणों की स्थिति संदिग्ध है । जैनेन्द्र की कला में दृढ़ता की स्थिति इसलिये संदिग्ध है कि जैनेन्द्र की निरीहता ओर नियतिवाद के संघर्ष में यह बात कुछ अधिक जंचती नहीं है । यह बात नहीं जैनेन्द्र के विश्वास ढीले और कमजोर हैं, पर उसमें कट्टरता और दृढ़ता व शक्ति नहीं क्योंकि प्रेम और अहिंसा की बातों से कट्टरता मेल नहीं खाती ओर व्यापकता का तो जैनेन्द्र में सर्वथा अभाव है ।"[2]

इस तरह जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व के विषय में कुछ लिखना सरल नहीं है उनकी निजी प्रकृति भी अत्यधिक रहस्यमय है एवं उनके लेखन

1- मनोहर श्याम जोशी - सारिका, जुलाई 1967 पृष्ठ - 9 (दृष्टव्य एक और तस्वीर)

2- रघुनाथ शरण झालानी - जैनेन्द्र और उनके उपन्यास ।

में भी कठिनाई है वे रहस्यमय व्यक्ति हैं, जिनकी थाह पाना कठिन कार्य है। सब कुछ मिलाकर यह कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र कथाकार है विचारक हैं, दार्शनिक हैं ।

3- **जीवन के मार्मिक प्रसंग :-**

जैनेन्द्र जी पैदा होते हुए ही विपत्तियों से संघर्ष करने लगे । जन्म लेते ही पिता की मृत्यु हो गई । मां ही उनका सहारा थी । परिस्थितियों से बड़े ही कमजोर थे ।

"पैदा होते ही सिर पर से पिता का हाथ उठ गया । मां भी उसकी पूंजी, उसका संसार और उसकी पहचान । दुनियां उसे अन्दर व बाहर चक्कर लगाती नजर आती, वह कुछ नहीं समझ पाता तब वह दोहराने लगता कि अमुक कक्षा में अमुक विषय में अव्वल श्रेणी के अंक प्राप्त किये थे, दूसरी कक्षा में उस विषय में पिछड़ गया था । पर, अनुत्तीर्ण तो कभी नहीं हुआ । कालेज, उसने छोड़ा था, उसे कालेज में नहीं । यों पढ़ना सोलह वर्ष में छूट गया था । छह - सात वर्ष यों ही बहे कि मालूम ही न पड़ा । पड़ा तो यह कि मां है, कुछ करना चाहिए । बेकारी सिर पर बोझ बनी हुई थी चार माह का छोड़कर उसे पिता पहले ही अनाथ कर गये थे । मामा भगवानदीन उसके संरक्षक थे । संरक्षिका उसकी मां थी । परन्तु अब तो काम करना पड़ेगा । 22-23 वर्ष यों ही ढोह लिये थे, बेकारी में । जो अब अखरने लगे थे । लानत भेजने लगे थे । वह समुन्दर में तिनके की तरह इतस्ततः तैरता जा रहा था, एकदम हल्का बना ।"[1]

जैनेन्द्र जी दुबले - पतले कमजोर अन्तर्मुखी तथा इरादा रहित थे । उत्साह नाम की चीज उनमें न थी । उनके कदमों में न तो शक्ति थी तथा

1- डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर : जैनेन्द्र और उनका साहित्य, पृष्ठ - 11

न आंखों में रंग - निखार । संसार उनके वास्ते का नहीं लगता था । उन्हें सम्पूर्ण दुनियां तिलिस्म सी प्रतीत होती थी । किन्तु मां और बेरोजगारी के अन्तर्द्वन्द्व में उन्हें नौकरी करने की इच्छा जाहिर हुई । जैनेन्द्र जी मां से पचास रूपये लेकर नौकरी के लिए, दिल्ली छोड़ कलकत्ता पहुँच गये ।

जैनेन्द्र जी सिर्फ अकेले थे । उन्हें सलाह देने वाला कोई नहीं था । किसी काम का न होकर वह मां का प्यार पाने में असमर्थ थे । मां को आशा देकर कलकत्ता गये थे कि थोड़े ही समय में वहां उसकी नौकरी लग जायेगी । कलकत्ता जाने का वजह यह था कि वहां कुछ सहारा था नौकरी लगने का । किन्तु वह उनके भाग्य में न था । हितैषी बन्धु ने हैरानी से उन्हें ऊपर से नीचे देखा और कहा भाई, बड़े अजब लड़के को तुम ? लिखा था चार महीने पहले । आप समझते हैं कि अब आपके लिए वह जगह खाली रखी होगी ।[1]

जेनेन्द्र जी लौटना नहीं चाहते थे । अतः बात यहीं तक आई कि बीस - पच्चीस रूपये में भी कहीं नौकरी मिल जाय तो भी काम चल जायेगा । प्रतिदिन प्रयास करते हुए आठ दिन निकल गये । लेकिन नौकरी नहीं मिली । जैनेन्द्र जी को आभास होने लगा कि वह जहां रूके हैं वहां वह अब उपेक्षित होने लगे हैं । अतः बाध्य होकर लौट पड़े । घर लौटने पर जैनेन्द्र जी की मां ने उनसे अधिक स्नेह किया । "उसे यह प्यार खलता था । उसके अन्दर काटता था । वह कितना निखट्टू है कि कोई लच्छन नहीं है, शहूर नहीं है और नालायक है । उसमें सपने बनते - बिगड़ते थे । सपने यथार्थ के सामने कैसे टिकते ? उनमें वह दम - बल कहां होता है जो आदमी को टिकने की मजबूती देता है ।"[2]

1- डा0 राजेन्द्र मोहन भटनागर जैनन्द्र और उनका साहित्य, पृष्ठ - ।।

2- वही, पृष्ठ - ।।

जैनेन्द्र जी की प्रथम कहानी छपी "विशाल भारत" में "खेल" नाम से । आपके दोस्त ने एक हस्तलिखित पत्रिका पांच छह माह तक निकाली थी, जिसमें आपकी कई कहानियां थीं । "खेल" उन्हीं में से एक थी । इसके लिये आपको चार रूपयें (पारिश्रमिक के) का धनादेश प्राप्त हुआ । जैनेन्द्र जी के शब्द में इन चार रूपयों की प्रतिक्रिया क्या हुई वह सुनिए कि "मनीआर्डर क्या आया मेरे आगे तो तिलिस्म खुल गया । इन तेईस - चौबीस सालों को दुनियां में बिताकर भी मैं क्या तनिक उस द्वार को टोह पा सका था कि जिसमें से रूपये का आवागमन होता है । रूपया मेरे आगे परिश्ते के मानिद था, जिसका जन्म जाने किस लोक का था । अवश्य वह इस लोक का तो है नहीं । वह अतिथि की भांति मेरे खेल के परिणामस्वरूप मेरे पर आ पधारा तो एकाएक मैं अभिभूत हो उठा । मेरी मां को भी कम विस्मय नहीं हुआ कि आदमी अपने को नहीं जान सकता ।"[1] फिर क्या था कि एक सिलसिला जारी हो गया । "स्पर्द्धा" प्रेमचन्द्र जी के पत्र "माधुरी" को भेजी थी, परन्तु वहां से सधन्यवाद लौट आई । प्रेमचन्द्र जी ने उस कहानी के लिए पूछा था कि क्या यह अनुवाद की गई कहानी है ? इससे यह स्पष्ट हो चला के जैनेन्द्र जी में प्रतिभा है, जो उन्हें बेकारी से छुटकारा दिला सकती है ।

नाना जी की अतरौली कुछ में कुछ अचल सम्पत्ति बनी थी । वहां दो - तीन मकान थे । आमदनी के लिये वहां यही था । जैनेन्द्र जी ने अरहर का व्यापार शुरू किया । जैनेन्द्र जी की माता जी एवं मामी पीसती थीं, साथ में कुछ अन्य लोग भी । दाल की चक्कियां घर में चलतीं रहीं किन्तु उस व्यापार में लाभ की जगह हानि हुई । अतः यह व्यवसाय समाप्त कर दिया । घर का कार्य किसी तरह चलता रहा । फिर जैनेन्द्र जी की माता जी ने सबको लेकर बम्बई चली गईं । वहां वह धर्म में प्रवृत्त हुई तो उनकी

1- जैनेन्द्र : कहानी अनुभव और शिल्प : पृष्ठ - 31

बहुत ख्याति हो चली । फलस्वरूप दिल्ली एक श्राविकाश्रम के संचालन का भार उन पर आ गया । पश्चात् में 18 में पहाड़ी पर जैन साहित्य आश्रम की संचालिका हुईं । तभी यानि 18 में जैनेन्द्र जी हस्तिनापुर से निकले थे । 17 में महात्मा जी ने इस संस्था से अपने सम्बन्ध उठा लिये थे ।

उनकी मां अदम्य उत्साह संग युक्त थीं, साहस से परिपूर्ण तथा उत्तरदायित्व के प्रति चौंकनी । वह ज्यादा से ज्यादा चार धोतियां रखतीं थीं । अधिकांशतः उनके पास दो धोतियां रहती थीं । आचार में वह सख्त थीं । उन्होने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया । प्रत्येक मुसीबत का सामना किया । उनका जीवन सत्य का साक्षी है । किन्तु उन्हें इस साधना का जो पुरस्कार मिला वह था, प्रत्येक जगह उनका अपमान । मरी तो शमशान यात्रा में गिनती के जैन जन थे । अन्ततः समाज की उपेक्षिता बनी रहीं । जैनेन्द्र जी जब अपनी मां की याद करते हैं तो उनकी आंखें भीग जाती हैं । उनके मन पर इसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि उनका मन धर्म से विरत होने लगता है । वह उन्हें जैन समाज से दूर ले जाता है । उन पर भय छाया मंडराने लगती है । उनके सामने अपनी मां की मौत मंडराने लगती है । वह लिखते हैं, तत्संदर्भ में कि "जीवन में इस गम्भीर अकृतार्थता को लेकर मुझे जीना पड़ रहा है । माता जी पर सोंचता हूँ तो जान पड़ता है कि वह एक नारी थीं जिनको प्रश्रय नहीं बल्कि जिनसे प्रश्रय मांगा गया । ..... वृक्ष की भांति अपनी निजता के बल पर उन्हें इस तरह उठना और फेंकना पड़ा कि अनेकों को उनके तले छांह और रक्षा मिली तथा बाहर के आतप, वर्षा और शक्ति को अपने ऊपर ही उन्होने सह लिया । वह जीवन से जूझती रहीं और इकली बनकर नहीं, स्वयं में एक संस्था बनाकर । वह जैनेन्द्र जी की कसक लेकर गईं कि वह किस ढंग से जी पाएगा । महात्मा जी की गोद में लुढ़क कर उन्होने प्राण का परित्याग कर दिया । किन्तु उनको जैनेन्द्र जी के लिए आश्वासन न प्राप्त हो सका । तब वह दो बच्चों के पिता बन चुके थे । घर नाम से नहीं धन से चलता है । साहित्य के नाम से तो घर नहीं चल

सकता है । मां की यह पीड़ा - व्यथा जिसे लेकर वह संघर्षी रहीं, मरते दम तक कम नहीं हुई ।

जैनेन्द्र जी जैन हैं । उनकी माता जी रात में पानी का घूँट तक नहीं लेती थीं । किन्तु जैनेन्द्र जी इस रात - दिन के भेद से लापरवाह थे । मां कुछ नहीं कहती । खुद भी भोजन नहीं करतीं थीं । अपने को मारतीं थीं, यातना देती थीं । जब जैनेन्द्र का निश्चय ज्ञात हुआ कि "हाँ माँ, और क्या हर्ज है इसमें ?" मां ने उसकी तरफ एक क्षण देखा तथा वह जोर - जोर से उसकी गोद में रोने लगीं । अन्त में उसने मां की बात स्वीकार कर ली । कहने का तात्पर्य यह है कि जैनेन्द्र जी में क्यों आस्था न हो, व्यथा सहने की शक्ति न हो तथा नारी के प्रति आदर को दृष्टि विशेष न हो । मां जैनेन्द्र का खुला दर्शन है । वह जो क्या है उसमें मां का बहुत बड़ा एहसान है । यही वजह है कि जिनके पास अन्तर्दृष्टि का अभाव है, उन्हें जैनेन्द्र जी पोज करने लगते हैं । उनके मामा महात्मा थे, उनकी मां समाज सेविका, अद्‌भुत गरिमामयी, करूणामयी, दयामयी, शक्तिमयी, तेजस्विनी, कर्ममयी महिला थीं । जैनेन्द्र जी के जीवन - सृजन एवं नारी चरित्र के विशेषज्ञ होने के नाते पीछे, उनकी मां तथा मामा की प्रेरणा है ।

जैनेन्द्र जी ने यह स्पष्ट माना है कि "शुरू तो जो लिखा वह उन दबी हुई भावनाओं का रूपक था जो स्थिति की हीनता से कल्पना की सुरक्षितता में अपना बसेरा बसा - फैलाकर फलती चलती है ।" मैं बचकर उसमें शरण ले सका, उसने मुझे जिलाया । अपने भीतर की आत्मग्लानि, हीन भावनाएं और उसमें लिपटी हुई स्वप्नाकांक्षाएं । इस सबको कागज पर निकालकर जैसे मैने स्वास्थ्य लाभ किया । जो मेरे अन्दर घट रहा और मुझे चोट रहा था, उसी को बाहर निकालने की पद्धति से देखा कि मैं उससे मुक्ति पा रहा हूँ । उसके नीचे न रहकर उसके ऊपर आ रहा हूँ । जो कमजोरी थी

और मुझे कमजोर कर रही थीं उसी को स्वीकार कर लेकर औररूप और पहना देकर, मैं अ-कमजोर - क्या मजबूत ? बन रहा हूँ ।"[1] यह उनके लिये ऐन्द्रियक स्वास्थ्य देने वाला था ।

जैनेन्द्र जी दुनियां में फिर अनाथ हो गये थे । क्योंकि 35 में जैनेन्द्र जी के सिर पर से उनकी माता का हाथ उठ गया था । वह अभिभावक रहित हो गये थे । जैनेन्द्र जी के मामा साधु में, संसार से परे की दुनियां के आदमी ।

जैनेन्द्र जी अब बाल बच्चों वाले आदमी थे । उनके दो बच्चे थे । उनके ऊपर परिवार का भार था, जिसका निर्वाह उन्हें ही करना था । इसके लिए उन्हें अब उस दुनियां में उतरना पड़ रहा था जिसमें हिसाबी आदमी रह पाता है ।

"ताहम उनकी तारीफ करनी होगी । उन्होने रूख नहीं बदला । वक्त के आगे सिर नहीं खम किया । टेक जो पकड़ी आखिर तक निबाही । आस - पास की स्थिति से समझौता नहीं किया । इसमें भी एक आन है । लेकिन उसमें एक खूबी भी है । जैनेन्द्र भी एक अपने से दूर नहीं गये, बाहर तक नहीं आये । अपनी खुदी में चाहे डूब ही जायें, खुद्दारी को उन्होने नहीं छोड़ा । खुदी और खुद्दारी में जो फरक है उसकी पहचान अगर उन्हें नहीं हुई तो कहा जा सकता है कि वह पहचान बहुत मुश्किल है और बहुत बड़े - बडों को नहीं हो पाती ।"[2]

1- साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ - 18-19

2- ये और वे - जैनेन्द्र कुमार की मौत पर - पृष्ठ - 157

साहित्यकारों एवम् साहित्यिक आन्दोलनों से जुड़ाव :-

सत्य प्रकाश मिलिन्द का कथन है कि "चिन्तन और क्रियाशीलता, दोनों के दर्शन यदि एक व्यक्ति में करने हैं तो आप जैनेन्द्र जी से मिलिये ।" मिलिन्द जी के ये शब्द सुनकर बाहर से आये उनके एक परिचित ही चौंके और कहने लगे - "वाह मिलिन्द जी, आप भी खूब कहते हैं । बहने पानी में तो जिन्दगी होती भी है । बरसों तक मौन बैठे रहे जैनेन्द्र जी के साहित्य में आप प्रेरणा और प्रोत्साहन ढूढ़ने की बात करते हैं ? यह भी एक ही रही ।" उसी समय मिलिन्द जी को याद आया कि एक बार-एक साहित्यकार मित्र ने भी जिनका जैनेन्द्र जी से खासा सम्बन्ध रह चुका था, उनके बारे में मिलिन्द जी को एक पत्र लिखा था । "जैनेन्द्र जी के साहित्य से अधिक मुझे उनके व्यक्तित्व पर कहना है पर उस कहने में खेद है - मिठास नहीं ।" परन्तु दूसरी तरफ मिलिन्द जी के कानों में डाक्टर देवराज के ये शब्द बराबर रह रहकर गूँजते हैं कि ...... जैनेन्द्र जी की प्रतिभा अप्रतिद्वन्द्विनी है । बौद्धिक गहनता और नैतिक सूक्ष्म विश्लेषण में, शायद, हमारे देश का कोई उपन्यासकार उनकी समता नहीं कर सकता । उनकी दृष्टि और कला युग - युग की जिज्ञासा और वेदना में प्रतिष्ठित है" मिलिन्द जी का मानना है कि जैनेन्द्र साहित्य का क्रमिक अध्ययन किए बिना "जैनेन्द्र पहेली" समझ में नहीं आयेगी । मिलिन्द जी ने एक जिज्ञासा की तरह जैनेन्द्र जी से इन प्रचलित धारणाओं को लेकर कुछ जानकारी की इच्छा की थी जो उन्होने उनको लिखा था, "मैं जैसे सोंच पाता हूँ, उसमें अपने अलावा दोष रखने को कहीं जगह नहीं मिलती है । जमाने को या दुनियां को दोष देना अपना क्षोभ उतारना है । मशीनवादी सभ्यता ने मानव सम्बन्धां में विष डाला है - यह मानकर भी आस्था क्यों खोना ?"

गांधी, शरद् और टालस्टाय की रचनाओं से प्रभावित इस निबन्धकार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा दार्शनिक के जीवन की कुछेक घटनाओं का विवेचन

करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जैनेन्द्र जी मनुष्य के निर्माण के लिये प्रारम्भ से ही हमेशा प्रयत्नशील रहे हैं । उन्होने खुद संघर्ष कर सत्य के प्रयोगों द्वारा अपने जीवन को ज्यादा सार्थक तथा दूसरे मनुष्यों के लिए अधिकोपयोगी बनाने का हर क्षण बहुत प्रयास किया है ।

1927 में जैनेन्द्र जी अपने मामा महात्मा भगवानदीन जी के साथ कश्मीर गए थे । उस यात्रा का आंखों देखा हाल ऐसा लगता है कि उन्होने "व्यतीत" में प्रस्तुत कर दिया है । वैसे उनके साहित्यिक जीवन का प्रथम चरण उस दिन उठा था - जब उनकी सबसे पहली कहानी विशाल भारत में छपी थी । उस समय जैनेन्द्र जी को कितनी प्रसन्नता हुई होगी इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । क्योंकि उससे पूर्व उन्हें साहित्य के द्वारा एक पाई भी नहीं प्राप्त हुई थी । यहीं से जैनेन्द्र जी के साहित्यिक जीवन की शुरूआतें होतीं हैं ।

आचार्य किशोरी लाल मशरूवाला ने एक बार लिखा था कि - "जैनेन्द्र के विचार पढ़कर मैने ऐसा अनुभव किया जैसा टालस्टाय को पढ़ते समय हुआ था, बल्कि उससे भी विशेष ।

कर्मवीर जबलपुर से निकलता था और पं0 माखन लाल चतुर्वेदी उसके सम्पादक थे । वह पं0 माखन लाल चतुर्वेदी के पास ही ठहरे थे । वहां उन्होने स्व0 सुभद्रा कुमारी चौहान को देखा । सुभद्रा जी के व्यक्तित्व से वह अभिभूत हो गए और उन्हें लगा जैसे वह हिमालय की चोटी पर स्थित है और यह नीचे विराजमान हैं । जब पं0 माखर लाल चतुर्वेदी गिरफ्तार हो गए तब यह मामा जी को नागपुर छोड़कर विलासपुर को गए वहां माखन लाल जी का मुकदमा चल रहा था । इस बीच वह सुभद्रा जी के साथ विलासपुर में कांग्रेस का कार्य करने लगे । कुछ दिन बाद वह नागपुर चले गये । वहां से अहमदाबाद कांग्रेस - अधिवेशन में गए । इधर से उनकी मां भी वहां जा पहुँची और अधिवेशन के पश्चात् इन्हें लिवा लाई ।

सन् 1927 में महात्मा भगवानदीन जी दिल्ली होते हुए रावलपिण्डी जा रहे थे । रावलपिण्डी से उन्होने कश्मीर जाने का कार्यक्रम बना रखा था । यात्रा पूरी की गई । "परख" नामक सत्यधन की कश्मीर यात्रा इसी व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है । "हंस" के आत्मकर्षक में भी इस प्रवास के दो अनुभव जैनेन्द्र जी ने लिखे हैं ।

इस समय उनके हाथ आचार्य चतुरसेन शास्त्री का "अन्तस्तल" पड़ गया । "अन्तस्तल" के गद्य काव्यों से वह बड़े प्रभावित हुए और उन्होने "देश जाग उठा" नाम से एक गद्य काव्य लिखा, जिसकी प्रेरणा नागपुर में जनरल अवारी को शस्त्र सत्याग्रह में हुई चार वर्ष की सजा से प्राप्त हुई थी । यह उनकी प्रथम रचना थी । वह "अज्ञात नाम से कर्मवीर" में अपने भेजी गई" कर्मवीर के लिए इस रचना को भेजते समय आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने नोट दिया था - "श्री जैनेन्द्र जी चतुर प्रथम चीज "कर्मवीर" के लिए आ रही है । आपके द्वारा इनके पार्थिक शरीर का परिचय मुझे हुआ था, अब तात्विक शरीर का परिचय मेरे द्वारा होने दें । अभी यह नामकरण भी हुआ है । इसे भी पहचान लें । यह वस्तु "कर्मवीर" का सम्पूर्ण पेज खाएगी । बार्डर लगाकर सज - धज से यह पेज निराला छपना चाहिये ।"

आठ - दस दिन पश्चात् जैनेन्द्र जी ने एक और रचना लिखी । आचार्य चतुरसेन ने उसे "विश्वमित्र" को भेजा, पर वह कदाचित् छपी नहीं । उसी समय "देवी अहिंसे" शीर्षक से "विशाल भारत" में एक गद्य - काव्य भेजा गया, लेकिन उस पर आचार्य चतुरसेन का नाम ही छप गया । "विशाल भारत के तत्कालीन सम्पादक पं0 बनारसी दास चतुर्वेदी ने आशा दिलाई और कुछ दिन के बाद जैनेन्द्र जी कलकत्ते गये । कलकत्ते में अपने पास की जमा पूँजी गंवाकर वह लौट आए । वहां काम नहीं बना ।

सन् 1928 के लगभग मैनपुरी षडयन्त्र केस के श्री कालीचरण शर्मा दिल्ली आए । उनके पास कोई काम न था । उन दिनों रामचन्द्र शर्मा

"महारथी निकालते थे । दो जगहें मिलीं । एक पर जैनेन्द्र जी रखे गए तथा दूसरी पं0 कालीचरण शर्मा । काम था चिट्ठियां लिखने का और वेतन था सत्तर रूपये । यह नौकरी श्री डिप्टीमल जैन की कृपा से मिली थी । जैनेन्द्र जी ने नौकरी छोड़ दी । तभी "महारथी" में श्री विजय सिंह पथिक और भगवान दास केला आए । पथिक जी के माध्यम से पं0 कालीचरण शर्मा को राजस्थान में पच्चीस रूपये मालिक की हेडमास्टरी मिल गई और जैनेन्द्र जी बेकार के बेकार रह गए ।

हिन्दी प्रचारिणी सभा में पढ़ने के लिए कुछ कहानियां लिखी गई । उनमें एक कहानी "देश - प्रेम" थी, जिसे श्री रामचन्द्र शर्मा "महारथी" ने तीन चार महीने तक नहीं छापा और जो श्री देवी प्रसाद धवन निकल के पास संशोधनार्थ भेज दी गई थी । जैनेन्द्र जी ने जैसे - जैसे वह कहानी वापस ली और उसके बदले एक अन्य कहानी देने का वादा किया । उस कहानी का नाम स्पर्द्धा था । उसे श्री ऋषभ चरण जैन के कहने से उन्होने प्रेमचन्द्र जी के पास भेज दिया । जो सधन्यवाद वापस आ गई । उस पर लाल स्याही से लिखा था - "प्लीज आस्क वेदर दिस इज ए ट्रान्सलेशन (कृपाकर पूछिये कि क्या यह अनुवाद है ?) इस पर जैनेन्द्र जी ने "अन्धे के भेद" नामक एक दूसरी कहानी लिखी और उसे भी प्रेमचन्द्र जी के पास भेजा, जो उन्होने हंस के विशेषांक में छापी । आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने उसे पढ़ा तो प्रशासनात्मक पत्र लिखा तथा जैनेन्द्र जी को "शरत - तथा परशुराम" दोनों का सम्मिलित रूप बताया । इस तरह उनका प्रेमचन्द्र जी से घनिष्ठ परिचय हुआ, जो अन्त तक बना रहा ।

गुजरात जेल में फ्रंटियर, पंजाब तथा दिल्ली के सब स्पेशल क्लास राजनीतिक कैदी जमा थे । पुराने क्रान्तिकारी काले पानी से वहां जेल में आ गए थे तथा फ्रंटियर गांधी अब्दुल गफ्फार खाँ भी हैं । उन दिनों ने

गीता - क्लास आरम्भ की । पं0 जगतराम गीता के गहरे अभ्यासी थे । वहां जैनेन्द्र जी को पहली बार गीता का नाम सुनने को मिला । और उससे परिचय हुआ । उससे उनके चित्त में गहरी उथल - पुथल मची और एक रोज उन्होने पाया कि वह आस्तिक हैं ।

जैनेन्द्र को सन् 1932 में भोजन जाना पड़ा । प्रेमचन्द्र जी ने तार से ताकीद के साथ उनसे कहानी मंगाई थी, पर बाहर आन्दोलन छिड़ चुका था और कहानी उनसे लिखी ही नहीं जाती है । तीन - चार रोज इस कष्ट में बिताकर उन्होने एक पुर्जा लिया और पं0 इन्द्र विद्यावाचस्पति को जो तब दिल्ली कांग्रेस के अध्यक्ष और डिक्टेटर थे । लिख दिया कि अमुक तारीख से मेरा नाम वालंटियरो में दर्ज कर लीजिए ।

सन् 1929 में जैनेन्द्र जी की तीन कहानियां "फांसी" नाम से उन्होने ही छापी थीं और लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में एक पूरा संस्करण बेंच डाला था । इस पुस्तक से क्रान्तिकारियों का ध्यान जैनेन्द्र जी की ओर गया और उसके फलस्वरूप सच्चिदानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" उन्हें प्राप्त हुए ।

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई के मालिक नाथूराम "प्रेमी" जी ने जैनेन्द्र जी से एक सौ के लगभग पृष्ठों का उपन्यास देने के लिए कहा तो उन्होने उनके कहने पर "त्यागपत्र" की रचना की ।

डा0 शान्ति प्रसाद वर्मा का परिचय जैनेन्द्र जी की एक कहानी, फांसी के द्वारा हुआ । जो संभवतः एक कहानी, 1929 में "त्यागभूमि" में प्रकाशित हुई थी । इस कहानी के साथ "त्याग भूमि" के तत्कालीन साहितय सम्पादक श्री रामनाथ "सुमन" की एक टिप्पणी भी थी ।

डा0 शान्ति प्रसाद वर्मा का जैनेन्द्र कुमार से व्यक्तिगत परिचय 1934 में दिल्ली में आयोजित हिन्दी - साहित्य - सम्मेलन कें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर हुआ । जैनेन्द्र कुमार साहित्य के परिषद के मंत्री थे ।

माखन लाल चतुर्वेदी अध्यक्ष थे । डा0 शान्ति प्रसाद वर्मा जी को दिल्ली के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में अन्य लेखकों, उपन्यासकारों और कवियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ ।

जैनेन्द्र जी ने हिन्दी - साहित्य में एक धूमकेतु के समान आए हैं । इनके साथ ही, पुराने और बड़े साहित्यकारों के प्रति निरादर की भावना भी उनमें कभी नहीं रही - न शब्दों में न व्यवहार में । प्रेमचन्द, माखनलाल, जवाहर लाल नेहरू सभी से बातचीत करते हुए मैने उन्हें सदा सरल तथा स्वाभाविक ही पाया । 1936 में नागपुर के भारतीय साहित्य - परिषद मे हिन्दी सम्बन्ध में जिस दृढ़ता से जवाहर लाल के सामने उन्होने अपने विचार रखे उसे देखकर ।

दिल्ली अधिवेशन के एक साल पश्चात् 1935 में इन्दौर में, गांधी जी के सभापतित्व में सम्मेलन का आयोजन किया गया । इस बार डा0 शान्ति पसाद वर्मा साहित्य - मंत्री थे । प्रेमचन्द्र तो नहीं आ सके, पर अनेक अच्छे साहित्यकार एकत्रित हुए । इन्दौर अधिवेशन में जैनेन्द्र जी के उदायमान व्यक्तित्व का एक नवीन रूप उभरा । इन्दौर में अनेक प्रदेशों के लोग रहते हैं । हिन्दी तथा मराठी भाषा - भाषियों की संख्या तो लगभग बराबर ही है, परन्तु कई हजार गुजराती (जिनमें पारसी सम्मिलित हैं) बंगाली तथा दक्षिण भारतीय भी रहते हैं । उन दिनों यह अनुभव किया जा रहा था कि राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से विभिन्न प्रवीण साहित्यों के साथ निकट का सम्पर्क स्थापित किया जाना अनिवार्य है । श्री कन्हैया लाल, माणिक लाल, उन दिनों इन्दौर आये हुए थे, अपने किसी मुकदमें के सम्बन्ध में । हिन्दी के साहित्य जगत में तब तक उनका विशेष परिचय नहीं था । गुजराती के तो वे लब्ध - प्रतिष्ठ लेखक थ ही । प्रान्तीय साहित्यों को निकट लाने के सम्बन्ध में उन्होने डा0 शान्ति प्रसाद वर्मा से कहा कि कुछ महीने पूर्व बम्बई में प्रेमचन्द्र से उनकी इस तरह की बातचीत हुई थी । तब

भारतीय साहित्य परिषद के नाम से एक ऐसी संस्था स्थापित करने की चर्चा चल रही थी । जिनके द्वारा इस तरह साहित्यिक सहयोग स्थापित किया जा सकता था । गांधी जी के निवास - स्थान पर महादेव देसाई तथा काका कालेलकर से जब इस सम्बन्ध में बातचीत हुई तब जैनेन्द्र भी उसमें सम्मिलित थे । उसके पश्चात् गांधी जी के आशीर्वाद से "भारतीय साहित्य - परिषद" की स्थापना हुई । सन् 1936 में नागपुर में हिन्दी साहित्य - सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के साथ ही "भारतीय साहित्य - परिषद" का प्रथम अधिवेशन गांधी जी के सभापतित्व में किया गया । उसमें प्रेमचन्द्र जी भी उपस्थित थे । जैनेन्द्र जी भी थे ।

अन्य भाषाओं, विशेषकर उर्दू के कुछ लोग - मौलवी अब्दुल हकमजीब आदि भी उसमें शामिल थे । प्रेमचन्द्र पहले ही अपनी पत्रिका "हंस" "भारतीय साहित्यिक - परिषद" को सौंप चुके थे । नागपुर अधिवेशन के कुछ महीनों के पश्चात् ही वह हमें छोड़कर चले गए, परन्तु दो सालों में हंस के माध्यम से भारतीय भाषाओं के बीच एक मुक्त आदान - प्रदान का जो महत्वपूर्ण प्रयास किया गया । जैनेन्द्र जी का उसमें सम्पूर्ण और क्रियाशील सहयोग था । हिन्दी के लेखक के लिए इस तरह के अन्तर भारतीय आंदोलन से इतना ज्यादा मदद लेना तब एक नवीन बात थी ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर में रामचन्द्र शुक्ल साहित्य-परिषद के मनोनीत सभापति थे । वह समय पर इन्दौर पहुँच नहीं सके । इस कारण हमें साहित्य - परिषद का अधिवेशन अगले दिन प्रातःकाल के लिये स्थगित करना पड़ा । जब सबेरे भी उनके पहुंचने में देर हुई तब उन्होने सोंचा कि प्रान्तीय भाषाओं में जिस सहयोग की चर्चा हम लोगों ने पिछले दिन आरम्भ की थी उस दृष्टि में रखते हुए यह शुभ प्रतीक होगा कि श्री मुंशी को साहित्यकारों के होते हुए भी आप हिन्दी से बाहर के किसी

व्यक्ति को क्यों सभापति बनाना चाहते हैं ? हिन्दी में जब इस तरह का वातावरण था तब भी जैनेन्द्र जी हिन्दी - साहित्य की संकीर्ण परिधि को लांघकर अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में पर्याप्त रूचि ली ।

1939 के आरम्भ में दिल्ली से उन्होने एक हिन्दी - परिषद का आयोजन किया । जिसमें हिन्दी में सम्भवतः पहली बार साहित्य के संबंध में गहराई के साथ विवेचना हुई । आनन्द कौसल्यायन, कोष इत्यादि अनेक साहित्यकारों ने उसमें भाग लिया था । जैनेन्द्र जी इतने अधिक प्रसिद्ध हो गये थे कि इन्दौर से अनेक सभाओं में उन्हें बोलना पड़ा । हिन्दी साहित्य की सीमाओं से वह बिलकुल बंधे हुए नहीं थे । साहित्य और जीवन के अनेक विषयों पर बड़ी मौलिकता तथा प्रखरता के साथ उन्होने अपने विचारों को प्रकट किया । इस बीच में जैन - समाज में उनके लिए एक बड़ा आद का स्थान बनने लगा था । जैनेन्द्र जी इन्दौर में किसी बड़े भारी जैन - सम्मेलन के अध्यक्ष थे ।

जैनेन्द्र जी अपने में ही केन्द्रित नहीं थे यद्यपि बाहर की उन्हें आसक्ति है, यह साध्य है सार्वजनिक प्रवृत्तियों में उन्हें रूचि है, बल्कि अपनी स्थल पर उनकी उपयोगिता भी वह स्वीकार करते हैं । स्वराज्य के पश्चात् ही भारत वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रविष्ठ हुआ तथा मनों के सांस्कृतिक पक्ष मुनेस्को का सक्रिय सदस्य बना । जैनेन्द्र जी उस मुनेस्को के नेशनल कमीशन के जनरल काउंसिल के सदस्य ही नहीं नियुक्ति हुए बल्कि उसकी कार्य समिति में भी चुने गये । उसकी तरफ से अनुवाद उस समिति और गांधी विचार - पुस्तवन उपसमिति के सदस्य रहे । भारत में उन्होने वाले प्रथम एशियाई लेखक - सम्मेलन के वह संयोजक थे और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय समिति के एक अध्यक्ष थे । संचालन - समिति की अध्यक्षता भी उन्हीं को निबाहिनी पड़ती थी । उसके दूसरे अधिवेशन के लिए भी भारतीय समिति के वह संयोजक थे । और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय लेकिन तासकन्द लोगों से उन्होने इसलिए

मना कर दिया कि वहां भारतीयता के पक्ष का प्रतिनिधित्व न हो सकेगा । इसके अलावा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशनों में भी उन्होने हिस्सा लिया वेनिस में होने वाले टालस्टाय - शताब्दी परिषद में श्री राजाराव के साथ वह भारत के एक मात्र साहित्यिक प्रतिनिधि थे । भारत सरकार की तरफ से जैनेन्द्र जी लूसू साहित्य - महोत्सव में भारत के अकेले प्रतिनिधि रह गए जबकि श्री ताराशंकर वंदोपध्याय को अस्वस्थता के कारण रंगून से लौट आना पड़ा था । लंका के राजकीय स्तर पर होने वाले साहित्य - समारोह में भी भारत के तीन प्रतिनिधियों में उनको भेजा गया था । भारतीय साहित्य अकादमी की प्रस्थापना पर उन्हें उसकी जनरल काउंसिल और कार्य - प्रणाली समिति का सदस्य मनोनीत किया गया था । परन्तु इन सब प्रवृत्तियों के उनका चित्त रम नहीं सका । कारण, उनमें राजनीति का समावेश हो जाता है और सृजन शीलता का अवकाश नहीं रह जाता । दिल्ली के सार्वजनिक जीवन में भी उनका स्पृहणीय स्थान है, यद्यपि किसी राजनीतिक दल से उनका सम्बन्ध नहीं है ।

जैनेन्द्र जी के साहित्य पर गांधी, शरद और टालस्टाय की अनेक रचनाओं का प्रभाव पड़ा हुआ है । जैनेन्द्र जी पं0 माखन लाल चतुर्वेदी आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पं0 सारसीदास चतुर्वेदी, डा0 शान्ति प्रसाद वर्मा तथा प्रेमचन्द्र जैसे साहित्यकारों के सम्पर्क में आये । जैनेन्द्र जी हिन्दी साहित्य - सम्मेलन, भारतीय साहित्य परिषद अनेक साहित्यिक आन्दोलनों में भाग लिए । इनका अनेक साहित्यकारों तथा साहित्यिक आन्दोलनों से जुड़ाव था ।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का क्रमिक विकास

1- जैनेन्द्र की रचनाओं का प्रारम्भिक काल :-

जैनेन्द्र की प्रथम कहानी लिखे जाने की एक घटना है । जैनेन्द्र एवम् उनके एक दोस्त की पत्नी दोनों की इच्छा थी कि उनका लिखा कुछ प्रकाशित हो । दोनों ने निश्चय किया कि आगामी शनिवार को वे दोनों परस्पर एक दूसरे को अपनी लिखी कहानियां दिखायें । दि आया तो भाभी की कहानी तैयार थी परन्तु जैनेन्द्र यही सोचते रहे कि लिखें तो कैसे लिखें ? परन्तु जैसे तैसे दोस्त एवम् उनकी पत्नी के जीवन की एक वास्तविक घटना को लेकर जैनेन्द्र ने एक कहानी लिख डाली एवम् भाभी को दिखाई । जैनेन्द्र मानते हैं कि वह उनकी पहली कहानी थी । दूसरी, तीसरी और चौथी कहानियां एक मित्र श्री कालीचरण शर्मा की हस्तलिखित पत्रिका - "ज्योति के लिये लिखी गई । यह पत्रिका तीसरी - चौथी कक्षाओं के छात्रों के लिए निकाली गयी थी । कुछ महीने पश्चात् उन्हीं में से एक कहानी "खेल" (विशाल भारत) में श्री जैनेन्द्र के नाम से प्रकाशित हुई । यह जैनेन्द्र के लिए आशातीत घटना थी । जब इस कहानी से चार रूपये का मनीआर्डर क्या आया, मेरे तो आगे तो तिलस्म खुल गया । तत्कालीन साहित्यिक क्षेत्र में "खेल" कहानी की काफी प्रशंसा हुई । "ज्योति" में से ली गई दूसरी कहानी "फोटोग्राफी" छपी ।

परन्तु इन कहानियों से पहले आचार्य चतुरसेन शास्त्री के प्रभाव में जैनेन्द्र ने "देश जाग उठा था" गद्य - काव्य लिखा । यह उनकी प्रथम रचना थी । वह "अज्ञात" नाम से कर्मवीर में छपने भेजी गई । "कर्मवीर" के लिये इस रचना को भेजते समय आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने आग्रहपूर्ण नोट लिखकाकर रचना छपी छपी नहीं । आठ - दस दिन पश्चात् जैनेन्द्र जी ने एक रचना

का सृजन किया । आचार्य चतुरसेन ने उसे "विश्वामित्र को भेजा पर वह भी नहीं छपी । उसी समय "देवी आंखे" शीर्षक से "विशाल भारत" में एक गद्य - काव्य भेला गया, पर उस पर न जाने कैसे आचार्य चतुरसेन का ही नाम छप गया । शायद यह सम्पादक की भूल का ही परिणाम था ।

"ज्योति" की कहानियों के पश्चात् हिन्दी प्रचारिणी - सभा की बैठकों में पढ़ने के लिये कुछ कहानियां जैनेन्द्र ने लिखीं । उनमें से देशप्रेम को लेकर जैनेन्द्र को जो अनुभव हुआ, वह उनके लिये अविस्मरणीय है । दिल्ली के एक मासिक पत्र के सम्पादक रामचन्द्र शर्मा "महारथी" ने यह कहानी जैनेन्द्र से प्रकाशनार्थ प्राप्त की । परन्तु कुछ महीने पश्चात् कहानी प्रकाशित नहीं हुई तो जैनेन्द्र पता लगाने दफ्तर पहुंचे । मालूम हुआ कि देवी प्रसाद धवन "विकल" के यहां से वह अभी - अभी शुद्ध होकर आई हैं, और शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी । परन्तु जैनेन्द्र को यह स्वीकार नहीं था । उनकी शंका थी - "इतनी शुद्ध होकर यह मेरे नाम से कैसे छप सकती है, क्योंकि मैं कहां उतना शुद्ध हूँ ? अन्त में, एक नई कहानी बदले में देने का वादा करने पर उन्हें मुक्ति मिली । रात को कहानी का विचार करते - करते ही उन्हें नेपोलियन की याद आई और उसी को लेकर उन्होने सर्वथा काल्पनिक कथावस्तु का निर्माण किया । सुबह हुई तो कहानी लिखी हुई, नाम था स्पर्द्धा । रामचन्द्र शर्मा द्वारा पारिश्रमिक तौर पर कुछ भी नहीं दिये जाने पर वह कहानी प्रकाशनार्थ "माधुरी" के सम्पादक प्रेमचन्द्र के पास दी गई जो सधन्यवाद आ गई । उस पर लाल स्याही से लिखा था - "प्लीज आस्क वेदन दिस इज ए ट्रान्सलेशन (कृपा कर पूछिए कि क्या यह अनुवाद है ?) इस पर जैनेन्द्र जी ने अन्धे का भेद नामक एक दूसरी कहानी लिखी एवम् उसे भी प्रेमचन्द्र जी के पास भेजा, जो उन्होने "हंस" के विशेषांक में प्रकाशित की ।

2- कथा साहित्य के प्रौढ़ रूप का विकास :-

सन् 1927 में उन्होने अपना "परख" उपन्यास प्रकाशित किया, जिस पर 1928 में 500/- रूपये का हिन्दुस्तानी अकादमी का पुरस्कार मिला । इस पुरस्कार से उनमें आत्म - विश्वास लगा एवम् वह लिखने के प्रति सजग हो गये । इसी वर्ष उनका विवाह हुआ । गुजरात जेल में मात्र दो दिन कहानियां लिखी गई - "चलित चित्र और साधु का हठ" जो उनके वातायन (1930) नामक कहानी - संग्रह में है । जेल से लौटने पर ऋषभ चरण जैन मिले । सन् 1926 से भी पहले लिखे पत्रों को ऋषभ चरण उठा लाये थे एवम् मुलतान जेल में सूचना दी थी कि वह जैनेन्द्र के मन के मुताबिक कहानी पूरी करके - "तपोभूमि" नाम से छाप रहे हैं । जैनेन्द्र जी ने आपत्ति नहीं की एवम् जब तक वह जेल से आए तब तक "तपोभूमि" छप चुकी थी । सन् 1929 में जैनेन्द्र जी की तीन कहानियां "फांसी" नाम से उन्होने ही छापी थीं । और लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में एक पूरा संस्करण बेच डाला था । शायद इस पुस्तक से क्रान्तिकारियें का ध्यान जैनेन्द्र जी की ओर गया और उसके परिणामस्वरूप सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" उन्हें प्राप्त हुए । सन् 1935 में सुनीता नामक उपन्यास लिखा गया । इसके पश्चात हिन्दी रत्नाकर, बम्बई के मालिक नाथूराम "प्रेमी" जी ने जैनेन्द्र जी से कहा था कि एक सौ के लगभग पृष्ठों का उपन्यास तुम्हें देना है । "प्रेमी जी" द्वारा जैनेन्द्र जी हिन्दी साहित्य में आये थे एवम् अपने को उनका कृतज्ञ अनुभव करते थे । इसीलिये आग्रह टल नहीं सकता था और "त्यागपत्र" (1932) का सृजन हुआ । "त्यागपत्र" लोकप्रिय हुआ तथा प्रेमी जी के अनुरोध पर फिर "कल्याणी" (1939) की रचना हुई । इसी की प्रेरणा के सम्बन्ध में जैनेन्द्र जी का कथन है - "दिल्ली में उड़िया भाषा की सफल कवयित्री कुन्तल कुमारी डाक्टरी की प्रेक्टिस करती थी । उनका अचानक देहान्त हो गया । दिल्ली के साहित्यिक क्षेत्र में वह अच्छी परिचित थीं एवम् अभ्यर्थिनी मानी जाती

थीं । "कल्याणी" मानो जैनेन्द्र जी की ओर से उन्ही की स्मृति का दर्पण है । यह सन् 1937-38 की बात है ।

पांच कहानी संग्रह - फांसी (1929) वातायन (1930), नीलम देश की राजकन्या (1933), एक रात (1934), दो चिड़िया (1935), और एक निबन्ध संग्रह प्रस्तुत प्रश्न (1936) प्रकाशित हो चुके थे, परन्तु जैनेन्द्र आर्थिक स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था । उनके शब्दों में तो "बेफिक्री" की रोटी तो कभी मिली नहीं ।

सन् 1939 से 1951-52 तक जैनेन्द्र ने कोई विशेष साहितय का सृजन नहीं किया ।

सन् 1951 के पश्चात् जैनेन्द्र के उपन्यासों के प्रणयन का दूसरा चरण आरम्भ हुआ "सुखदा" तथा 1952 में "विवर्त" प्रकाशित हुआ । सन् 1953 में व्यतीत एवम् 1956 में जयवर्धन उपन्यास का सृजन हुआ । सन् 1965 में "मुक्तिबोध" नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ । इसके पश्चात् 1968 में "अनन्तर" नामक उपन्यास एवम् 1970 में "अनामस्वामी" नामक उपन्यास हुआ । सुखदा धर्मयुग (1952) एवं विवर्त साप्ताहिक हिन्दुस्तान (1953) में धारावाहिक रूप में छपा । मुक्तिबोध आकाशवाणी के लिये लिखा गया था । यह साहित्य अकादमी द्वारा पांच हजार रूपये के पुरस्कार से सम्मानित हो चुका है । सन् 1951 में जैनेन्द्र ने सर्वोदय प्रकाशन नाम से एक प्रकाशन संस्था की स्थापना की । अब तक पूर्वादय - प्रकाशन से जैनेन्द्र साहित्य के अन्तर्गत अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ।

कथा साहित्य का विकासात्मक परिचय :-

जैनेन्द्र का मत है - "आस - पास के जीवन में ही जाते - जागते व्यक्ति तरह - तरह के स्वभाव लेकर तरह - तरह के कर्म करते हुए जी रहें हैं, उनमें ही तुम क्या नहीं पा सकते हो ?

प्रथम कहानी जैसा कि जैनेन्द्र ने कहा कि एक मित्र एवं उनकी पत्नी के जीवन में घटी एक दिलचस्प घटना के आधार पर लिखी गई थी। "फोटोग्राफी" नामक कहानी में तो ऐसे जीवन का फोटोग्राफ ही लिया गया था। "अन्धे का भेद" नामक कहानी अपनी भानजी के आग्रह पर जैनेन्द्र ने एक अन्धे फकीर को लेकर लिखी थी। वह अन्धा फकीर गली में भीख मांगता फिरता था। कल्पना से अन्धे के अतीत की रचना की एवम् इस प्रकार प्रस्तुत किया कि पाठक उसके भविष्य के प्रति भी उत्सुक रहे। "ब्याह" नाम की कहानी की प्रेरणा जैनेन्द्र को एक बूढ़े बढ़ई से मिली थी जो पुस्तकालय में कुछ मरम्मत करता हुआ अध्ययन से व्याघात उत्पन्न कर रहा था उस बूढ़े को देखकर जैनेन्द्र कुछ समय के लिए जड़ीभूत हो गया फिर घर जाकर उन्होने "ब्याह" की रचना की। छः वर्ष की अवस्था में गुरूकुल में जैनेन्द्र आदि पुराण की कथा सुन रहे थे। भारत बाहुबलि का प्रसंग चल रहा था। इस प्रसंग का उनके चित्त पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। एवम् उनकी आंखें से अश्रुधारा बहने लगी। सन् 1934 में बाहुबलि के उसी प्रसंग को लेकर जैनेन्द्र ने बाहुबली कहानी की सृष्टि की। सन् 1929 में "परख" की रचना भी कुछ वाहन परिस्थितियों से प्रेरणा प्राप्त होने पर हुई। पांच कहानी संग्रह - "फांसी" (1929), वातायन (1930), नीलम देश की राजकन्या (1933), एक रात (1934), दो चिड़िया (1935) एवं एक निबन्ध संग्रह "प्रस्तुत प्रश्न" (1936) में प्रकाशित हो चुके थे।

सन् 1953 में सुनीता उपन्यास लिखा गया। सत्यवती दिल्ली में कांग्रेस की एक बड़ी सेविका हुई है। उसे सार्वजनिक जीवन में कार्य करते हुए देखकर जैनेन्द्र के मन में कुछ विचार उठे। "सत्यवती की शहादत और त्याग की प्रशंसा की जायेगी पर उसके जीवन में क्या शांति थी ?" इतनी सी बात को लेकर "सुखदा" की कथावस्तु मूल्य का सृजन हुआ। परन्तु सुखदा का जीवन सत्यवती का जीवन नहीं है। यथार्थ से तो मात्र एक संकेत ग्रहण किया गया है। त्यागपत्र (1932) की प्रेरणा के विषा में जैनेन्द्र का

कहना है कि उसकी प्रेरणा हाथरस के एक मकान में देखी एक स्त्री की मुद्रा से मिली थी । उस स्त्री की वेश - भूषा एवम् सादगी का जैनेन्द्र पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था । कुन्तला कुमारी नाम की उड़िया भाषा की एक कवयित्री एस्टलैंन्ड रोड पर रहा करती थी । जैनेन्द्र का उनसे परिचय था । वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित थे । उनकी मृत्यु पर जैनेन्द्र ने उनके संस्मरण के रूप में कल्याणी की रचना की । उक्त कवयित्री के विषय में जेनेन्द्र सब कुछ तो नहीं जानते थे परन्तु अपने परिचय में वह जो कुछ भी समझ सके थे, उसकी कल्पना से सम्बद्ध करके उन्होने पृष्ठों में उतार दिया । कल्याणी का व्यक्तित्व कदाचित् इसीलिए पाठक के लिए इतना रहस्यमय है, कि लेखक स्वयं कुन्तला कुमारी के विषय में काफी अन्धकार में था । "व्यतीत" (1953) के सम्बन्ध में जैनेन्द्र का यह कहना है कि यद्यपि "शेखर एक जीवनी" से इसका साम्य सचेष्ट नहीं है परन्तु स्वयं अज्ञेय का जीवन इस उपन्यास के लिखने में लक्ष्य तो नहीं, उपलक्ष्य जरूर था । "जयवर्धन" (1956) उपन्यास जैनेन्द्र के अब तक प्रकाशित उपन्यासों में सबसे अलग एवम् विवादग्रस्त उपन्यास हैं । सन् 1965 में मुक्तिबोध नामक उपन्यास सामने आया । इसके पश्चात् अनन्तर (1968) एवम् "अनामस्वामी" (1970) प्रकाशित हुआ ।

"सुखदा" धर्मयुग (1952) एवम् विवर्त साप्ताहिक हिन्दुस्तान (1953) में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए हैं । मुक्तिबोध आकाशवाणी के लिए लिखा गया था । यह साहित्य अकादमी द्वारा पांच हजार रूपये के पुरस्कार से सम्मानित हो चुका है ।

सन् 1951 में जैनेन्द्र ने "पूर्वोदय प्रकाशन" नाम से एक प्रकाशन संस्था की स्थापना की । अब तक "पूर्वोदय प्रकाशन" से जैनेन्द्र साहित्य के अन्तर्गत अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ।

जैनेन्द्र की रचनायें :-

(क) उपन्यास :-

हिन्दी का उपन्यास साहित्य आज भी प्रेमचन्दीय परम्परा के किसी न किसी रूप में अपनाये हुए हैं । कथानक का सृजन, पात्रों का चयन, वातावरण न का चयन, जीवन के अनेक पहेलुओं का आंकलन आज भी उपन्यास की प्रमुख विषम वस्तु है । प्रेमचन्द्र जी की कथा का उद्देश्य सामाजिक था । वह मनुष्य के जीवन को सामाजिक मंगल के सन्दर्भ में चित्रित करने के इच्छुक थे । समाजगत जीवन को परखने तथा आंकने के लगातार प्रयत्न उपन्यासकारों द्वारा किये जा रहे थे । औपन्यासिक जीवन की इस वहिर्मुखता के प्रति विद्रोह करने वाले प्रथम उपन्यासकार जैनेन्द्र जी हैं । जैनेन्द्र जी के उपन्यास में समाजगत जीवन के प्रतिनिधित्व चित्रण की अपेक्षा व्यक्ति को मूलतः "व्यक्ति स्वीकार कर उसकी धारणाओं को वाणी देने का प्रयत्न किया है । जैनेन्द्र जी व्यक्तिगत जीवन का चित्रण करते हुए बाहर से भीतर की ओर आये हैं । एवम् सामाजिक समस्याओं के निरूपण की जगह पर व्यष्टिगत उलझनों का विश्लेषण करने लगे हैं । उनमें व्यष्टिगत चरित्र, व्यष्टिगत जीवन दर्शन और व्यष्टिगत मनोविज्ञान का निरूपण प्राप्त होता है । इसीलिये उनके उपन्यासों को "व्यक्तिवादी उपन्यास" कहा जाता है । डा0 सुषमा धवन के शब्दों में - "यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास का प्रथम रूप हे, जिसमें यथार्थ का चित्रण नितान्त वैयक्तिक है और जो मध्यवर्गीय समाज के नवीन दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति देता है ।[1] जैनेन्द्र जी ने प्रेमचन्द्रीय औपन्यासिक परम्परा को एक नवीन मोड़ दिया है । इसीलिये उन्हें "परम्पराओं को एक विद्रोह करने वाला उपन्यासकार"[2] कहा जाता है ।

1- डा0 सुषमा धनव : हिन्दी उपन्यास : पृष्ठ - 170

2- डा0 विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना : पृष्ठ - 24

जैनेन्द्र जी के शब्दों में - "उपन्यास के बारे में मेरी अपनी धारणा यह है कि वह जीवन में गति देने के लिये है । गति यानि चैतन्य, गति धक्के की नहीं । पीठ की ओर से धक्का दीजिये तो उसमें व्यक्ति आगे की ओर बढ़ता जरूर है, पर बिगड़ता भी बहुत है । तीव्र और आकस्मिक धक्के हों, तो कौंधे गिरने की सम्भावना है । इसीलिये गति को चैतन्य के अर्थ में कहा, अर्थात आगे के रास्ते को साफ - साफ आंखों में उंगली डालकर बताने वाला उपन्यास नहीं और साहित्य, साहित्य नहीं .... साहित्य गति देते हुये भी स्थिति को भंग नहीं करता । उसमें गति को वेग मिलता है । तब स्थिति को समर्थन भी प्राप्त होता है । .... उपन्यास का वष्ट गति है । इस गति का सम्बन्ध बाहरी किसी दशा से नहीं है । स्थूल दृष्टि से कहें तो उपन्यास का लक्ष्य वाहन गतियों को मन्द करना भी कहा जा सकता है । वासनाओं के वशीभूत होकर जो अहंकृत दौड़ - धूप की जा रही है, उपन्यास उसकी तो व्यर्थता ही प्रगट करता है .... फिर भी यह स्पष्ट रहे कि गति - विरोधी स्थिति का समर्थन भी उपन्यास में नहीं है ।"[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में मनुष्य के आचरण का विश्लेषण प्रमुख रूप से प्राप्त होता है । वर्तमान जीवन बाह्य सभ्यता ओढ़ लेने की वजह से अपरिचित होता जा रहा है । अन्दर से विष छिपाने वाला मनुष्य भी बाहर से अमृत सा मीठा दिखलाई देने का प्रयत्न करता है । जैनेन्द्र जी ने इन उलझनों, ग्रन्थियों व जटिलताओं को सहज रूप में प्रकट करने का प्रयत्न किया है । उनके उपन्यासों का व्यक्ति अन्दर से उभरकर बाहर जाने का प्रयास करता है । जीवन की कठोर जटिलताओं उसके मन में ग्रन्थियां बनाती हैं, परन्तु वह उन्हें छिपाकर जीने का इच्छुक नहीं है । उसे खुलकर जीने का शोक है - "बाहर से चिपकाना कोई भी लेबिल उस व्यक्ति को

1- जैनेन्द्र : साहितय का श्रेय और प्रेय, पृष्ठ - 153-156

स्वीकार्य: नहीं उसके भीतर पशु है तो वह उसे ललकारता है, देवता है जो वह उसे सजग करता है ।[1] उसे आदर्श की चिन्ता नहीं, अन्तर्मन की यथार्थता का ध्यान है । बाहर से ओढ़ी मार्यादाओं की अपेक्षा जो मनुष्य अन्दर की ईमानदारी को ज्यादा महत्व देता है, वही मनुष्य जैनेन्द्र जी के उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु है । जैनेन्द्र जी ने जो महत्व व्यक्ति को दिया वह समाज को नहीं उनके प्रमुख औपन्यासिक पात्र अधिकांशतः समाज के प्रति विद्रोही हैं । उनका यहं इतना प्रबल है कि वे समाज के बन्धनों में बंधने से अस्वीकार कर देते हैं ।

जैनेन्द्र जी का औपन्यासिक लक्ष्य मनुष्य के मन की आन्तरिक स्थितियों को ही कथावस्तु का माध्यम बनाया है । श्रीमती ओम शुक्ल के मतानुसार - "उन्होने मनोविज्ञान के सहारे मानव की दमित वृत्तियों का उद्घाटन कर उसे प्रेम और अहिंसा जैसे उच्च आदर्शो की ओर प्रेरित किया है ।[2]

मनोविश्लेषण के प्रश्रय की वजह से जैनेन्द्र जी के आपन्यासिक कथानक अत्यन्त सूक्ष्म होते गये हैं । डा0 देवराज उपाध्याय का कहना है - "जैनेन्द्र का विचार करने का ढंग संश्लेषणात्मक हो, विश्लेषणात्मक नहीं ।"[3] परन्तु जैनेन्द्र जी की विचारणा भले ही संश्लेषणात्मक हो, उनका ऊँचा संगठन मनोविश्लेषणात्मक से अत्यन्त प्रभावित है । यही वजह है कि उनके औपन्यासिक संगठन में कथावस्तु की घटनात्मकता का अभाव है और कथावस्तु के निष्ठ संयोजन की अपेक्षा है ।[4] जैनेन्द्र जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए "परख" नामक उपन्यास में कहा है - "मैने जगह - जगह कहानी के

1- डा0 मनमोहन सहगल : उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन

2- डा0 ओम शुक्ल : हिन्दी उपन्यास की शिल्प - विधि का विकास : पृष्ठ - 219

3- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ - 46

4- डा0 विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना : पृष्ठ - 41

तार की कड़ियां तोड़ दी हैं ।"[1] इस तरह कथावस्तु के तारतम्य को अस्वीकार कर कथा में रोचकता लाने का प्रयत्न किया है तथा इस प्रयत्न में जीवन की वास्तविकता से दूर मनुष्य के मन की आन्तरिक संकल्प - विकल्प, मानशिक विकृतियों तथा कुण्ठाओं का चित्रण करने के लिए सूक्ष्म तथा रहस्यमय कथा का आधार ग्रहण किये हैं । जैनेन्द्र जी के ही शब्दों में - "मैने कहानी कोई लम्बी चौड़ी नहीं कही है । कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है । अतः तीन चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है .... अपने चित्र के लिये बड़े कैनवास की जरूरत मुझे नहीं आई ।[2] इस तरह सूक्ष्मकथा विन्यास के द्वारा मनुष्य के मन के अन्तरंग का चित्रण कर जैनेन्द्र जी ने कथा विधि के नये रूपों को अभिव्यक्ति दी है ।

जैनेन्द्र जी ने अब तक ग्यारह उपन्यास प्रस्तुत किये गये हैं । उनके औपन्यासत्व को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है :-

(1) विश्रान्तिकाल पर्व
(2) विश्रान्तिकालेत्तर ।

1- विश्रान्तिकाल पर्व :-

1- परख (1929)   2- सुनीता (1935)
3- त्यागपत्र (1937)   4- कल्याणी (1939)

2- विश्रान्तिकालोत्तर उपन्यास :-

1- सुखदा (1952)   2- विवर्त (1952)   3- व्यतीत (1953)
4- जयवर्धन (1956)   5- मुक्तिबोध (1967)   6- अनन्तर (1968)
7- अनामस्वामी (1974)

1- जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ - 5

2- जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ - 87

1- परख [1929] :-

सत्यधन तथा बिहारी दो मित्र हैं । सत्यधन आदर्शवादी तथा बिहारी व्यावहारिक हैं । सत्यधन वकालत तो पास कर लेता है, परन्तु वकालत करने से उसे घृणा हो जाती है । नगर के शोर - गुल से दर गांव में आकर अपनी थोड़ी सी जमींदारी के बल पर वह जीवन व्यतीत करने लगता है । तभी नगरीय सभ्यता के बाहरी दिखावे से अछूते ग्रामीण किशोरी कट्टों से उसका सम्पर्क बढ़ता है । कट्टों सत्यधन से प्रेम करती है । सत्यधन भी उसे पढ़ाते - पढ़ाते कुछ आकर्षण का आस्वादन करने लगता है । कट्टो विधवा होते हुए भी सत्यधन के प्रति पैदा रागात्मक सम्बन्धों की वजह से स्वयं को सधवा महसूस करने लगती है । गांव के मेले से सिन्दूर की डिबिया व सामान्य शीशा इत्यादि श्रृंगारिक वस्तुएं खरीद लाती है । परन्तु सत्यधन बिहारी की बहिन गरिमा से शादी कर लेता है । कट्टो मेले से खरीदी हुई श्रृंगारिक वस्तुएं गरिमा को भेंटकर देती है तथा उनके मार्ग से हट जाती है । वह विवाह दैहिक न होकर आध्यात्मिक है - हम दोनों वैधव्य यज्ञ की प्रतिज्ञा में एक दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बंधते हैं । हम एक होंगे - एक प्राण दो तन । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा, ... यह महाशून्य साक्षी हो, हम कट्टो बिहारी सदा एक दूसरे के प्रति कट्टो बिहारी रहेंगे, न कम न ज्यादा ।[1] सत्यधन तो गरिमा के साथ वैवाहिक जीवन व्यतीत करता है, परन्तु उसे आगे भी कट्टो के आत्मत्याग का सहारा लेना पड़ता है । बिहारी के पिता अपनी सम्पत्ति बिहारी के नाम पर कर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं ।

इस पर सत्यधन के स्वाभिमान पर ठेस पहुँचा तथा उसे किराये के छोटे से मकान में रहने को विवश होना पड़ा । कट्टो उसे घर लौटने का विनय करती है, किन्तु सत्यधन घर नहीं लौट पाता । तब कट्टो चालीस

1- जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ - 87

रूपये देती है । जिस कट्टो को उसने खुद ही छोड़ दिया था उसी का वह बलिदान सत्यधन के मन में हिलोरे लेने लगता है । बिहारी तथा कट्टो में सम्बन्ध - विच्छेद हो जाता है । बिहारी किसान बनकर एवम् कट्टो गांव की बच्चियों को पढ़ाकर अपना समय बिताती है ।

"परख" श्री जैनेन्द्र जी की प्रथम औपन्यासिक रचना है । यह हिन्दी का प्रथम मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास हैं, जिसमें विधवा कट्टो तथा सत्यधन के मानसिक तनावों के विश्लेषण का प्रयास किया गया है । इन पात्रों के मानस गहराई में बैठने पर हमें जो संघर्ष दिखाई पड़ता है, वह संघर्ष हृदय तथा बुद्धि का है । हृदय यहां व्यक्ति स्वातंत्र्य का और बुद्धि सामाजिक रूढ़ियों के प्रतीक हैं । हृदय की गति निर्वाध है, उसका प्रवाह रूकना नहीं जानता, वह तो निरन्तर ही कहना चाहता है । किसी बाधा की अपेक्षा वह नहीं करता । बुद्धि हृदय के उन्मुक्त वेग को नियंत्रित करने का प्रयास करती है । सामाजिक नियम व्यक्ति की निर्वाध स्वतंत्रता पर अंकुश रखना चाहते हैं, परन्तु हृदय के प्रवाह के सम्मुख बुद्धि को, व्यक्ति के मनोविज्ञान के सामने समाज की नीति विधान को हार खानी पड़ती है । लेकिन समाज अपनी पराजय को स्वीकार न करता हुआ व्यक्ति को पुनः दबाने की चेष्टा करता है ।[1] हृदय तथा बुद्धि और व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा सामाजिक नियमों की इन्ही क्रिया - प्रक्रियाओं का सजीव अंकन "परख" में हुआ है । लेखक के शब्दों में - "सत्यधन की व्यर्थता मेरी है और बिहारी की सफलता मेरी भावनाओं का है और कट्टो वह है जिसने मुझे व्यर्थ किया और जिसे मैं अपनी समस्त भावनाओं का वरदान देना चाहता था ।"[2]

1- डा० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास : पृष्ठ - 173

2- जैनेन्द्र कुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृष्ठ - 20

2- सुनीता (1935) :-

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "सुनीता" नामक उपन्यास हिन्दी का ऐसा प्रथम उपन्यास है, जिसने मनुष्य के मन की तनाव - पूर्ण स्थिति का मनो-विश्लेषण किया गया है । उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं - सुनीता, श्रीकान्त, हरीप्रसन्न । उपन्यास का नायक हरिप्रसन्न है । उसी को लेकर सब घटनाएं घटती हैं । वह एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता है, जिसमें प्रतिभा तथा योग्यता है । फिर भी उसका जीवन उद्देश्य विहीन था व्यवस्थित नहीं है । श्रीकान्त उसके जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करता है । वह अपने कालेज के दोस्त हरि प्रसन्न का जिक्र अपनी पत्नी सुनीता से आये दिन करता रहता है । श्रीकान्त के मन में छिपी हरि प्रसन्न विषयक वेदना का अनुभव सुनीता भी करती है । वहां हरिप्रसन्न एक दिन श्रीकान्त के आमन्त्रण पर उनकी गृहस्थी में आकर रहता है । तथा सुनीता की तरफ आकृष्ट होता है । श्रीकान्त अपने दोस्त को किसी भी कीमत पर साधारण बनाना चाहता है । इसी मध्य वह सुनीता पर हरि प्रसन्न को देख रेख करने एवं उसकी प्रत्येक इच्छा पूरी करने का दायित्व सौंपकर कार्यवश स्वयं लाहौर चला जाता है । हरि प्रसन्न सुनीता को दल की प्रेरणामयी शक्ति स्वीकार कर आधी रात के समय अपने दल वालों के सामने ले जाने के लिए प्रेरित किया करता है । गन्तव्य जगह तक पहुँचने से पहले लाल रोशनी से खतरे का अनुभव कर वह सुनीता को लेकर निर्जन वन की झाड़ियों की झुरमुट में बैठ जाता है । एकांत में सुनीता को समूची पा लेना चाहता है । सुनीता हरिप्रसन्न की दमित-वासना पूर्ति हेतु वस्त्र रहित हो जाती है । इसके पश्चात् सुनीता को उसके घर पहुँचा कर वहां से भाग जाता है । श्रीकान्त के घर लौटने पर जब सुनीता द्वारा सम्पूर्ण घटना की जानकारी होती है तो वह पत्नी के प्रति कृतज्ञता जाहिर करता है कि उसने उसके मित्र हरिप्रसन्न की ग्रन्थि खोलकर समाज की भलाई की है । सुनीता जिसने पति के आग्रह से हरिप्रसन्न के

सामने अपने को समर्पित कर दी थी, पहले जैसा पति - प्रेम की पात्री बनी रहती है ।

जैनेन्द्र जी ने सुनीता में नारी - पुरूष की अतृप्त काम - वासना को दार्शनिक आवरण में प्रस्तुत किया है । हिन्दी - उपन्यास जगत में सुनीता, हरिप्रसन्न तथा श्रीकान्त अपने ढंग के अकेले पात्र हैं - "हमारे उपन्यासों में अब तक ऐसा पति नहीं था जो अपनी पत्नी को अपने डा० नन्ददुलारे मित्र के साथ अवैध प्रेम - सम्बन्ध रखने को प्रोत्साहित करें ।[1] आचार्य नन्द दुलारे बाजपेई के मत में - "सुनीता और हरिप्रसन्न" का व्यवहार कृत्रिम भाव प्रवणता के माध्यम से वासना का उद्रेक करता है जो उपन्यास की भूमिका के वक्तव्य के प्रति स्वयं एक चुनौती है । पात्रों की मानसिक विकृतियों आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ाया गया है । .... "सुनीता" के पात्रों की अवधारणता केवल एक आवरण के कारण है, वह आवरण है एक अस्पष्ट भावात्मकता और गोपनीयता का । मैं उसे सच्चा आदर्शवाद नहीं कर सकता ।[2]

डा० सावित्री मठपाल का कथन है कि - "इस उपन्यास में लगता है कि जैनेन्द्र घर को बढ़ाते हुए बाहर के निर्माण की दिशा निर्देशन करना चाहते हैं । ﴾डा० सावित्री मठपाल - जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र, पृष्ठ - 56﴿ ।

3- त्यागपत्र ﴾1937﴿ :-

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "त्यागपत्र" नामक उपन्यास में एक नारी के अतृप्त जीवन की करूण कहानी है । इसके प्रमुख पात्र हैं - प्रमोद तथा उसकी बुआ मृणाल । प्रमोद तो एक दृष्टा तथा कथाकार है जो अपनी बुआ के जीवन के बदलाव को देखकर आन्तरिक चेतना के वशीभूत होकर जज के पद से त्यागपत्र दे देता है । कथा के प्रारम्भ में मृणाल एक मात्र-पितृ विहीन कुमारी है जो अपने भाई - भवज के संरक्षण में पलती है ।

भाभी के कठोर स्वभाव तथा अनुशासन की वजह से वह कोमल स्वभाव - प्रसन्नचित बालिका अपने आप में सहमी - सी रहती है । वह अपने भतीजे प्रेम को बहुत प्यार करती है एवम् उसी के आगे वह अपने मन की बातें तथा सुख दुख कहती है । अपनी छात्र जीवन में वह अपनी सहेली शीला के भाई के प्रति आकृष्ट हो जाती है । यह मालूम होने पर भाभी मृणाल को कठोरता पूर्वक पीटती तथा जल्दी ही उसका विवाह एक अधेड़ उम्र के दहेज लोभी व्यक्ति से कर देती है । जिसकी वजह से मृणाल का जीवन कष्टमय हो जाता है । विवाहित पति के प्रति पूर्णतः बफादार बनने के लिए मृदुल स्वभाव मृणाल अपने पूर्व प्रेम के आकर्षण का जिक्र पति से करती है । फलस्वरूप पति द्वारा उसे मारपीट कर चरित्र हीनता का आरोप लगाकर घर से निकाल दिया जाता है । इस परिस्थिति में वह एक कोयले वाले के साथ जीवन यापन करने लगती है । मृणाल का भतीजा प्रमोद उससे घर लौट चलने का विनय करता है । परन्तु वह नहीं मानती । मृणाल से अपनी उद्दाम वासना की तृप्ति होने पर वह कोयले वाला उसका परित्याग कर दूसरी जगह चला जाता है । तथा मृणाल अस्पताल में एक बच्ची को पैदा करती है जो दस महीने की होकर ही संसार से विदा ले लेती है । इसके बाद मृणाल एक डाक्टर के घर में बच्चों को पढ़ाकर किसी तरह जीवन व्यतीत करने लगती है । तथा वह भटकती हुई समाज के निम्न लोगों के बीच जा पहुँचती है जहां उसे घातक रोग पकड़ लेता है । इस कष्टमय परिस्थिति में मृणाल का भतीजा प्रमोद उसके पास पहुँचता है तथा उससे पुनः घर वापस चलने को कहता है । मृणाल स्वयं अपने को प्रमोद के स्तर के अनुकूल नहीं समझती है । अतः उसके आग्रह को स्वीकार नहीं करती है । प्रमोद बुआ की कुछ मदद तो करता है परन्तु फिर अपने व्यवसाय में फंसकर बुआ का समाचार नहीं ले पाता है । संसार की इन कष्टों को झेलती हुई मृणाल एक दिन अपनी सम्पूर्ण वेदना को लेकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है । मृणाल की

मृत्यु की खबर पाकर प्रमोद आत्मग्लानि से डूबकर अपने संपूर्ण जीवन को तत्वविहीन स्वीकार करता हुआ जजी के उच्च पद से त्यागपत्र देकर विरक्त जीवन व्यतीत करने लगता है ।

डा० देवराज उपाध्याय के कथनानुसार - "त्यागपत्र एक ट्रेजडी है - वज्र हृदय को भी हिला देने वाली ट्रेजडी । मृणाल की नियति की कुटिलता को जरा देखिए - ट्रेजिडी उसके अनाथ होने में नहीं, उसके जीवन में रोटियों के लाले पड़ने में नहीं, उसके तिल - तिल कर मरने में नहीं, बल्कि पति के प्रति समर्पित होकर जीवन व्यतीत करने के कारण, पति को - उपेक्षिता हो नारकीय जीवन को स्वीकार कर लेने पर बाध्य होने में है । परिस्थितियों के नीचे दबकर कब्र में चला जाना तो कुछ नहीं, पर परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर, एक सती साध्वी स्त्री को अपवित्र वेश्या जीवन की भयंकर यंत्रणा को स्वीकृत करने के लिये बाध्य होना - यह आत्मा की ट्रेजडी है । ...... सचमुच "त्यागपत्र" मानव - आत्मा की एक बहुत बड़ी ट्रेजडी है ।"[1]

4- कल्याणी (1939) :-

"कल्याणी" नामक उपन्यास की नायिका "कल्याणी" विदेश जाकर डाक्टरी की शिक्षा ग्रहण करती है । अपने प्रवासकाल में एक ऐसे युवक से प्रेम करती है जो अब नेता तथा प्रीमियर है । अपने देश लौटने पर डा० असरानी के घटनाचक्र में फंसकर उसे डाक्टर असरानी से शादी करना पड़ता है । किन्तु शादी के पश्चात् वह पत्नी का शरीर ही प्राप्त कर पाता है, मन नहीं । कल्याणी शिक्षित तथा सुसभ्य है । उसका उदारवादी मन रूढ़ियों के बन्धन में न जकड़कर स्वच्छन्द वातावरण में विचरण करना चाहता है । वह स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने में विश्वास करती है । शिक्षित होते हुए भी डा० असरानी रूढ़िवादी संस्कारों से ग्रसित है । परन्तु पत्नी का स्वच्छन्द आचरण उन्हें असह्य है । यहां तक कि वह पत्नी पर चरित्रहीनता का

आरोप लगाकर उसे कठोरतापूर्वक पीटते भी हैं, कल्याणी एक मर्यादित महिला है, अतः वह शादी की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए इस अत्याचार को शान्त भाव से सहन कर लेती है । डा0 असरानी उसे घर से बाहर कर देते हैं । कल्याणी पांच - छः दिन घर से बाहर रहती है । पड़ोस की स्त्रियां पति की निरंकुशता के प्रति उसे उकसाती भी है, किन्तु वह पति के प्रति कृतघ्न नहीं बनती है । शारीरिक तथा मानसिक यंत्रणा की वजह से कल्याणी के अन्दर घोर निराशा छायी रहती है । जीवन में विश्वास तथा प्रेम की जगह पर उसे असहनीय कष्ट ही प्राप्त होता है । पति की इच्छा के सामने अपने अपनत्व को बरबस दबाये रखने से उसका जीवन अत्यन्त ही कष्टमय हो जाता है । अन्ततोगत्वा पुत्र जन्म के अवसर पर अपने जीवन के सम्पूर्ण वेदना, असन्तोष तथा सन्ताप लिये वह सदा के लिये मृत्यु को प्राप्त हो जाती है ।

यह उपन्यास भी "घर और बाहर" की समस्या से घिरा हुआ है । जिसमें घर और बाहर न टूट जाने के लिये प्रयासशील कल्याणी न अपना कल्याण कर पाती है तथा न सामाजिक कार्यकर्त्री बनकर बाहर (समाज) का ही कल्याण कर पाती है । इस तरह "कल्याणी" में परिस्थितियों के बन्धन में जकड़ी हुई-नारी के दु:ख की कहानी है ।

डा0 सुरेश सिन्हा ने कहा है - "कल्याणी की परिकल्पना तत्कालीन समाज में पति - पत्नी के मध्य परस्पर अन्तर्विरोध का परिणाम है । पश्चिमी शिक्षा के प्रसार से नारियों में अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रखने की प्रबल भावना जन्म ले रही थी, पर साथ ही वे अपनी परम्पराएं भी नहीं त्यागना चाहती थी .... परिणाम स्वरूप ऐसे विवाहित जीवन अशान्तिपूर्ण और हलचलों से व्याप्त रहते हैं .... कल्याणी का चरित्र इसी सन्दर्भ में विकसित हुआ है ।"[1]

---

1 - डा0 सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना : पृष्ठ संख्या - 175

डा0 नन्द दुलारे बाजपेयी का मत है कि "जैनेन्द्र अपने पात्रों को सुस्पष्ट व्यक्तित्व नहीं देते, न उनके जीवन के सुख, दुःख को सलझे हुए रूप में हमारे सामने रखते हैं । इससे होता यह है कि उनके पात्र एक बड़ी हद तक रहस्यवादी बने रहते हैं । .... पात्रों का व्यक्तित्व और उनकी समस्या ही ठीक तरह से समझ में नहीं आती । यह अस्पष्टता यों तो उनके प्रायः सभी उपन्यासों में है, पर "त्यागपत्र" और "कल्याणी" में इतनी बढ़ी हुई हैं कि पाठक किसी निर्णय पर पहुंच नहीं पाता ।"[1]

सुखदा (1952) :-

"सुखदा" नामक उपन्यास में जो क्रान्ति की कथा वर्णित है, उसमें कहीं भी क्रान्ति का गौरव प्रकट नहीं होता है । सुखदा एक सम्पन्न शाली परिवार की लड़की है । उसकी शादी डेढ़ सौ रूपये पाने वाले युवक से हो जाता है । आर्थिक वैषम्यता की वजह से पति - पत्नी में वैमनस्यता बढ़ने लगता है । गंगा सिंह जो कि सुखदा का नौकर है एक दिन काम का परित्याग कर चला जाता है । दूसरे - तीसरे दिन वह समाचार पत्रों में उसके चित्र देखती है कि वह एक क्रान्तिकारी है जो गिरफ्तार कर लिया गया है । सुखदा का जीवन भी इससे एक नवीन दिशा की तरफ मुड़ जाता है । वह क्रान्ति की तरफ अग्रसर होती है । वह सार्वजनिक जीवन में उतरती है । जहां हरीश नामक क्रान्तिकारी से उसका मिलन होता है । हरीश उसके मन से यह भावना पैदा कर देता है कि नारी एक शक्ति है । देश के उद्धार में उसका सहयोग अनिवार्य है । क्रान्तिकारी दल में रहते हुए लाल के प्रेम में विभोर हो उठती है किन्तु लाल उसका परित्याग कर चला जाता है । इसी मध्य हरीश दल नष्ट कर देता है तथा वह अपने दोसत कान्त (सुखदा के पति) को उकसाता है कि वह उसे पकड़वाकर पांच हजार का पुरस्कार प्राप्त कर ले । दोस्ती का विवशता की वजह से कान्त का रूपया लाकर सुखदा को दे देता है । पति के इस व्यवहार से सुखदा को बहुत ही कष्ट

पहुँचा है तथा वह पति के घर का परित्याग कर अपनी मां के पास चली जाती है तथा अन्ततोगत्वा क्षयग्रस्त होकर अस्पताल में मृत्यु को प्राप्त हो जाती है ।

"घर बाहर" की जो समस्या "सुनीता", "त्यागपत्र" तथा कल्याणी में जिन विभिन्न धरातलों पर व्यक्त हुई थी, उसका ही विकसन इस उपन्यास में पाया जाता है । यहां पर सुखदा, मृणाल तथा कल्याणी की तरह स्वयं नहीं टूटती है । "घर" टूटने लगता है । "बाहर" को बनाने के प्रयास में वह फिर भी सफलता को प्राप्त नहीं कर पाती है ।

डा0 सत्येन्दु ने "सुखदा" नामक उपन्यास के सन्दर्भ में अपने मत प्रकट करते हुए अपने शब्दों में कहा है - "सुखदा उपन्यास को पड़कर लगता है कि उपन्यासकार ने आरम्भ से दो प्रकार के मनोवैज्ञानिक पात्र प्रकारों का चित्रण करना चाहा है । एक है अन्तर्निष्ठ अर्थात इन्टोवर्टेड और दूसरा है बहिर्मुख अर्थात् एक्सट्रावर्टेड । उसने स्त्री सुखदा को बहिर्मुख बना दिया है और कान्त है अन्तर्मुख । ये दोनों मनोवैज्ञानिक प्रकार जब विवाह सूत्र में बंध जाते हैं तो विकट स्थितियां पैदा होती हैं । इसके साथ सुखदा में एनीमना अथवा पु0 भव तथा कान्त में स्त्री भाव भी अवतरित हुआ है । इनके कारण ही उनके जीवन में जटिलतायें बड़ती चली गयी हैं ।"[1]

विवर्त ॥1952॥ :-

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "विवर्त" उपन्यास पुरूर्ष प्रधान है । "विवर्त" उपन्यास में जितने नामक पात्र केन्द्र में स्थित हैं । जितेन एक अंग्रेजी पत्र के सम्पादकीय में काम करता है । जज की लड़की भुवन मोहिनी अपने सहपाठी जितेन से प्यार करती है और उससे विवाह करना चाहती है ।

---

1 - डा0 सत्येन्द्र : सुखदा उपन्यास की विवेचना : पृष्ठ - 43

परन्तु जितेन अपनी विवशता तथा अहंता की वजह से भुवनमोहिनी की प्राप्ति नहीं सम्भव मानता है क्योंकि सम्पन्नता विवशता का वरण नहीं करती । परिणामस्वरूप उसमें हीन ग्रन्थि पैदा हो जाती है । उसकी दमित लालसा उसे क्रान्ति की तरफ ले जाती है । मोहिनी की शादी बैरिस्टर नरेश से हो जाती है । शादी के चार साल बाद एकाएक एक क्रान्तिकारी के रूप में जितेन ने एक मेल ट्रेन को उलटाकर उसके गृह में आश्रय लेने पहुँच जाता है । वह अस्वस्थ्य है कुछ दिन मोहिनी के घर रहकर उसकी सेवा से स्वास्थ्य लाभ पाता है । जिस समय उसके गहने चुराकर ले जाता है । उसके साथी उन गहनों को बेचने का प्रस्ताव रखते हैं, परन्तु वह चाहता है कि भुवन मोहिनी को पकड़ लाया जाये तो नकद पचास हजार रूपये लेकर गहने वापस कर दिये जायें । भुवन मोहिनी को पकड़कर लाये जाने पर वह पचास हजार फिरौती करता है । मोहिनी इसमें अपनी असमर्थता जाहिर करती हैं । तथा फिर अपने पूर्व - प्रेम के वशीभूत हो जिन के पैर पकड़कर उन्हें चूमती है । उसके इस व्यवहार से क्रूर जितेन भी अपनी प्रेमिका को कष्ट पहुँचाने का दृढ़ इरादा बनाकर भीतर से पसीजता है और अपने दल के भरण - पोषण का भार मोहिनी को सौंप कर स्वयं पुलिस के हाथों सौंप देता है । पर पर्याप्त सत्यापन के अभाव में फांसी नहीं चढ़ता ।

"सुखदा" की तरह इसमें भी क्रान्ति की कथा वर्णित होने पर भी क्रान्ति का गौरव नहीं है । यहां भी क्रान्ति को केवल बौद्धिक रूप में माना गया है । हृदय की श्रद्धा उसे अर्पित नहीं की गयी है । जितेन से भुवन मोहिनी की शादी आर्थिक वैषम्यता के कारण नहीं हो पाती । डा0 सुषमा धवन ने कहा है - "अपराध व्यक्ति का स्वभाव नहीं है । मानो कहां दबाव है, ग्रन्थि है, विवर्त है जिसके कारण स्वभाव विभाव को अपना लेता है । सामाजिक दबाव, मानसिक ग्रन्थि, भावात्मक विवर्त ही स्वभाव को विकृत बना देते हैं । "विवर्त" की कहानी बृहत कुछ "सुखदा" से साम्य रखती है ।

सुखदा ही यहां "भुवन मोहिनी" है तथा सुखदा का कान्त ही इस उपन्यास नरेश बन गया है ।

व्यतीत ﴾1953﴿ :-

"व्यतीत" नामक उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया है, जिसका नायक जयन्त है जो बीते हुए पैंतालिस वर्षीय जीवन को याद करता है । जिसमें से गुजरते हुए वह जीवन की घुटन से थका हुआ तथा संसार से विरक्त होकर संयासी हो जाता है । वह एक योग्य, प्रतिभाशाली एवं कार्यकुशल युवक था । जयन्त के पिता की इच्छा थी कि वह प्रतियोगिता में बैठे एवम् किसी उच्च पद को ग्रहण करे । जयन्त की भी यही अभिलाषा थी परन्तु अनिता के साथ प्रेम की असफलता ने उसे जीवन को श्रृंखला विहीन कर दिया । अनिता जयन्त के पिता के घनिष्ठ मित्र की लड़की तथा जयन्त के दूर के रिश्ते की बहिन भी है । उसमें सहज स्नेह की झलक प्राप्त कर जयन्त का मन आनन्दित हो जाता है । उसके पिता उसे सांसारिक यथार्थता तो परिचित कराते हैं । उसकी अस्वीकृति से वह घर से बाहर कर दिया जाता है । वह पचहत्तर रूपये वेतन पर एक समाचार पत्र में सह - सम्पादक बनकर जीवन व्यतीत करता है । अनिता की शादी मिस्टर पुरी से हो जाती है । वह अपने पति से कहकर उसके लिए अच्छी नौकरी की तलाश कर अपने साथ चलने का अनुनय - विनय करती हैं, किन्तु वह जाने से मना कर देता है । अनिता जयन्त के मालिक को एक पत्र के माध्यम से उसकी सामाजिक स्थिति से भलीभांति अवगत करा देती है । परिणाम स्वरूप उसका मालिक अपनी पुत्री सुमिता की शादी जयन्त से करना चाहता है । सुमिता भी आत्मसमर्पण को उद्यत है परन्तु अनिता की प्रेमिल बाद में उसे इस शादी के प्रस्ताव को अमान्य कर देती है । वह सम्पादकीय कार्य का परित्याग कर गृह वाप्स आ जाता है । अनिता उसके लिए कहती और नौकरी की व्यवस्था करना चाहती है, परन्तु वह युद्ध में जाने का निश्चय कर लेता है । इसी

मध्य उसकी भेंट अपने मित्र कुमार से होती है । कुमार अपनी पत्नी उदिता के साथ विलायत जाने को उद्यत है । कुमार की कजिन चन्द्री उसे बहुत प्यार करती है । उसके भावी वियोग की कल्पना से व्यथित होकर वह भी उसी के साथ जाना चाहती है । उदिता का मन यह सहन नहीं कर पाता । कुमार इस विपत्ति को टालने के लिये जयन्त के आगे चन्द्री के विवाह का प्रस्ताव रखता है । जयन्त और चन्द्री दोनों विवाह करने का निश्चय कर लेते हैं । जयन्त अनिता को इसकी सूचना देता है । अनिता कहां दूसरी जगह उसका विवाह कराना चाहती है, परन्तु जयन्त दृढ़ निश्चय के सामने उसे झुकना पड़ता है तथा चन्द्रा से ही जयन्त की शादी हो जाती है । चन्द्रा, जयन्त व अनिता के परस्पर प्रेम - सम्बन्ध से परिचित है । वह जयन्त पर पूरा अधिकार चाहती है । वह यौवन की उमंगों को साकार करना चाहती है किन्तु जयन्त की उदासीनता से ऐसा नहीं कर पाती तथा उसका परित्याग करके चली जाती है । जयन्त प्रेम तथा शादी की असफलताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप फौज में चला जाता है तथा युद्ध में घायल होकर अस्पताल में प्रविष्ट हो जाता है । इस बीच पुनः चन्द्री उसके समीप आने का प्रयास करती है । वहां अनीता उससे चन्द्री को अपनाने का आग्रह करती है । परन्तु वह उदासीन रहता है, उसकी उदासीनता से व्यग्र होकर अनिता अत्यन्त शान्त तथा साफ भाव से उसकी इच्छा के आगे पूर्णतः समर्पित होने को उद्यत हो जाती है । साथ ही वह उसे इस बात का ज्ञान कराती है कि यह सदैव सिर्फ अपने लिये ही जाता आया है, जबकि व्यक्ति को अपने अलावा अन्य के लिये भी जीना होता है । अनिता से जीवन का सन्देश प्राप्त कर जयन्त में विरचित भाव पैदा हो जाती है था वह गेरूआ वस्त्र पहनकर सन्यास ले लेता है ।

"व्यतीत" में जयन्त के अतीतानुभवों के द्वारा जीवन तथा जगत की निस्सारता का वर्णन किया गया है । हृदय एवम् बुद्धि या भावना जगत तथा

व्यवहार जगत के संघर्षो को झेलते रहने पर वह निष्कर्ष रूप में जीवन की निस्सारता पाता है । अनिता तथा चन्द्री दोनों के चले जाने पर उसे ज्ञान होता है कि जीवन की सत्यता शून्य में है "आदमी अकेला आता है - अकेला जाता है, बाकी बीच का झमेला ही तो है । चलो झमेला कटा, राह साफ हुई, आगे उसके अन्त भी साफ दीखता है । होता है सो ठीक ही होता होगा । गतासमगतासूश्च नान शोचन्ति पंडिता ।"[1] जीवन की व्यर्थता की भावना घनी हो जाती है जो जयन्त की जीवन कहानी का तत्व है । तथा यहां व्यतीत उपन्यास का भी तत्व है ।

जयवर्धन :-

जयवर्धन नामक उपन्यास को प्रभाकर माचवे ने कहा है कि - "भविष्यवाणी विचारों का उपन्यास तथा मानवतावादी उपन्यास कहा है ।"[2] जयवर्धन उपन्यास मूलतः राजनीतिक सन्दर्भ में मनुष्य की मानवीय निजता तथा शासन की सामाजिकता के द्वन्द्व की कहानी है । यह डायरी शैली में लिखित है ।

जयवर्धन नामक उपन्यास का नायक जय तथा नायिका इला है । अन्य प्रधान पात्र हैं - आचार्य स्वामी चिंदास्वामी तथा नाथ दम्पत्ति । मैं अलग - अलग राजनीतिक विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं । आचार्य गांधीवाद का स्वामी चिन्दानन्द, भारतीय संस्कृति के पुनरूत्थान और राष्ट्रीय सेवक संघ की हिंदूवादी नीति का, नाथ तथा लिजा साम्यवादी विचारधारा का । प्रत्येक पार्टी जय को पद से हटाने का प्रयास करती है । जय से उनका कहां तथा किन बातों में विरोध है तथा उसकी नीतियां क्या है ? इसका कहीं भी साफ उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । विरोध पत्र का जो उल्लेख किया गया है

1- जैनेन्द्र कुमार : व्यतीत, पृष्ठ - 86

2- डा0 रामदरश मिश्र : जयवर्धन की पहचान : पृष्ठ - 10

वह जय तथा इला के सम्बन्ध को लेकर है । इला विरोधी दल के नेता आचार्य की अनुमति उन्हें प्राप्त नहीं हो पायी है । इसी मध्य जय की सहायता के लिये एक और दल उभरता है - नाथ दम्पत्ति का दल । श्रीमती नाथ (लिजा) इस दल की नेत्री है और जय के प्रति आकृष्ट है तथा उसे प्राप्त करने के लिये वह अपने पति का परित्याग करने के लिए उद्धत है परंतु जय राष्ट्रपति के पद को आवश्यक मानते हुए पद के त्याग की घोषणा कर अनेक दलों के सदस्यों को राज्य संचालन हेतु सर्वदलीय सरकार बनाने को आमंत्रित करते हैं । अन्ततोगत्वा आचार्य जय तथा इला का विधिपूर्वक शादी करवाते हैं, परन्तु शादी के अगले ही दिन जय उसका परित्याग कर भाग जाता है ।

जयवर्धन नामक उपन्यास की मुख्य समस्या इला तथा जय का कुण्ठाग्रस्त व्यक्तित्व है । जय की शासन नीति में विरोध भावना का कोई औचित्य परिलक्षित नहीं होता है । उनके सामने न तो रचनात्मक कार्यक्रम है तथा न विघटनात्मक । जय तथा इला के सम्बन्धों को देखकर स्वामी कहते हैं - "नैतिकता से अलग जीवन टिक नहीं सकता । यह सुविधा का प्रश्न नहीं है, समानता का प्रश्न है और नीति स्त्रोत हमारे धर्मशास्त्र है । समाज राज से नहीं चलता धर्म से, धर्मज्ञ से, धर्मशास्त्र से चलता है ।[1] स्वामी का राज्य की अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं को छोड़कर नैतिकता की चर्चा करना उनकी आन्तरिक अभ्युक्ति को प्रकट करता मालूम देता है । उपन्यास का मुख्य विषय जय का कर्म से आयुक्त व्यक्तित्व न होकर उसके अन्तःकरण का व्यक्ति है । "अन्ततः राजनीतिक सामाजिक समस्याएं जो उठती भी हैं, वे जय के भीतर के मनुष्यत्व के सामने गौण और व्यर्थ हो जाती हैं ।"[2]

1- जैनेन्द्र कुमार : जयवर्धन : पृष्ठ - 70

2- डा0 रामदरश मिश्र : जयवर्धन की पहचान : पृष्ठ - 14

मुक्तिबोध ।1967। :-

उपन्यास का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त हैं । सहाय अपने आदर्श से प्रेरित होकर मंत्रिपद अमान्य कर देते हैं । इस पर उनके स्वजन, मित्र, पत्नी, पुत्री, जमाता, सभी अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु यह दबाव डालते हैं कि वे ऐसा न करें । उनका दामाद कुंवर पूंजीपति हैं । उसके पास अनेक मिलें हैं तथा वह पुनः नयी मिल निर्मित करने की योजना बना रहा है । उसके खिलाफ सरकारी जांच चल रही है । वह सहाय से अनुजय करता है कि वे सम्बन्धित मंत्री से कहकर उसकी विपत्ति दूर करने का प्रयास करें । परन्तु उसे भी वे अमान्य कर देते हैं । उसका पुत्र वीरेश्वर उनकी नीति का स्पष्ट विरोधी है । वह उनके खोखले आदर्शवाद पर डटकर प्रहार करता है । सहाय की पहली प्रेमिका नीलिमा उनके अहं का विगलन करती है । वहां उनमें पुरूषार्थ पैदा करती है । कुंवर को अपने धन का गर्व है तथा वीरेश्वर विद्रोही है । दोनों ही नीलिमा के समक्ष झुक जाते हैं । सहाय का अहं नीलिमा की उदारता, तथा आत्म विश्वास के सामने विचलित हो जाता है । मुस्करा कर सहाय अपनी पत्नी राजश्री को अपने मंत्री बन जाने की सूचना देते हैं ।

यह उपन्यास आत्मकथानक शैली में लिखा गया है । स्वतन्त्रता के पश्चात् पन्द्रह सालों की खींचातानी, आदर्श के प्रति उत्सर्ग की भावना, मंत्रि पद हेतु स्वाभाविक ममत्व के संघर्ष की अनुभूति से उपन्यास का कलेवर तैयार हुआ है । "भारत की केन्द्रीय शक्ति में एक समय विशिष्ट परिवर्तनों की आवश्यकता अनुभव की गई और परिणाम स्वरूप "कामराज योजना" आरम्भ हुई थी । जिसमें मंत्रि पद से त्यागपत्र देने की स्थिति आवश्यक समझी गयी थी ।"[1]

1- डा0 विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना : पृष्ठ - 18

उपन्यास का कथानक जीवन की ऐसी स्वाभाविक परन्तु विचित्र परिस्थितियों से सम्बद्ध है, जिससे मनुष्य अपने चेतना तथा अवचेतन के बीच संघर्ष करता हुआ अनिर्णीत सा रहता है । निजी स्वार्थो का बन्धन उसके विवेक को कुण्ठित करता है । साथ ही मानसिक द्वन्द्व की वजह से वह अन्य मनस्क सा रहता है । मनुष्य की इस तरह की मनोदशा का चित्रण "मुक्तिबोध" में किया गया है ।

अनन्तर [1968] :-

अनन्तर नामक उपन्यास के नायक प्रसाद अपने बेटे - बहू को मधुपर्व के उपलक्ष्य में कश्मीर यात्रा के लिये रवाना कर लौटते हुए शून्य महसूस करते हैं तथा अपनी इस चिन्तन धारा में परिवार के लोगों के मध्य खुद को आवश्यक नहीं महसूस करते हैं, फिर भी वे नैनीताल जाने की योजना बनाते हैं परन्तु दूसरी प्रातः अपरा गुरू आनन्द माधव के साथ उनके समीप जाकर प्रसाद से आज चलने का आग्रह करते हैं । आबू जाते समय एक ही डिब्बे में उन्हें "मिस्टर एण्ड मिसिज" से आरक्षण प्राप्त होता है । प्रसाद उसे वैध स्वीकार नहीं करते हैं । अपरा द्वन्द्व रहित विचारों की युवती है । वह विलायत में आठ साज वैवाहिक जीवन व्यतीत कर तलाक ले चुकी है । उसका मन है - "प्रौढ़ या वृद्ध होने से ही क्या पुरूष के प्रति स्त्री का कर्तव्य समाप्ति हो जाता है ? या युवती होने से स्त्री बुरी हो जाती है । मैं उन युवतियों सी नहीं हूँ जो पुरूष को यौवन के लिये चाहती है ।"[1] वह प्रसाद की यात्रा तथा प्रवास का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मानती है । सेविका की तरह प्रसाद की सेवा में व्यस्त रहने पर आबू में कन्या ईर्ष्या की पात्री बन जाती है । आबू में प्रसाद एक ज्ञान परिषद के उद्घाटन समारोह में भाषण देते हैं - "मरने की बजाय अब मरने का हुनर सीखना और सिखाना है । मारने

1- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ - 27।

के लिये आवेश चाहिये । समाधान पूर्वक मरने में उतनी ही आस्था और निस्वता की आवश्यकता है । असल में निज के जीवन पर ही जिसमें जोखम नहीं आता वह असली प्रेम नहीं है । इसीलिये यह सच भी नहीं है .... जो पूरा होता है वह मौत में भी जीवन देख सकता है ।[1]

वन्या शान्तिधाम के सृजन की योजना बनाती है । इसके लिये वह प्रसाद से मदद चाहती है । इसी मध्य प्रसाद के दामाद आदित्य उसकी पत्नी चारू व बच्चे भी वहां आ जाते हैं । शिवधाम की योना के पूर्व तो आदित्य उपेक्षा सी करता है कि मेरी आश्रम आदि में कोई श्रद्धा नहीं है, किन्तु अपना के एकान्त आग्रह से दूसरे दिन आर्थिक मदद से उद्यत हो जाता है । आदित्य ऐ नवीन प्रोजेक्ट खड़ा करने बम्बई चला जाता है । अपरा भी उसके साथ चली जाती है । अपरा का यह व्यवहार चारू तथा उसकी मां के लिये असह्य हो उठता है परन्तु अपरा आदित्य के संसर्ग में रहकर चारू के सौभाग्य को सुरक्षित रखने के लिये प्रयत्नशील है । इस प्रयास की वजह से वह आदित्य के माध्यम से पीटी भी जाती है । आदित्य तथा अपरा के पारस्परिक सम्बन्ध शून्य मात्र ही रहे हैं । उसका कोई स्पष्ट वर्णन लेखक ने नहीं किया है । अपरा शरीर पर पड़े हुए पिटने के काले दाग चारू को दिखा देती है कि वह आदित्य को किस तरह झेल पायी है । यही वजह है कि अपरा एक सबल आत्मविश्वास के साथ चारू तथा रामेश्वरी की आशंकाओं और सन्देहों को निराकृत करने में सफल हुई । चारू अपनी मां से कहती है - "अम्मा । इसने सीधे आकर मुझसे कहा है कि उनको मैं प्यार करती हूँ । इसके लिए सजा देना चाहो तो सजा दो, माफी दे सकते हो तो माफी दे दो । तुम्हारे वह पति हैं । इसलिए प्यार तुम्हारा फर्ज हो सकता है । मेरा फर्ज नहीं है, फिर भी प्यार है ।

1- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ - 41

इसलिये शायद पाप हो, तो मैं सजा के लिये तुम्हारे पास आ गयी हूँ । कहती है कि तुम या तुम्हारी मां सजा में मुझे मौत तक दें तो उसी क्षण जहर खाकर मैं मर सकती हूँ । .... मैं तो नहीं दे सकी मां, तुम चाहो तो दे दो और चाहो तो माफ कर दो ।[1] वह चारू को सिखलाती है - "हम स्त्रियों के शरीर के प्रति पुरूष में बड़ा लालच होता है । वह हम में अपने को खोने का आतुर होता है । लेकिन उससे पहले चाहता है कि स्त्री भी अपने को लेकर उसमें खो जाये - पुरूष की यह लालसा स्त्री की शक्ति बन सकती है - "चारू । बशर्ते कि स्त्री ऊपर से चाहे जो दीखे भीतर से ठण्डी बनी रहे ।"[2] अन्य जगह वह कहती है - "प्यार में तुम पहल लो, अपने प्यार में तुम बेहया और बेरहम बनो ।"[3] इस प्रकार चारू को उसका पति सौंपकर खुद अलग हो जाती है । यह उपन्यास भी आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है ।

अनन्तर नामक उपन्यास में सबसे अधिक सशक्त पात्र हैं अपरा । उपन्यास की सम्पूर्ण कहानी अपरा के व्यक्तित्व के चारो तरफ घूमती रहती है । वह खण्डित्य - व्यक्तित्व की स्त्री है । तथा जीवन को भोगने के लिये कृत संकल्प है । इस उपन्यास में जैनेन्द्र "घर - बाहर" की समस्या से हटकर पारिवारिक समस्याओं के समाधान के प्रति जागरूक है ।

अनाम स्वामी :-

उपन्यास की समस्त कथा "त्यागपत्र के प्रधान पात्र सरदयाल के द्वारा कही गयी है । सर दयाल जजी से त्यागपत्र देकर हरिद्वार के समीप आकर बस जाते हैं । वहां पर वह अपने बचपनावस्था के दौरान प्रबोध से

1- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ - 146-47

2- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ 139

3- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ - 161

मुलाकात करते हैं जो अब अनामस्वामी के नाम से पुकारा जाता है । उसने एक आश्रम की स्थापना कर रखा है । सर दयाल के साथ उनकी विधवा पुत्री मंजू भी है । उनकी नातिन उदिता (मंजू की लड़की) इलाहाबाद विश्व-विद्यालय की छात्रा है तथा गर्मी की छुट्टी में अपनी मां तथा नाना के पास आयी है । शंकर उपाध्याय उदिता के शिक्षक हैं जो नवीन बुद्धिवादी विचारक हैं । उनका प्रभाव सिर्फ उदिता पर ही नहीं सम्पूर्ण युवा वर्ग पर है । आश्रम जीवन के प्रति उनमें अश्रद्धा है । उन्होने तरूणोत्थान नामक एक संस्था बना रखी है, जिसमें वे तरूणों को नवीन दृष्टिकोण से संघर्षमय जीवन जीने की शिक्षा प्रदान करते हैं । रजनी वसुन्धरा उनकी प्रेमिका के रूप में चित्रित हुई है । वसुन्धरा की शादी की चर्चा उपाध्याय से चली परन्तु उपाध्याय के दोस्त कुमार से शादी हुई । कुमार शादी के कुछ ही साल बाद अपाहिज हो गये । रानी वसुन्धरा कुमार से सन्तुष्ट नहीं हो पाई । कुमार भी उसके प्रति संवेदनशील है । वह चाहता है कि रानी उपाध्याय के द्वारा मातृत्व को प्राप्त करें । मौका प्राप्त कर उपाध्याय भी उसके समर्पण को ठुकरा देता है तथा उसे स्वानुशासन में रखता है ।

वसुन्धरा मानसिक शक्ति के लिए आश्रम में रहना चाहती है, परन्तु उपाध्याय इसका प्रतिवाद करता है । एक दिन उपाध्याय उसकी हत्या कर डालता है उसे असहनीय था "कारण कि वसुन्धरा को पुत्र चाहिए पति के लिए और वह शंकर को तोड़ना चाहती थी प्यार के लिये जो उसकी अपेक्षा आश्रम की ओर आकृष्ट है ।"[1] उधर उदिता उपाध्याय से प्रभावित हो तरूणोत्थान की विद्रोही विचारधारा को अपनाकर खुद स्वजीवन को निर्मित करने का निर्णय लेती है । शंकर उपउध्याय नाना तथा मां की आकांक्षा के खिलाफ उदिता को विदेश भेजने की व्यवस्था करते हैं, खुद एक के पश्चात् एक पत्नी तथा वसुन्धरा की हत्या कर खुद भी विष का इन्जेक्शन लेकर

1- डा0 विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना : पृष्ठ - 63

आत्महत्या कर लेते हैं । उदिता यौन जीवन की शुद्धता को महत्वहीन स्वीकार कर एक ही समय दो - दो पतियों की पत्नी भी बनती है । "प्रेम हुआ, टूटा, फिर हुआ, टूटा । तीसरे प्रेम पर दोनों ने विवाह स्वीकार किया । "भारत लौटने से वह इन्कार कर देती है । वहां पर शंकर उपाध्याय की याद में एक स्मारक बनवाती है ।

"त्यागपत्र" लिखने के बाद लेखक ने अपने मन की उलझन को अभिव्यक्ति देने के लिए इस उपन्यास की रचना की । त्यागपत्र देने के पश्चात् फालतू बने उसके जज महोदया को मैने फिर अपने प्रयोजन से जिला लिया । मैं बस उस बहाने अन्दर मन की उधेड़ बुन को बाहर कागज पर उतारकर छुट्टी पा लेना चाहता था ।[1]

ख - कहानियां :-

जैनेन्द्र जी की अनेक मनोव्यथाएं तथा मनोक्षोभ उनकी रचनाओं में अवज्ञा ही कहीं न कहीं परिलक्षित होती है । उनकी साहित्य की दिशाएं हैं - "उनके उपन्यास, उनकी कहानियां, उनके निबन्ध तथा उनके दर्शन, प्रवचन इत्यादि । उनकी इन साहित्यिक उपलब्धियों के एक विशिष्ट अंग कहानी को ही लिया जाये तो हमें ज्ञात होता है कि उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं । फांसी, वातायन, नीलम देश की राजकन्या, एम रात दो चिड़िया, पाजेब और जय - संलिष्ठ नामक कहानी - संग्रह, जो पाठकों के सामने आ चुके थे । इधर पूर्वादय जो जैनेन्द्र जी की इन कहानियों के विषय में राष्ट्र कवि श्री ने कहा था कि "हिन्दी - साहित्य के कथा - क्षेत्र में रवि और शरत बाबू को एक ही साथ पाया और वह अब पाया (जैनेन्द्र में) । वे निश्चय ही कथानक की दृष्टि से सर्वाधिक सशक्त हिन्दी कथाकार

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : मेरी विवशता ।

हैं, जिन्होने यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त की है तथा जो विशेषाध्ययन की वस्तु माने गये हैं ।"

दार्शनिक तथा बौद्धिक दोनों ही ढंग के विचारों से ओत - प्रोत उनकी मनोविज्ञान पर आधारित कहानियों ने जैनेन्द्र जी को इतना प्रख्यात बना दिया है । एक आलोचक महोदय का यह कथन सर्वथा सत्य है कि जैनेन्द्र जी का नारा ही "कला ईश्वर के लिए है । वे बहुत प्रबल ईश्वर वादी हैं तथा कहानियों और उपन्यासों में उन्हें अन्तिम शरण ईश्वर की ही लेनी पड़ती है ।

जैनेन्द्र जी की कहानियां रूढ़ और बद्ध सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं को झकझोरती है । इस कारण वे विवादास्पद बनीं और उनके बारे में यत्र - तत्र बहुत चर्चाएं हुई । उन चर्चाओं से स्वतः प्रमाणित है कि आलोच्य कहानियों के विचार मर्मस्थ और सक्षम रहे होंगे ।

प्रेम के विषय में जैनेन्द्र जी का अपना एक व्यापक तथा मौलिक दृष्टिकोण है । उनके प्रेम का आधार आत्मा है, जो सबमें स्त्री - पुरूष में भी सम्बन्धों के यथा - तथ्य रूपों के अन्तस्तल में यथार्थ रूप से धड़कती रहती है । जैनेन्द्र जी की प्रेम कहानियों में इसीलिए स्त्री - पुरूष के परस्पर आकर्षण की जो मूल भावना है, वह केवल सेक्स सम्बन्धी नहीं, बल्कि आत्मिक गहराई की यथार्थता की द्योतक है । उसमें एक उदस्त मानवीय सत्य की प्रतिध्वनि होती है ।

जैनेन्द्र जी की कहानी का मूल आधार दर्शन है । वह पाठकों की जिज्ञासा वृत्ति को एक वाणी जाग्रत कर फिर से उसे अतृप्त रखते हैं । अन्त उनकी कहानियों का अत्यन्त गुप्त तथा अस्पष्ट लगता है । वह समस्या के समाधान को पाठक पर छोड़कर स्वयं हट जाते हैं । शेष पाठक केवल समाधान की यात्रा को, तथा आने वाले कष्ट व्यथा को सहन करता

हुआ परिलक्षित होता है । वजह वे कहानी को साधन स्वीकार करते हैं, साध्य नहीं, जिससे मनुष्य के अस्तित्व के शाश्वत - मूल्यों की खोज होती है । वह उनकी धारणा कहानी को निष्कर्ष तक ले जाने की नहीं है । वह पाठक को हल की दिशा तक ले जाना पसन्द करते हैं । वह अन्तर्यात्रा के कथाकार हैं । लाल बहादुर सिंह "हिन्दी कहानी पिछला दशक" लेख में जैनेन्द्र के कहानीकार रूप पर विचार करते हुए लिखते हैं कि "कहानियों का कथ्य व्यापक जीवन और उसके दार्शनिक एवम् नैतिक मूल्यों पर आधारित रहता है ।"[1] कहानी कला के लिए जैनेन्द्र अज्ञता पर जोर देते हैं । वह कहते हैं कि "लेखक जब हाथ में निर्णय लेकर लिखता है तो अज्ञात की उत्सुकता उसके लेखन में नहीं रह पाती ।"[2] यह बात उनकी "पत्नी" कहानी से जाहिर हो जाती है ।

जैनेन्द्र जी की कहानियों के दस भाग प्रकाशित हो चुके हैं । वह जानते हैं कि कहानी के लिये उनके समक्ष कोई कठिनाई नहीं आती है । उलाहनों के लिए उन्होने कई कहानियों का सृजन किया है । वह स्वयं शैली से उसकी टेकनिक से और अनेक ढंगों से अपने को अनभिज्ञ बताते हैं । जबकि उनकी देन हिन्दी कथा के शैली - पक्ष में मानी जाती है । ठाकुर प्रसाद सिंह उसी सम्बन्ध में 'हिन्दी कहानी" में लिखते हुए इस तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि "जैनेन्द्र कुमार अपनी अदायगी में पहले से ही अन्तर्मुख रहे हैं । (यों उनका विश्वास प्रेमचन्द्र की छाया में हुआ) । उनका विकास प्रेमचन्द्र से इतर जाति का रहा । जैनेन्द्र में कहीं - कहीं सामाजिक चेतना भी दीख पड़ी पर इनके साहित्य की पृष्ठभूमि सदैव पारिवारिक रही है, घरेलू स्त्री पुरूष इनके विषय रहे हैं । ..... पहले सक लिख रहे लेखकों में अब तक जैनेन्द्र कुमार, भगवती चरण वर्मा, भगवती प्रसाद बाजपेयी, अपने

1- हिन्दी साहित्य : पिछला दशक : सम्पादक विश्वनाथ : पृष्ठ - 28

2- कहानी : अनुभव और शिल्प : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ - 81

विश्वासों पर स्थिर रहे । इनकी सम्पूर्ण देन हिन्दी के शैली में पक्ष को है ।"[1]

वस्तुतया यह मतैव्य से माना गया है कि जैनेन्द्र जी की कहानियों का अपना शिल्प है, अपना प्रस्तुतीकरण का ढंग है और अपना ही अन्दाज है । शायद मान लिया जाता होगा लिखी, किन्तु जैनेन्द्र जी इसे नहीं स्वीकार करते हैं । वह तो इस सबसे स्वतन्त्र हैं, भिन्न हैं तथा कहते हैं कि "सुनता हूँ कि कहानी लिखना एक शिल्प है और एक कला है । कहानियां मैंने लिखी जरूर हैं और अब भी लिख लेता हूँ लेकिन कला वगैरह का मुझे कुछ पता नहीं है । शायद मान लिया जाता होगा लिखी है तो कहानी को मैं जानता जरूर होऊँगा । .... लिखने के पहले दिन से आज तक मैं कहता जा रहा हूँ कि मैं नहीं जानता हूँ । यहां तक कि जानना चाहता भी नहीं हूँ ।"[2] वस्तुतः जैनेन्द्र जी को पृष्ठभूमि में रखकर "फिट" बैठता है, क्योंकि पहली कहानी उन्होने अपने पुराने साथी के विवाह हो जाने पर उनकी पत्नी के कहानी लिखने के चाव में लिख डाली । अपने मित्र की हस्तलिखित पत्रिका में लिखने के उलाहने से वह कुछ कुछ अनुप्रेरित हुए । मैं फलस्वरूप सन् 28 में उनकी प्रथम कहानी "खेल" विशाल - भारत में छपी जिससे चार रूपये पारिश्रमिक रूप में उन्हें प्राप्त हुए । तब जैनेन्द्र तेइस वर्ष के थे । सन् 1929 में उनका "परख" आया । तब वह चौबीस के पार करने की तैयारी में थे । जैनेन्द्र जी का व्यक्तित्व शैली तत्व के साथ उसी तरह से घुला - मिला है जिस तरह से उनका दर्शन उनके कथा - साहित्य से । जैनेन्द्र की यह तो स्परूरोक्ति है कि वह कहानी के लिए कहानी नहीं लिखे । कहानी - कक्ष के पीछे तत्वानप्रेरित विचार रखता है । अतः जैनेन्द्र तत्ववादी है, दार्शनिक है, विचारक हैं तथा आस्तिक हैं -

---

1- हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियां : ठाकुर प्रसाद सिंह : पृष्ठ - 57

2- कहानी : अनुभव और शिल्प : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ - 61

आदि स्वर आज तेजी से उभरे हैं । उनकी सुकरात बनने की इच्छा हुई ...... जिससे उनका पश्चात् का कथा - साहित्य तत्व दर्शन का पहेलिका में उलझकर बिखर गया है ।

जैनेन्द्र जी मनोवैज्ञानिक अनुभूति के आधार पर विकृतिपूर्ण जीवन का परीक्षण करते हैं । उनकी मनोवैज्ञानिक पद्धति उनके दर्शन तथा चिन्तन-मनन का कारण है । वह जीवन - मंथन में से विकृतियों को एक सहृदय डाक्टर की तरह आविष्कृत करते हैं एवम् तीव्रतम भाव - प्रवाह को साधन के रूप में लेकर उसका समाधान या परिष्कार करना चाहते हैं । वह व्यथा को दबाने का प्रयत्न करते हैं । उनके पात्र अन्तर्मुखी हैं । बाहर मैदान में व्यथा का न तो वे प्रदर्शन करते हैं और खुल्लम खुल्ला विद्रोह । यही कारण है कि उन्होने पाप की अनुभूति से ग्रस्त नायिकाओं को कहानी की नायिका के लिये चुना है । पाप की अनुभूति से ग्रस्त नायिकाएं अन्त तक पहुंचते - पहुंचते पाठकों की सहानुभूति को अपनी तरफ मोड़ लेती है - क्योंकि वह आदर्श की भूमिका की "फार्म" में दिखलाई देने लगती है । किन्तु यह प्रश्न संदिग्धतापूर्ण है कि उनकी नायिकाएं आदर्श के अनुरूप हैं या नहीं । चरित्रहीनता का आरोप उनकी कहानी नायिकाओं की एक विशेषता है । उनके कार्य - व्यवहार में परोक्ष रूप से काम प्रतीड़ा या कामानुभूति कार्य करती परिलक्षित होती है । उनका व्यक्तित्व द्विविधापूर्ण है । यथार्थ की भूमिका पर आदर्श की तैयारी उनके जीवन की द्विधापूर्ण स्थिति की सूचक है । न उनके पात्र परिस्थिति का मुकाबला कर पाते हैं । परिस्थिति पात्रों की नियामक है । यदि उनके पात्रों में विरोध उठता भी है तो वह अहिंसा-त्मक की इयत्ता तक रह जाता है निर्जीव । जैनेन्द्र जी के पात्र नियतिवादी की पराजय को झेलते हैं । वे अपने अस्तित्व के प्रति सजग भी हैं किन्तु उसके लिए निष्क्रिय है । जैनेन्द्र जी पर उनके कहानी पात्रों को लेकर यह आरोप लगाया जाता है कि वह इस कमजोरी तथा क्लीवपन को छिपाने के लिये करूण, अहिंसा, तत्व - दर्शन, पिण्डा पिण्ड, ममता, दया, धर्म आदि

का सहारा लेते हैं । उनके पात्र परिस्थिति में घट रही घटनाओं को अनासक्त भाव से देखते हैं, उससे अभिभूत नहीं होते बल्कि विचार मंचन करके ईश्वर या सर्वशक्तिमान की आड़ में परिस्थिति के लिए समर्पित हो जाते हैं । वे पाप - पुण्य एवम् धर्म - अधर्म से सम्पृक्त हैं । उनकी "विज्ञान" एवम् "अ-विज्ञान (जैनेन्द्र की कहानियां भाग नौ में संकलित है) कहानियों को उनकी इस नीति - अनीति की चर्चा का खूब विषय बनाया गया । एक सज्जन ने लिखा था कि उसकी इस कहानियों को पढ़ जैनेन्द्र साहितय के प्रति श्रद्धा होती जाती रही । फिर उनको क्यों आदर्शवादी एवम् "गांधी वादी" की अभिधा दी जाती है ? यह अहम् प्रश्न है उनके लिये भी जो जैनेन्द्र के विरोधी हैं और उनके लिये भी जो उनके प्रशंसक हैं ।

जैनेन्द्र जी की कहानी साहित्य विस्तृत हैं । उन्होने उनमें कई दृष्टियों को प्रस्तुत किया है । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, यथार्थवाद और सम्भावित यथार्थवाद के दर्शन उनकी कहानियों में सहजता से हो जाते हैं । परिवेश के जरिये व्यंजना योजना एवम् जीवनगत सत्य को प्रस्तुत करना जैनेन्द्र की अपनी विशेषता है । आपने "स्पर्द्धा", "साधु का हठ", तथा "ध्रुव मात्रा" में मन में पड़ने वाली ग्रन्थि को स्वस्थ्य दिशा प्रदान की है । "बिल्ली का बच्चा" तथा "बाहुबलि" कहानी और अन्तर में पड़ने वाली ग्रंथियों का सुन्दर समाधान प्रस्तुत करती हैं । जैनेन्द्र जी ने कल्पना के आधार पर पौराणिक कहानियां भी लिखी हैं जैसे "उर्ध्वबाहु", "गुरू कात्यायन", "भद्रबाहु", इत्यादि । जैनेन्द्र जी ने सुन्दर एवम् स्वस्थ्य चरित्र अपनी कहानियों के द्वारा प्रस्तुत किये हैं । वह चरित्र स्थापन तथा मनोविश्लेषणात्मक ढंग से उसकी विकास योजना में रत रहे हैं । परिवेश के प्रभाव को मनांकित करने में उनको शानदार सफलता प्राप्त हुई है । ऐसी कहानियों में घटना का अभाव रहना जरूरी सा है जो यदा कदा रोचकता को खतरा पैदा कर देता है किन्तु तकीभिव्यंजित चेतना चिन्तनशीलता का उद्याम प्रवाह वहां दृष्टव्य है । उनकी "पानी, पानवाला, इत्यादि कहानी इस नमूने की है । उनकी कहानियों में वाद में मानव की

अस्वस्थ्य वृत्तियों का स्वास्थ्य चित्रण हुआ है । उन्होने कलात्मक प्रतिभा तथा मनोविश्लेषण के माध्यम से अश्लीलता से बचने में अभूतपूर्व सफलता हासिल की है । 'सजीव की भाभी" "अविज्ञान" इत्यादि कहानियों को इस सन्दर्भ में परखा जाता है । सामान्य से सामान्य विषय तथा चरित्र को ग्रहण करके उसके अन्तर्जगत को अच्छी तरह से चित्रित किया गया है । "बिल्ली का बच्चा", इसका खासा उदाहरण है । इनकी "स्पर्द्धा", "ध्रुव", "यात्रा", "नीलम देश की राजकन्या", "वातायन", "एक दिन", "दो चिड़ियां", संकलन जिनकी सम्पूर्ण कहानियां "जैनेन्द्र" की कहानियां में अब संकलित हैं, उत्तम कहानियों के द्योतक हैं । यद्यपि वह उद्देश्यपरक कहानियों में विश्वास नहीं रखते हैं लेकिन विचार विशेष को लेकर चलना उनकी कहानी लिखने की आवश्यक शर्त भी है ।

जैनेन्द्र जी की फांसी की कहानी संग्रह 1929 वातायन कहानी संग्रह (1930), नीलम देश की राजकन्या कहानी संग्रह (सन् 1933), एक रात कहानी संग्रह (1934), दो चिड़ियां कहानी संग्रह (1935), पाजेब कहानी संग्रह (1948), जय संधि कहानी संग्रह (1948) जैनेन्द्र की कहानियां - भाग - 1 से 10, 1949 प्रकाशित हुई हैं ।

(ग) निबन्ध :-

जैनेन्द्र जी का निबन्ध साहित्य विस्तृत हैं । वह मूलतः निबंध कार हैं । उनका निबन्ध रूप उनके कथा - साहित्य को प्रभावित करता है । जैनेन्द्र जी तत्व - द्रष्टा तथा विचारक हैं । उनका लेखन गम्भीर एवम् विशद है । अनेक विषय उनके निबन्ध के अंग हैं । उनमें प्रतिभा है, मौलिकता है तथा अन्तर्द्रष्टि पाई जाती है । निबन्ध में उनका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण पाया जाता है । डा० त्रिलोचन पाण्डेय हिन्दी - निबंध" वर्तमान युग में लिखते हैं कि "जैनेन्द्र जी विचारक अधिक हैं और यह रूप निबन्धों में उभरा हुआ है । उनके निबन्धों की विशेषता यह है कि सरल भावपूर्ण छोटे छोटे वाक्यों में गम्भीर तथा स्पष्ट किये हैं ।

श्री धनंजय भट्ट "सरल" "पं0 बालकृष्ण भट्ट" के निबन्ध में लिखते हैं कि "जैनेन्द्र जी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध तार्किक शैली के बुद्धि प्रधान होते हुए भी तार्किक रूसता से वंचित है । उनकी उस पद्धति में व्यक्तित्व की छाप, ओज, प्रवाह और चमत्कार है ।" श्री विजय शंकर मल्ल ने लिखा है कि "श्री जैनेन्द्र कुमार ने बहुत से निबन्ध लिखे हैं, पर उनमें से उच्चकोटि के निबन्ध वे ही है जिनमें लेखक गम्भीर दार्शनिक की मुद्रा त्यागकर अपने सरल स्वाभाविक रूप में पाठक के सामने आता है । "आप क्या करते हैं", "राम - कथा", "कहानी नहीं", "बाजार - दर्शी" ऐसे ही निबन्ध हैं । प्रायः प्रश्नोत्तर की रोचक हो शैली में गम्भीर समस्याओं या तथ्यों का व्यंजना के माध्यम से उद्‌घाटन इनकी ऐसी रचनाओं की विशेषता है । इनका व्यंग्य - विधान कहां शब्द प्रयोग पर अवलम्बित रहता है और कहां परे वाक्य की ध्वनि पर । इनकी बिन संवारी भाषा तथा बातचीत वाली शैली के वाक्य - विन्यास आत्मीयता और बेतकल्लुफी का वातावरण तैयार करने में सहायक होते हैं । दादा धर्माधिकारी कहते हैं - "मैने जैनेन्द्र जी की सभी या अधिकांश रचनायें नहीं पढ़ीं हैं । परन्तु लेख और निबन्ध प्रायः बहुत चाव से पढ़ता हूँ ।" डा0 हरिहरनाथ टण्डन तो उनका निबंध साहित्य - कथा - साहित्य की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं । इस सबसे यह तो जाहिर है कि जैनेन्द्र का निबन्ध साहित्य हिन्दी साहित्य की अश्रम सम्पत्ति है ।

उनके निबन्ध साहित्य के अन्तर्गत आते हैं - "जैनेन्द्र के विचार, जड़ की बात, इतस्तत, परिप्रेक्ष्य, अकाल पुरूष महात्मा गांधी, मंथन, सोच - विचार, साहित्य का श्रेय और प्रेय, ये और वे, पूर्वादय, कहानी, अनुभव और शिल्प तथा "वृत्त - बिहारी" । प्रश्नोत्तर शैली में जैनेन्द्र जी ने प्रस्तुत प्रश्न, प्रश्न और प्रश्न तथा काम, "प्रेम और परिवार" समय और हम, तथा समय समस्या और सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं । प्रेमचन्द्र एक कृति व्यक्तित्व में उनके संस्मरण निबन्ध हैं । प्रश्नोत्तर शैली में अधिकतर लिखा गया

साहित्य निबन्ध के अन्तर्गत नहीं आता है । इन संकलनों में जिनको निबन्ध के अन्तर्गत गिनाया है, कुछ निबन्ध ऐसे हैं जो लेख अधिक हैं, अपेक्षाकृत निबन्ध के । यह साहित्य उनके निबन्धों की गौरव गाथा सुनाता है ।

जैनेन्द्र जी कथा - साहित्य की तरह निबन्ध गद्य को भी एक नई दिशा देते हैं उन्होने विचारात्मक, संस्मरणात्मक, विश्लेषणात्मक एवं भूमिकात्मक निबन्ध लिखे हैं । उन्होने हिन्दी निबन्ध को प्रश्नोत्तरात्मक शैली में लिखी है । आत्मपरक निबन्ध में उन्होने अपने कथाकार रूप की व्याख्या की है । मुख्यतया जिन संकलनों में शुरू से अन्त तक प्रश्नोत्तर रूप में चले हैं वहां उनका तार्किक तथा विवेचक का रूप सामने आया है । वहां आपका दार्शनिक रूप साहित्यिक रूप को अधिक प्रभावित करता है । उनमें से प्रयत्न करने पर कुछ इस तरह के शीर्षक निकाले जा सकते हैं जिन्हें निबन्ध के अन्तर्गत रखा जा सके । वस्तुतः इस प्रश्न को विवादास्पद माना जाता है । प्रायः उन्होने निबन्धों को बोलकर लिखाया है अतः सहजता उनका विशेष गुण है जो उनके गहन चिन्तन के साथ बड़े काम का है । वास्तविक बात तो यह है कि जैनेन्द्र वैचारिक धरातल पर साहित्य में खड़े हैं । तत्वाग्रह घुल मिल गया है ।

(घ) अन्य :-

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र जी ने उपन्यास, कहानी तथा निबन्ध के अतिरिक्त कुछ अन्य कृतियों को भी लिखे हैं । जो कि निम्न-लिखित हैं :-

(1) अनुवाद :-

1- मन्दालिनी (नाटक) मूल लेखक मेरी मेगेडिलीव/अनुवाद सन् 1987 में और प्रकाशन सन् 1935 ।

2- प्रेम में भगवान (कहानियां) मूल लेखक टालस्टाय, प्रकाशन - 1937

3- पाप और प्रकाश (नाटक) मूल लेखक टालस्टाय, अनुवाद सन् - 1937

में और प्रकाशन सन् 1953

4- मामा द पिट (उपन्यास) - मूल लेखक अलेक्जेन्डर क्रिप्रिन ।

सम्पादित ग्रन्थ :-

1- साहित्य - चयन (निबन्ध संग्रह)

2- विचार - वल्लरी (निबन्ध संग्रह)

यात्रा संस्मरण :-

1- ये और वे

2- कश्मीर की वह यात्रा

3- गांधी कुछ स्मृतियां

जैनेन्द्र के कथा - साहित्य में कथ्य एवं चरित्र योजना

1- जैनेन्द्र के कथा - साहित्य की कथ्य योजना :-

कथा उपन्यास का मूल तत्व है । कथा रूपी ताने - बाने पर ही उपन्यास रूपी कपड़ा निर्मित होता है । इस कपड़े को बुनने का काम पात करते हैं । जिस तरह ताने बाने के कुशल संचालन में है, जिससे कथानक निर्मित होता है । कथा तथा कथानक के इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए एडमण्ड पार्स्टर ने लिखा है - "राजा मर गया और फिर रानी मर गई, एक कहानी है राजा मर गया और उसके दुख में रानी मर गई, कथानक है ।"[1]

ई० एम० पार्स्टर ने कथानक तत्व को प्रधानता देते हुए लिखा है "हम सबको सहमत होना चाहिये कि उपन्यास का मूल तत्व कहानी कहने वाला तत्व है ।"[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी उपन्यास के तत्वों पर विचार करते हुए कथावस्तु की प्रमुखता को माना है । "उपन्यास या कहानी और कुछ हो अथवा न हो एक कहानी या कथा जरूर है । कहानी या कथा में जो बातें आवश्यक हैं वे उनमें अवश्य होनी चाहिए । कोई उपन्यास (या छोटी कहानी) सफल है या नहीं इस बात की प्रथम कसौटी यह है कि कहानी कहने वाले ने कहानी ठीक - ठीक सुनाई है या नहीं, आवश्यक बातों को छोड़ तो नहीं दिया है, जहां - जहां कहानी अधिक मर्मस्पर्शी हो सकती थी वहां - वहां उसने उचित रीति से संभाला है या नहीं छोटी - छोटी बातों में ही उलझकर तो नहीं रह गया, प्रसंगवश आयी हुई घटना का इतना अधिक वर्णन तो नहीं रह गया, करने लगा जिससे पाठक का जी ही ऊब जाये और सौ बात की एक बात यह है कि वह शुरू से अन्त तक

1- एडमण्ड फार्स्टर - आस्पेक्ट्स आफ दि नावेल - पृष्ठ - 116

2- एडमण्ड फार्स्टर - आस्पेक्ट्स आफ दि नावेल - पृष्ठ - 40

सुनने वाले की उत्सुकता जाग्रत करने में नाकामयाब तो नहीं रहा । कहानीपन इस साहित्य की प्रथम शर्त है ।[1]

कथ्य का चुनाव किसी भी क्षेत्र से होता है । उसका विषय व्यक्ति - समाज, राजनीति, अथवा धर्म कुछ भी हो सकता है । उपन्यासकार की कुशलता कथ्य के लिये ऐसे विषय के चुनाव में है, जो सामान्य जीवन की घटनाओं पर आधारित हो और स्वाभाविक हो । विषय के चुनाव के साथ - साथ चुने हुये विषय का समग्र चित्रण भी उपन्यासकार की कुशलता का परिचायक है । कथानक के विषय के चुनाव और उसके सम्पूर्ण चित्रण के विषय में हडसन ने कहा है ।

A novel is really great only when it lays its foundations broad and deep in the things which constantily and serously apeal to us in the struggle and fortunes of our common humanity.[2]

जैनेन्द्र जी के उपन्यास एडसन की उपर्युक्त कसौटी पर खरे उतरते हैं । वे उपन्यासों के कथ्य जीवन के अनुभवों पर निर्धारित है एवं स्वाभाविक है । जैनेन्द्र जी के माध्यम से विवित व्यक्ति, समाज, नारी का पारिवारिक स्थिति तथा उसके मन का द्वन्द्व, नारी तथा समाज का संघर्ष, नारी की प्रेम भावना इत्यादि के चित्रण बिल्कुल यथार्थ है । उन्होने अपने पूर्वकालीन ज्यादातर उपन्यासकारों की तरह काल्पनिक कथानकों को उपन्यास का विषय नहीं बनाया वरन् यथार्थ की भूमि से उसका चुनाव किया । जैनेन्द्र जी ने जिस क्षेत्र को अपने कथानक का विषय चुना उसका पूर्ण परिचय भी पाठकों के सामने उपस्थित किया ।

1- आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी - साहित्य का साथी : पृष्ठ - 82

1. W.H. Hudson - 'An introduction to the study of literature. P. 132.

चरित्र सृष्टि के आयाम

उपन्यास के कथानक योजना का विश्लेषण करने के पश्चात् जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के चरित्र - चित्रण पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है क्योंकि जैनेन्द्र कुमार का पूरा व्यक्तित्व तथा चिन्तन यदि किसी एक तत्व में सबको अधिक प्रकट हुआ है तो वह चरित्र - चित्रण में ही । उपन्यास में कहना उनका काम न भी हो, परन्तु जैनेन्द्र जी ने पात्रों का चरित्र चित्रण करते समय जितनी जागरूकता तथा रूचि व्यक्त की है, उसका अनुमान उनके इस कथन से लगाया जा सकता है कि - "किसी पात्र में से अनुपस्थित नहीं हूँ .... उनकी सब बातें मेरी बातें हैं । मालूम पड़ता है कि कहानी कहने की अपेक्षा अपने पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन करने की तरफ जैनेन्द्र जी का ध्यान अधिक रहा है तथा अपने पात्रों के जीवन में जैनेन्द्र जी ने बहुत रूचि ली है । वास्तविकता तो यह है कि पात्रों की वाणी में जैनेन्द्र जी का जीवन दर्शन सवाक् हो उठा है तथा उनके चरित्र चित्रण और क्रिया कलाप में उन्होने मानों अपने सम्पूर्ण जीवन के आदर्शों को मूर्त कर दिया है ।

क्रिया - कलाप की दृष्टि से जैनेन्द्र कुमार के सही उपन्यास चरित्र - प्रधान उपन्यास हैं । उनके पढ़ने में पात्र सम्बन्धी पहली विशेषता जो हमारे सामने आती है वह यह है उनमें तीन चार से अधिक मुख्य पात्र नहीं होते । चूंकि उनके कथानकों का क्षेत्र व्यापक नहीं होता और उनमें स्थूल जगत की विवृत्ति भी अधिक नहीं होती, इसलिये पात्रों की संख्या भी महत्वशून्य है । जीवन के छोटे से छोटे खण्ड को लेकर जैनेन्द्र सत्य के दर्शन कर और करा सकते हैं । अपनी कला की इस क्षमता के कारण ही उन्हें अधिक पात्रों की आवश्यकता नहीं होती । परख, सुनीता, तथा सुखदा में चार - चार मुख्य पात्र हैं । कल्याणी, विवर्त तथा व्यतीत की कथा तीन - तीन ही प्रधान चरित्रों को लेकर चली है । सबसे कम पात्र त्यागपत्र में है । मृणाल और प्रमोद दो ही प्रमुख पात्रों से कथा का निर्माण हुआ है ।

चूँकि जैनेन्द्र व्यक्तिवादी कलाकार थे, उनके अधिकांश पात्र समाज का प्रतिनिधित्व करते । कदाचित् परख के पात्र ही इतने विशिष्ट नहीं हैं कि उन्हें वैयक्तिक पात्रों की श्रेणी में रखा जा सके । फिर भी प्रेमचन्द्र के पात्रों की भाँति कट्टो, बिहारी व सत्यधन सम्पूर्णतः जातीय नहीं है । श्रीकान्त, सुनीता, कल्याणी, मृणाल, कान्त, नरेश, मोहिनी, जयन्त, अनिता व चन्द्री सभी व्यक्तिवादी चरित्र हैं और प्रसन्न लाल, जितेन आदि क्रान्तिकारी पात्र यद्यपि अपने वर्ग के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं, परन्तु उनमें भी व्यक्ति स्थान - स्थान पर ऊपर उभर आता है ।

परम्परागत कथानकों से प्राथक्य :-

जैनेन्द्र जी के सभी उपन्यासों के कथानक वैयक्तिक हैं । समाज तथा व्यक्ति का संघर्ष उनमें नहीं है । क्योंकि ऐसे किसी संघर्ष में लेखक को, बिल्कुल भी प्रत्यय नहीं है । वहां यदि संघर्ष है तो व्यक्ति का अपने व्यक्तित्व से उसकी सीमा से ही है । अहमन्यता की व्यर्थता दिखाकर आत्म-व्यथा के साहाम्य से "स्व" के क्षेत्र की विस्तृति ही आलोच्य कृतियों की समस्या है । इसी एक तत्व को लेकर तमाम समस्या उपन्यासों का ताना - बाना बुना गया है । जीवन में खण्डता की भावना का नाश और मनुष्य - मनुष्य में जगत और जगदावार में अभेद की भावना का उदय जैनेन्द्र जी के उद्देश्य हैं । इसी प्रेम अथवा अहिंसा हेतु अपने को दर्द पहुँचाकर स्व अहं को बुलाना अनिवार्य है ।[1] जैनेन्द्र जी का सम्पूर्ण साहित्य आत्म - पीड़न की अभिव्यंजना है । क्योंकि काम की यातनाओं में आत्म - पीड़न का तीव्रतम रूप प्राप्त होता है । अतः काम - वृत्तियों के चित्रण को ही उन्होने अपने कथा - साहित्य में सबसे अधिक महत्वपूर्ण जगह दिया है । डा0 देवराज का कथन - "जैनेन्द्र के कथावस्तु नहीं के बराबर है जितनी है

1- डा0 रमेश जैन : हिन्दी के शरत जैनेन्द्र : पृष्ठ - 145

भी वह बहुत ही ऊबड़ - खाबड़ है उसमें साफ सुथरा प्रचार नहीं है ।[1] उनका मानना है कि जैनेन्द्र में कथा - विस्तार के प्रति उदासीनता का कारण उन पर जैन धर्म का प्रभाव है ।[2]

जैनेन्द्र जी की धारणा है कि मनुष्य में दो मूलव्रृत्तियां पाई जाती हैं, एक स्पर्धा की और दूसरी समर्पण की । दोनों की सत्ता मनुष्य में हमेशा साथ पाई जाती है । जहां मनुष्य में "पर" के साथ संघर्ष करने की प्रवृत्ति पाई जाती है । वहो अपने "स्व" को "पर" में नष्ट करने की तरफ भी मनुष्य प्रवृत्त होता पाया जाता है । जैनेन्द्र जी की धारणा है कि स्पर्धा की वृत्ति एक शब्द में "अहं" कभी भी किसी को सुख नहीं दे सकती है, अपने को भी नहीं । इसलिये अहं के विगलन के प्रति प्रयासशील होने तथा अपने और दूसरे के सुख के लिये समर्पण की वृत्ति का पोषण करने में ही भला है । अपनी इसी धारण का ही प्रतिपादन जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों सहित सम्पूर्ण साहित्य में किया है ।

जैनेन्द्र जी के "सुनीता" उपन्यास में श्रीकान्त समर्पण की कृति अथवा निरहम् का द्योतक है, सुनीता का चरित्र इसका क्रियात्मक स्वरूप है । दूसरी तरफ हरिप्रसन्न के व्यक्तित्व में पहले कभी अहम् आहत् होने की वजह से (हरिप्रसन्न के चरित्र के सम्बन्ध में यह जैनेन्द्र का ही मत है) । बड़ी भयंकरता है । श्रीकान्त तथा सुनीता अपने समर्पण आत्मक व्यवहार से हरिप्रसन्न की प्रचण्डता को संक्रमित करते हैं ।

"कल्याणी" उपन्यास की कल्याण अपनी सम्पूर्ण चेतन शक्ति से इस बात के लिये सचेष्ट है कि वह अपने पति के प्रति समर्पित बनी रहे ।

1- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ - 33

2- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ - 35

उनका अन्तर्मन विद्रोह करता है तथा इस वजह से उसका व्यक्तित्व अतीव करण तथा आत्मव्यथित है । उसकी मृत्यु इसी अवस्था में हो जाती है ।

जैनेन्द्र जी द्वारा "त्यागपत्र" नामक उपन्यास की मृणाल इसी समर्थन के भाव की साक्षात् मूर्ति है । समाज की भ्रष्टता के प्रति भी उसमें कोई प्रतिरोध नहीं है । कोयले वाले को भी इसी धारणा से मानती है कि अस्वीकृति की अवस्था में उसका अहं क्षुब्ध होगा तथा यह हिंसात्मक प्रतिक्रिया में अभिव्यक्ति पायेगा । जब पी0 दयाल भी अपने त्यागपत्र से इस जीवन - दृष्टि की पुष्टि करते हैं ।

"व्यतीत" उपन्यास के जयन्त की भी प्रेम में निराशता के प्रति प्रतिक्रिया ज्यादातर विवर्त उपन्यास के जितेने के समान ही पाया जाता है । अन्तर इतना ही है कि जयन्त अपनी अहमन्यता की वजह से अनिता पर रूणतः आसक्त होता पाया जाता है । परिणामस्वरूप वह अन्य किसी की नारी के साथ प्रेम तथा समर्पण का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता । समय के साथ - साथ वह आत्मव्यथा में घुलता रहता है तथा जीवन की व्यर्थता को महसूस करता है ।

सुखदा उपन्यास की "सुखदा" की कहानी घोर मनस्ताप की कहानी है । उसका अहं प्रबुद्ध है । उसका पति से जिसके चरित्र का सृजन श्रीकान्त "सुनीता" की तरह ही हुआ है । मनमुटाव बढ़ता जाता है । वह क्रान्ति के हिंसात्मक कार्यक्रम में सक्रिय हिस्सा लेना शुरू कर देती है । मृत्यु के समीप आते - आते उसकी सम्पूर्ण चेतना अनुताप की ज्वाला से जल रही है । तथा वह निस्सीम आत्म व्यथा को महसूस कर रही है ।

"विवर्त्त" उपन्यास की रूपरेखा "सुनीता उपन्यास से समानता रखती है । जितेन को जब प्रेम में निराशता का सामना करना पड़ता है तो उसमें आहत अहं की वजह से हिंसा कुल्छार कर उठती है । तब भुवन मोहिनी

अपने पति नरेश का प्रत्यय प्राप्त करके अपने प्रेममय आचरण से जितेन के मन की ग्रन्थि खोल देती है ।

"परख" जैनेन्द्र जी की आदि औपन्यासिक रचना है । कट्टो तथा बिहारी के चरित्रों में समर्पण की भावना विद्यमान है । सत्यधन "अहं" में और अपने मिथ्या आदर्शो में एक ऐसा पात्र है जो आत्म प्रवंचना से ग्रस्त है तथा अन्त में दुख ही पाता है ।

तथापि ये सभी प्रेम के कथानक हैं फिर भी इनका विशेष वर्गीकरण नहीं हो सकता । इस पर भी जो कुछ वर्गीकरण सम्भव है वह इस तरह हो सकता है ।

प्रथम वर्ग में वे कथानक जिनमें प्रेम का निरूपण दो पुरूष तथा एक स्त्री को लेकर हुआ है । यथा सुनीता, सुखदा व विवर्त । त्यागपत्र में भी मृणाल, शीला के भाई और मृणाल के पति इनमें मिलकर त्रिकोण बन जाता है । कल्याणी उपन्यास में भी प्रीमियन के कथा के पदार्प ा करने से त्रिकोण की छाया प्राप्त होती है ।

द्वितीय वर्ग में "परख" नामक उपन्यास आता है, जिसमें केवल एक पुरूष पात्र है जिससे तीन नारी पात्र प्रेम करतीं हैं ।

सुनीता, सुखदा इत्यादि प्रथम वर्ग के कथानकों में यद्यपि एक नारी तथा दो पुरूष पात्रों की अवतारणा पाई जाती है, फिर भी उस नारी को लेकर उन दोनों पुरूषों में (यद्यपि उनमें एक पति है और दूसरा प्रेमी) कोई संघर्ष या प्रतिद्वन्द्विता का भाव नहीं है । इसकी एक मात्र व्याख्या यही है कि पति अधिकार में विश्वास नहीं रखता और पत्नी पर अपनी इच्छा का आरोप नहीं करना चाहता ।[1] प्रेमी की ओर से ईर्ष्या या आक्रोश के लिये उस समय

1- डा0 देवराज उपाध्याय : जेनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ - 35

भी अवकाश हो सकता है जबकि नायिका उससे प्रेम न करके पति से ही प्रेम करे । किन्तु जैनेन्द्र की कोई भी नायिका प्रतीत प्रेम, पुरूष के प्रति प्रेम ईश्वर प्रेम है और प्रेम प्रवंचना है । इससे ईश्वर प्रवंचना है ।

शून्य नही है क्योंकि प्रेम के अभाव में "स्व" का विस्तार नहीं होगा जो जैनेन्द्र को अभिप्रेम है ।

डा0 देवराज उपाध्याय ने जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की कथा वस्तु पर लिखा है - "जैनेन्द्र में "कथावस्तु" नहीं के बराबर है जितनी है भी, वह बहुत ही ऊबड़ - खाबड़ है, उनमें साफ - सुथरा प्रवाह नहीं है । उनका मानना है कि जैनेन्द्र में कथा - विस्तार के प्रति प्रवाह उदासीनता का कारण उन पर जैन धर्म का प्रभाव है ।"[1]

जैनेन्द्र कुमार ने अपने उपन्यासों में कथावस्तु को गोणता एवं स्वयं मानते हुए कहा भी है - कहानी सुनाना मेरी उद्देश्य ही नहीं है । अतः तीन - चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है । इस विश्व के छोटे खण्ड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य के दर्शन पा सकते हैं ।[1] अतः उनके उपन्यासों में कथावस्तु को गौण स्थान अनायास ही प्राप्त हो गया है । बल्कि कहा जाये तो इसे यह स्थान जानबूझकर दिया गया है । वे पाठकों को कथावस्तु में ही उलझाकर नहीं रखना चाहते, कहानी के माध्यम से मानव मन की प्रचीदगियों और गहराईयों में उसे उतारना चाहते हैं तथा मानव की मूल प्रवृत्तियों का परिष्कार करना चाहते हैं । इस कारण कहानी का तो उनका बहाना मात्र है । उनका आग्रह कथानक पर न लेकर, कथानक के साध्य पर ही अधिक है ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में आवश्यक प्रसंगों के लिये कोई स्थान नहीं है । अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रासंगिक वृत्तों का सर्वथा अभाव

1- जैनेन्द्र कुमार : सुनीता (द्रष्टव्य प्रस्तावना) ।

जैनेन्द्र की उपन्यास कला की एक प्रमुख विशेषता है । जैनेन्द्र की उपन्यास कला की सबसे बड़ी विशेषता उनके उपन्यासों का लघुत्व है । अपने उपन्यासों के इस लघुत्व की व्याख्या करते हुए जैनेन्द्र ने कहा है कि जो अण्ड में वह पिण्ड में है अर्थात् जो समस्याएं अनेक रूपों में हमारे सामने बिखरी पड़ी हैं वे कुछ इने - गिने पात्रों अथवा चरित्रों में समेटी जा सकती हैं और यदि कलाकार में क्षमता है तो वह सूक्ष्म से सूक्ष्म विस्तार को समझा जा सकता है ।

जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में घटनाओं में प्रतीक योजना का सुन्दर प्रयोग किया है । आधुनिक उपन्यास मानसिक विश्लेषण प्रधान हैं । उनमें कर्तव्य पक्ष के लिये स्थान नहीं है । भाव - पक्ष ही सब कुछ है । घटनाएं भी भाव - पक्ष से निःसृत होकर उसका प्रतिलम्ब मात्र होती हैं, या पूरक । ऐसी स्थिति में उपन्यासकार उन्हें केवल घटनाएं बनाकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझता । वह दूर जाता है । वह कुछ ऐसी घटनाएं लेता है और इनमें संक्षेप में बहुत कुछ कह दिया जाता है या अभिव्यक्त होता है । वास्तव में इस प्रतीक - योजना के द्वारा उपन्यासकार पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को ही प्रगट करता है । "सुनीता" में "राजा रानी" "मीरा" फिल्म को इसलिये लाया गया है कि उसके माध्यम से श्रीकान्त और सुनीता नारी के दायित्व के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर कर सकें । "कल्याणी" में तो लगभग सब कुछ कल्याणी करती है, प्रतीक - योजना ही है । कल्याणी का धर्म - भाव, हत्या की गई नारी के प्रेताम्का और मि० देवला लीकर में हत्यारे की कल्पना मनोवैज्ञानिक प्रतीक-योजना है ।

असाधारण घटनाओं के अभाव के कारण जैनेन्द्र के कथानकों में विविध तोड़ - मोड़ नहीं है । लेकिन इसका यह आशय नहीं कि उसमें उत्सुकता की कमी है । बल्कि असाधारण घटनाओं के अभाव में भी कथानक में उत्सुकता बनाये रखना जैनेन्द्र कुमार की अपनी विशेषता है । कहीं - कहीं

कहानी के तार की कड़ियां तोड़कर और कहीं घटनाओं के क्रम में उलट - फेरकर उन्होने कथा में उत्सुकता बनाये रखी है । इसके अतिरिक्त कथानक नाटकीय आकस्मिकता की सहायता से भी उन्होने कौतूहल जीवित रखा है । "सुनीता" में क्रांतिकारियों के अड्डे पर पुलिस के आकस्मिक धावे की सूचना देने के लिये लाल बत्ती जलना, त्यागपत्र में मृणाल द्वारा एक परिवार में पढ़ाने का काम करना और प्रमोद का उसी परिवार में लड़की देखने पहुँचना, "विवर्त" में जितेन द्वारा ड्राइवर के वेश में भुवन मोहिनी को ले भागना, और पुलिस अधिकारियों को चकमा देकर बच निकलना, जयवर्धन में मिस्टर इस्टन के डिब्बे में वेष बदलकर इन्द्र मोहन का अचानक प्रवेश करना आदि घटनाएं ऐसी है जिनमें नाटकीय आकस्मिकता की सहायता से उन्होने कथानक का कौतूहल बनाये रखा है ।

साथ ही पूरी घटना का वर्णन करने के बजाय केवल उसकी ओर संकेत मात्र कर देने से ही जैनेन्द्र पाठक की उत्सुकता को जाग्रत कर पाने में सफल हुए हैं । विस्तृत विवरण की अपेक्षा घटना की ओर संकेत कर देने से उन्होने मानो कथानक का सूत्र पाठक के हाथ में थमा दिया है और कथानक की जिम्मेदारी से स्वयं छुट्टी पा गये हैं । तदुपरान्त कथा में कहां - कहां घटनाओं की ओर संकेत भर कर देना ही उनके लिये पर्याप्त है और पाठक उन संकेतों से कथन की दशा का अनुमान लगाकर बड़ी उत्सुकता से कथानक को स्वयं आगे बढ़ाता रहा है ।

कथन का चयन क्षेत्र :-

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के कथानक का चयन क्षेत्र आदर्शपरक, राजनीति प्रेरित तथा मनोवैज्ञानिक रूप में हुआ है । सबसे पहले हम आदर्शपरक कथ्य योजना का उल्लेख करेंगे ।

आदर्शपरक कथ्य योजना :-

उनके प्रथम उपन्यास "परख" कोही लिया जाये । धन - सम्पत्ति तथा यश - समृद्धि की कामना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है, परन्तु इससे ऊपर उठकर भी एक आदर्श है जिसमें धन सम्पत्ति निःसार है । दूसरे की सेवा तथा प्रेम की भावना ही सबसे ऊपर है । अतः "परख" के उपसंहार के द्वारा जैनेन्द्र जी ने दूसरे की सेवा के सामने भौतिक समृद्धि तथा त्याग के सम्मुख भोग की हीनता ही दिखायी है । उपन्यास के अन्त में कट्टो तथा बिहारी के आत्मिक विवाह एवम् कट्टो द्वारा सम्पूर्ण सम्पत्ति सत्यधन को देने की घटना द्वारा जैनेन्द्र कथानक का उपसंहार इस तरह आदर्शमय बना देते हैं जिसमें कि भोग के प्रति अनासक्ति तथा पर सेवा में अनुरक्ति ही जीवन का चरम - साध्य बन जाता है ।

कथानक के गठन और विकास में जैनेन्द्र जी ने जिस सोद्देश्यता का परिचय दिया है उसका आभास कथानक के उपसंहार में यथोचित उत्तर दिया है, तथा हल प्रस्तुत करने की उनकी पद्धति बिलकुल अनोखी है । उपन्यास के अन्त में वे जिस आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं, उसमें से ही अप्रत्यक्ष रीति से, नैतिक समस्या का हल ध्वनित होता है । अतः उनके उपन्यासों के उपसंहार में किसी समस्या के नपे - तुले हल ही यदि अपेक्षा की जाये, तो नैतिक समस्या का हल ध्वनित होता है । इसलिये उनके उपन्यासों के उपसंहार में किसी समस्या के नपे तुले हल की यदि अपेक्षा की जाये तो हताश होना पड़ेगा । अपनी नैतिक धारणाओं तथा मान्यताओं को कथानक के उपसंहार पर थोपने तथा इसे यथास्थिति मोड़ देने के चक्कर में न पड़कर जैनेन्द्र जी ने बड़ी कुशलता से कथानक के उपसंहार में अप्रत्यक्ष रीति से, अपने नैतिक आदर्शों की झलक प्रस्तुत की है । इस झलक को परिलक्षित करने के लिये उनके उपन्यासों के उपसंहार को एक - एक करके देखना होगा ।

"सुनीता" उपन्यास की शुरूआत में हरिप्रसन्न के विषय में श्रीकान्त की नैतिक उलझन तथा कर्तव्य का संकेत देकर जैनेन्द्र जी ने उस कर्तव्य की

पूर्ति में उपन्यास का अन्त किया है । श्रीकान्त में हरिप्रसन्न के जीवन को प्रयोजनापूर्ण बनाने की पूर्ति में उपन्यास का अन्त किया है । नैतिक जिम्मेदारी की भावना इतनी प्रबल है कि उस जिम्मेदारी को पूर्ण करने से वह अपनी पत्नी से सर्वस्वदान की अपेक्षा करता है । सुनीता भी पति के आदेश का पालन करने में दत्तचित्र हो जाती है तथा किसी तरह के नैतिक असमंजस में न पड़कर हरिप्रसन्न के जीवन को रचनात्मक तथा उपयुक्त दिशा में मोड़ने में सफल होती है । गृहस्थ का निराश्रय के प्रति मित्र का मित्र के प्रति तथा पत्नी का पत्नी के प्रति जो नैतिक कर्तव्य होना चाहिये उसकी तरफ संकेत करके जैनेन्द्र जी ने "सुनीता" के कथानक का उपसंहार किया है ।

"इसी तरह पाप तथा पुण्य का प्रश्न की समीक्षा से जैनेन्द्र जी ने "त्यागपत्र" का आरम्भ किया है तथा इसी प्रश्न का उत्तर देकर इस उपन्यास का अन्त किया है । जैनेन्द्र जी के मत के अनुसार आत्म - पीड़ा का अधिक महत्व है, क्योंकि अहंभाव को शनैः शनैः गलाकर यह आत्मा को पवित्र बनाता है । आत्म पीड़ा में आत्म - शुद्धि के उपाय को खोजने की क्रिया भले ही तिरस्कृत ढंग से देखा जाये, परन्तु जैनेन्द्र जी के नैतिक धारणाओं के हिसाब से इसे अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ है । मृणाल के पतन में चारित्रिक श्रेष्ठता का संकेत देने के लिये ही उपन्यास के अन्त में प्रमोद द्वारा जजी से त्यागपत्र देने के प्रसंग का उल्लेख किया गया है । इस तरह जैनेन्द्र जी ने मानो नैतिक - अनैतिक तथा पाप - पुण्य की सांसारिक कटौतियों से ऊपर उठकर आत्म - पीड़न के माध्यम से आत्म - परिष्कार की कसौटियों से ही मानव के आचरण की श्रेष्ठता आंकी है ।

"कल्याणी" उपन्यास की समस्या भी मूलतः नैतिक समस्या ही है । आदर्श तथा प्रवृत्ति, भोग तथा त्याग के संघर्ष की कहानी को उपन्यास की नायिका कल्याणी के द्वारा कहकर जैनेन्द्र जी ने उसकी आत्मिक छटपटाहट को प्रकट किया है । पति की स्वार्थपरता की वजह से पति में भक्ति रखने में असमर्थ कल्याणी अपने दोष का परिमार्जन करने के लिये आत्म - पीड़न

की तरफ प्रवृत्त होती है एवम् मृत्यु को बुलाती है । कल्याणी के जीवन में घोर मानसिक क्लेश तथा अन्त में उसकी मृत्यु दिखाकर जैनेन्द्र जी ने पति-व्रत्य के नैतिक आदर्श एवं इसके व्यावहारिक रूप के मध्य पैदा होने वाली आधुनिक काल की विषमता का चित्रण कर दिया है ।

"सुखदा" तथा "व्यतीत" उपन्यास के उपसंहार में जैनेन्द्र जी अहं भाव के दमन सम्बन्धी अपने प्रिय आदर्श की तरफ पुनः मुड़ते हैं । मनुष्य में आत्मरति की भावना उसमें आत्म केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को पैदा करती है जिसका फल यह होता है कि वह सम्पूर्ण जीवन असन्तुष्ट, दुःखी तथा अशान्त बना रहता है । आत्मकेन्द्रीकरण की चरमावस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये जैनेन्द्र जी ने सुखदा तथा जयन्त का अभिशप्त जीवन दिखाया है । अपने पति कान्त से विमुख तथा अपने रूप और बुद्धि पर गर्व करने वाली सुखदा अपना जीवन कान्त के साथ बांटना नहीं चाहती । जयन्त भी चन्द्री के साथ, आत्मरति की भावना के कारण, एकात्मकता स्थापित करने में समर्थ नहीं हो पाता है । फल यह निकलता है कि रूग्ण सुखदा अस्पताल में अपने जीवन के खण्डसरों पर दृष्टिपात करती हुई पश्चाताप की अग्नि में जलती है, तथा जयन्त गेरूआ वस्त्र धारण करने पर भी अपने मन में व फल रहित जीवन से उत्पन्न अवसाद की भावना को ही पालता घूमता है ।

'विवर्त' नामक उपन्यास में जितेन के चरित्र में असफल प्रेम से पैदा हिंसा की प्रतिक्रिया तथा क्रान्ति के मार्ग का दिग्दर्शन कराकर जैनेन्द्र जी ने हिंसा तथा क्रान्ति की निःसारता सिद्ध की है तथा अहिंसा के मार्ग को ही उपयुक्त रास्ते के रूप में प्रस्तुत किया है । उपन्यास के अंत में जितेन, पुलिस अधिकारी के सामने आत्मसमर्पण कर देता है । इस तरह जैनेन्द्र जी ने दिखाया है कि क्रान्ति या हिंसा तो मनुष्य का स्वभाव नहीं, अभाव है, और इस विशाल का जितना शीघ्र ही परित्याग हो, अच्छा है ।

जैनेन्द्र जी ने अपने अन्तिम उपन्यास "जयवर्द्धन" में सांसारिक

ऐश्वर्य तथा सुख के उपभोग के प्रति अनासक्ति तथा निःसंगता के आदर्शों की प्रतिष्ठा की है । प्रधानमंत्री के पद पर प्रतिष्ठित जयवर्द्धन के लिए उच्च पद तथा वैभव तत्वविहीन सा है । मानो कर्तव्य समझकर ही वह इस पद पर आसीत है नहीं तो कभी का इसे छोड़ दिया होता । ऐसे मनस्वी जयवर्द्धन के लिये यदि ऐश्र्य - वैभव मिट्टी के समान है तो काम का उपभोग भी तत्व - विहीन सा ही है । इला के साथ बारह साल तक एकत्रित रहने के अलावा यह काम - विजय का ही परिचय देता है । जैनेन्द्र जी ने उपन्यास के अन्त में जयवर्द्धन द्वारा राज्य सत्ता के ऐश्वर्य के साथ - साथ विवाहिता इला के त्याग का भी संकेत करके वस्तुतः त्याग, निःस्पृहता, निःसंगता तथा अनासक्ति के चरम आदर्श की महिमा गाई है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के कथ्य योजना में आदर्शपरक कथ्य योजना परिलक्षित होता है ।

राजनीति प्रेरित कथ्य योजना :-

मनोवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र के उपन्यासों में परम्परागत कथानकों से भिन्नता है । इनके कथानकों में आदर्शपरक कथ्य योजना के पश्चात् राजनीति प्रेरित कथ्य योजना प्राप्त होती है । इनके राजनीति प्रेरित कथ्य योजना पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा हुआ है । इनके सुनीता, कल्याणी, तथा सुखदा नामक उपन्यासों में राष्ट्रीय पुर्नजागरण का प्रथम अभाव पड़ा हुआ है ।

राजनीति प्रेरित कथ्य योजना का एक उदाहरण "कल्याणी" नामक उपन्यास में दिखाई पड़ता है जिस पर राष्ट्रीय पुर्नजागरण का प्रभाव है । "लेकिन मेरा ख्याल है कि कानून को सुधारना - तोड़ना है या उसके तरूणों को उलटना पुलटना है तो वह सामने से होगा, पीछे से नहीं होगा । इससे बेहतर मैं यह समझता हूँ कि कानून से बचो नहीं और न उसको पराजित

होने से बचने दो । चलने दो खुली लड़ाई । शहीद कहीं पराजित हैं ? लड़ाई का खात्मा आज तो नहीं है न इससे हार में भी हार नहीं है ।"[1]

कल्याणी नामक उपन्यास की कल्याणी उस राज्य को स्वीकार नहीं करती जिसमें एक आदमी की जिन्दगी अपनी नहीं हो सकती है । अब सोचतीं हूँ कि क्यों सम्बन्ध मैने नहीं बनाया । जिस राज्य में एक आदमी की जिन्दगी अपनी नहीं हो सकती वह क्या राज है । मैने पुलिस वालों से कहा । मेरा किसी क्रान्ति के काम से सम्बन्ध नहीं है । मैं सच करती हूँ । तुमने तलाशी लेकर देख तो लिया है । लेकिन फिर भी मुझे हिरासत में लिया गया, सो क्यों ? मैं अब कह रहीं हूँ कि मेरी उधर प्रवृत्ति नहीं रही तो उन्हें मुझे रोकने का क्या मजाज था बताइए तो ?"[2]

इनके राजनीतिक कथ्य योजना पर गांधीवादी प्रभाव पड़ा हुआ है । "रूककर फिर बोली - गांधी सेवा - संघ । संघ से पास कराऊँ तब भारती तपोवन को वह समझेंगे ? नहीं तो अपनी कोमलता से वह डरेंगे ? अरे, गांधी के गुलाम बनकर उस मुक्त पुरूर्ष की आत्मा पर अपना लांछन डालते हो । संघ को शर्म नहीं आती ? मैं जानती हूँ गांधी का स्वप्न, जानती हूँ गांधी की प्रेरणा ।"[3]

"अनामस्वामी" नामक उपन्यास में राजनीति कथ्य योजना में नेताओं स्वार्थपरता की भावना दिखाई पड़ती है । जज एम0 दयाल के त्यागपत्र से देश विदेश के नेता आये और उनसे मिले । उनकी आत्मा तक न पहुँचकर वे यह सोंचने लगे कि इस अवसर पर उन्हें लोक - नेता बनाकर अपनी पार्टी की गरिमा को बढ़ाया जा सकता है । उसमें मुझे अन्तर्राष्ट्रीय और

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 122

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 127

3- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 200

अन्तर्देशीय राजकीय परिस्थितियों के ब्यौरे मिले और विदित हुआ कि मेरे लिए सेवा करने और कीर्ति पाने के अवसर हैं । मैने उनका भार माना । कहा, सोचूंगा । पर क्या सोचना ? उस रास्ते पर चलने लायक मुझमें स्पर्धा नहीं रह गई थी । आत्मा को खोकर जगत को पाने के लिये अब मुझसे आगे नहीं बढ़ा जायेगा ।[1]

लोग राजनीति को प्रमुख तथा काम को गौण समझने लगे हैं । कार्य छोड़कर राजनीति की चर्चा में लगे हुए हैं । राजनीति को रचनात्मक प्रवृत्ति से जोड़ना चाहिये । "पर फर्क तो आ रहा है । खबर की तरफ आंख और काम की तरफ पीठ हो गई है । दीनदेश भाई सरकार के स्टेटमेन्ट की ओट में पड़ गया है । लोग विवाद में गर्म हैं और हाथ का कर्तव्य उन्हें ठंडा लग आया है । चर्खे वाले चर्खा छोड़ चर्चा में जा रहे हैं । रचनात्मक आखिर राजनीतिक प्रयोजन हो तो उन्हें सह्य है । इससे राजनीतिक प्रयोजन की बातों में वे दत्तचित्त हैं ।"[2]

"जयवर्धन" नामक उपन्यास में राजनीति प्रेरित कथ्य योजना प्राप्त होती है । "जयवर्धन" के आचार्य का मानना है कि राज्य प्रजा का है । प्रजा के बहुमत से राज्य का संचालन होना चाहिये । आचार्य सोंचते से दिखाई दिए । बोले, तुम ठीक कहते हो, विलवर और शायद मैं गलत हूँ । लेकिन राज प्रजा का है । अहुमत से अधिपति को चलना होगा । इसमें मैं चाहूँ तो भी क्या कर सकता हूँ । जनमत का तो आरोप या बलात्कार नहीं होता । उससे भी जो मुक्त रहना चाहे वह राज्य पर जाए क्यों ?"[3]

उपर्युक्त कथाकार जैनेन्द्र के उपन्यासों के कथानक में राजनीति प्रेरित कथ्य योजना का समीचीन उल्लेख हुआ है ।

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 61

2- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 62-63

3- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ - 34

मनोवैज्ञानिक कथ्य योजना :-

आदर्शपरक तथा राजनीति प्रेरित काम योजना के पश्चात् मनोवैज्ञानिक योजना का उल्लेख करना आवश्यक है ।

मनोवैज्ञानिक कथ्य योना के विषय में जानने से पहले हमें मनोवैज्ञानिक के विषय में जानना अत्यन्त आवश्यक है । "मनोविज्ञान" में "इक" प्रत्यय जुड़ने से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सृजन होता है । मनोवैज्ञानिक की परिभाषा इस तरह की जाती है । "मनोविज्ञान व्यक्ति की इन क्रियाओं का अध्ययन करता है, जिसका सम्बन्ध उसके वातावरण से होता है ।"[1] इसी तरह की एक अन्य परिभाषा भी है जिसके अनुसार "मनोविज्ञान की परिभाषा हमें इस प्रकार करनी चाहिये कि यह वह विज्ञान है जिसमें भौतिक स्थितियों के अनुसार जीवित प्राणियों के शारीरिक तथा मानसिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है ।"[2]

विलियम मैक्ड्गल ने मनोविज्ञान की परिभाषा जिस प्रकार व्यक्ति की है, उसका अनुवाद यह है - "मनोविज्ञान की श्रेष्ठ तथा विस्तृत परिभाषा इस तरह की जा सकती है कि यह वह धनात्मक विज्ञान है जो समस्त जीवों के व्यवहार का अध्ययन करता है ।"[3]

1- मूलः राबर्ट एस0 बुडवर्थ और रोनाल्ड डी0 मा किकर्स : मनोविज्ञान, अनु0 उमापति राय चन्देल, मनोविज्ञान, द्वि0सं0, पृष्ठ - 18

2 "We must define it the science which seeks to interpret in Physical or Mental terms the behaviour of living organisms so for as that is physically conditioned." — James S. Rose. Ground work of Educational Psychology . P. 14

3 "Psychology be best and most comprensively defind as the positive sicience of the conduct of living Creetures." - William Mc Dougell: Psychological Psychology, 1905 P. 5

अब तक की गई मनोविज्ञान की परिभाषाओं में पिरूसवरी द्वारा प्रस्तुत परिभाषा सर्वश्रेष्ठ है जो साहित्य के क्षेत्र में मनोविश्लेषण करने में सहायक है । उसका अनुवाद इस तरह है "मनोविज्ञान की संतोषप्रद परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि वह विज्ञान जो मानव के व्यवहार का अध्ययन करता है और यह व्यवहार अध्ययन मानव की व्यक्तिगत चेतना के आधार पर होता है ।[1]

इस तरह उपर्युक्त परिभाषा के परिवेश में मनोविज्ञान की परिभाषा इस तरह की जा सकती है - "मनोविज्ञान वह मानवीय विज्ञान है जिसमें चेतन प्राणियों विशेषतः मानव की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन होता है । और जिनका प्रदर्शन शारीरिक व्यवहार में होता है । तथा जिनका निरीक्षण प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा किया जाता है ।"[2] इस तरह मनोविज्ञान के माध्यम से साहित्य का विश्लेषण भी किया जा सकता है, क्योंकि साहित्य में रचनाकार तथा पात्रों इत्यादि का व्यवहार विश्लेषित किया जाता है ।

जैनेन्द्र जी के कथानक में मनोविज्ञान पाया जाता है । इनकी मनोवैज्ञानिक कथ्य योजना उत्कृष्ट कोटि की है । जैनेन्द्र जी ने उपन्यासों के कथ्य के द्वारा मनुष्य के अन्तर्मन में उठने वाले नानाविधि संकल्प - विकल्पों तथा द्वन्द्वों की कहानी को प्रधानता दी है । अतः परम्परागत कथानकों को देखते हुए उनके कथानकों का आधार हमेशा अलग है । अब तक के कथ्य वाहन जगत की किसी घटना - विशेष पर आधारित रहते थे परन्तु जैनेन्द्र जी ने तो अन्तर्जगत की घटनाओं को ही कथ्य का आधार बनाया है । व्यक्ति के मन में उठने वाले संकल्प - विकल्पों तथा घात - प्रतिघातों के सहारे

1- " Psychology may be most satisfactory defind as the science of humen behavior.. Behaviour is to be studied through conciaus of the individual and the external observations.

2- अजित कुमार : आलोचना : उपन्यास विशेषांक अक्टूबर 1951 : पृष्ठ - 26

खड़े किये गये कथानकों में एक बात तो सहज ही पैदा हो जाती है वह है उनका व्यक्तिनिष्ठ रूप । प्रेमचन्द्र के समान जैनेन्द्र जी के कथानक परिवार श्रेष्ठ नहीं, अर्थात एक व्यक्ति की कहानी कहते - कहते उसके सम्पूर्ण परिवार की कहानी नहीं कहने लगते । उन्होने तो एक ही व्यक्ति के अन्तर्मन तक अपने आपको सीमित रखा है, इस कारण, कथानक में विस्तार की अपेक्षा गहरे पैठने की प्रवृत्ति अधिक है तथा उनको मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति में भी कथानक में गहरे बैठने की अज्ञान को प्रोत्साहन ही दिया है ।

जीवन को सर्वथा स्वाभाविक रूप में ग्रहण करने के कारण जैनेन्द्र जी ने अपने कथानकों में उन प्रसंगों तथा घटनाओं को भी लिया है, जिन्हें अश्लील कहा जाता है । इनमें अनावरण के प्रसंग तथा नारी की प्रगल्भ - धृष्टता की घटनाएं आती हैं । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में ऐसे प्रसंगों की कमी नहीं, और न ही उन्हें प्रच्छन्न रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । उदाहरण के लिये "सुनीता" उपन्यास में सुनीता के अनावरण प्रसंग को लुका छिपी से प्रस्तुत न करके इसे निम्न लिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है :-

मुझे चाहते हो ? मैं यह हूँ ......
और कहकर सुनीता ने अपना जम्पर उतारकर रख दिया ।
हरिप्रसन्न अचकचाया सा बोला - "भाभी" ?

सुनीता की वाणी में न व्यंग्य मालूम हुआ, न झल्लाहट । उसने कहा, "मुझे ही चाहते हो न ? मुझे लो, और उसने अपने चारों ओर से साड़ी हटाना शुरू कर दिया ।

.... हरिप्रसन्न को कुछ सूझे न सूझता था । अपने शरीर पर अब शेष बंधी बाड़ी को खोलने की चेष्टा में लगे हुए सुनीता के हाथों को जोर से पकड़कर मानो चीख कर कहा - "भाभी" । भाभी ।

किन्तु सुनीता तनिक स्थिति के साथ बोली यह तो बाधा है हरी । उसके रहते मुझे कैसे पाओगे । उसे उतर जाने दो तब मुझे लेना । खुली मुझको ही लेना । मुझको ही नहीं चाहते ?

और अपने हाथ छुड़ाकर अपने शरीर से चिपकी हुई बाडी को उसने फाड़ दिया । वह अन्तिम वस्त्र भी चीर होकर नीचे सरक गिरा ।[1]

"व्यतीत" में भी चन्द्री द्वारा निर्वस्त्र होने का ऐसा एक प्रसंग है :-

"सुनकर दो क्षण मुझे देखा । कैसी निगाह थी । फिर एकाएक लिहाफ - कम्बल एक ओर फेंककर वह खड़ी हो गयी । रात की इकहरी यथावश्यक पोशाक में उसकी ऊँचाई कुछ और ऊँची हो गई । आंखों में तड़पती बिजली, बदन तना जैसे कमान । चित्त को जाने कैसे आह्लाद हुआ । घबराकर कहा - क्या करती हो सर्दी खा जाओगी ।"

नहीं समझ सका, क्या हुआ । सब कुछ हो सकता था । उस नारी मूर्ति में सब सम्भावनाएं लहक आयीं । शायद वे ही आपस में गुंथ बैठी । वह मूर्ति अपनी जगह से न हिली न डुली । जैसे निष्कम्प ज्वाला हो । धीमे से कहा - "चन्द्री, सर्दी लग जायेगी ।

दांत मिसमिसाकर झटके से तन के तनिक से अन्तिम वस्त्र को उतारकर मेरे मुंह पर जोर से फेंकते हुए कहा, "लो, अब तो नहीं लगेगी सर्दी ।"[2]

जैनेन्द्र जी ने अनावरण प्रसंग के अलावा नारी द्वारा पुरूष के निमंत्रण देने के प्रसंग भी लिये हैं । "सुखदा" उपन्यास में नारी की प्रगल्भ का एक प्रसंग है जिसका चित्रण करते हुए कहा गया है - "कहने के साथ वह

1- जैनेन्द्र : सुनीता : पृ0 व्यतीत

2- व्यतीत :

खड़े हो गये । हाथों के पंजे मले । उंगलियां उनकी तन के कस गयीं । उन दोनों पंतों से कन्धों पर मुझको झंझोडते हुए, मेरी आंखों में आंखें डालकर उन्होने कहा, - "कह तू क्या चाहती है ?

वह मुझे भूलता नहीं - जीवन और मृत्यु के बीच का वह क्षण । दोनों मानों एक होकर इस क्षण में पिघल गये थे । इस तरह बांध के से अपने सख्त पंतों में मेरे कन्धे को कसे, मेरी आंखों को वह ऐसे देख रहे थे जैसे नहीं बूझ पाते हों कि मैं हूँ, कि क्या हूँ .... वह क्षण अनन्त होता चला गया । समय तब न था और वह पत्र त्रिकाल जितना अनन्त था कि देखते देखते हिंसा से उन्होने मुझे आप में जकड़कर दबोच लिया । उस समय मैने शारीरिक और आत्मिक दोनों विचारों से अनुभव किया कि मैं नहीं हुई जा रही हूँ । मरी जा रही हूँ, निश्चय होने से अधिक हुई जा रही हूँ । कब मुझे अलक किया और छिटका कर दूर फेंक दिया, मैं नहीं जानती । मैं सोफे में आ गिरी । वह कोच में ही बैठे, कहा - "जाओ, बच गई तुम ।"[1]

स्त्री की प्रगल्भता के एक - दो प्रसंग - "व्यतीत" में भी हैं । सुमिता की धृष्टता का एक प्रसंग - "मोटर में समिता दूसरी ही हो आई । घर में वह सदा सभ्य थी लेकिन मोटर का एकान्त जैसे घर न हो । वहां उसकी प्रगल्भ धृष्टता पर मुझे असमंजस हुआ । मैं एक ओर अलग हटा पर हटने की कितनी जगह थी । मैने निश्चयपूर्वक हाथ को अलग हटाया । यह अपमान ही था । सिसकारती सी बोली, यू सिस्सी, यू डेयर ।"[2]

काम वासना से छलकते हुए उपर्युक्त प्रसंगों के चित्रण के कारण यद्यपि जैनेन्द्र जी पर अश्लीलता को प्रश्रय देने के आरोप लगाये गये हैं, तो भी उनकी विशिष्ट चिन्तन - पद्धति के अनुसार इन प्रसंगों के वर्णन में किसी प्रकार की अश्लीलता या अनैतिकता नहीं है । उनका तर्क है कि "अश्लीलता

1- सुखदा

2- व्यतीत

यदि है तो वस्तु में नहीं व्यक्ति में हैं ।"[1] इन प्रसंगों में यौन भाव को प्रदर्शित किया गया है । जैनेन्द्र जी के प्रायः सभी उपन्यासों में ऐसे कामुक प्रसंग आये हैं किन्तु इन प्रसंगों के वर्णन में रस लेने की उनकी प्रवृत्ति नहीं है । इन प्रसंगों के माध्यम से, मन के स्तर मनोविकारों की तरह उन्होने काम - वासना का विश्लेषण करने की ओर ही अधिक ध्यान दिया है इसलिये ऐसे अवसर पर भाव धारा में बहने की अपेक्षा उन्होने बहुत संयम दिखाया है । यही कारण है कि अश्लीलता की अपेक्षा इन घटनाओं के वर्णन में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की मात्रा अधिक दिखाई पड़ती है ।

जैनेन्द्र जी के मनोवैज्ञानिक कथ्य योजना में आत्मपीड़न द्वारा अहं के अन्मूलन की महिमा का महत्वपूर्ण स्थान है । "त्यागपत्र" नामक उपन्यास की मृणाल अपने ऊपर आने वाले संकटों तथा आरोपों को सहर्ष झेलती हुई, आत्मपीड़न द्वारा आत्म शुद्धि के मार्ग की तरफ प्रवृत्त होती है । पतित तथा पापमय जीवन भी उसके लिये आत्मसाधना का मार्ग है । अतः बिना कोई शिकायत किये वह इस सत्य मार्ग पर चलने के कारण जो कष्ट आते हैं उन्हें अंगीकार करती हुई अन्त में मृत्यु का आलिंगन करती है । उसके जीवन में आत्मपीड़न की स्वीकृति और सच्चाई से उद्भूत तेजस्विता के कारण प्रमोद को अपने स्वार्थपूर्ण आचरण पर ऐसी ग्लानि होती है कि समस्त भौतिक वैभव उसे निःसार प्रतीत होने लगता है और अन्त में वह जजी से त्यागपत्र दे देता है ।

इसी तरह, "कल्याणी" की नायिका भी आत्मपीड़न द्वारा आत्म शुद्धि का लक्ष्य अपने सम्मुख रखे हुए है । पति के प्रति आसक्ति के कारण वह अपने आपको दण्ड देती है । पति के प्रति हुई पति के समस्त अत्याचारों को सहर्ष स्वीकार करती है । आदर्श और प्रवृत्ति के द्वन्द्व से वह ग्रसित है और इस द्वन्द्व से मुक्ति पाने के लिए वह अपने पति के लिये नीचे से

1- साहित्य का श्रेय और प्रेय

नीचे गिरने को तैयार है । किन्तु उसका मानसिक द्वन्द्व उसकी आत्म पीड़ा से भी शान्त नहीं होता और वह इसी द्वन्द्व में प्राण दे देती है ।

उपन्यास कथानक के माध्यम से मनुष्य के अन्तर्जीवन की कुण्ठाओं तथा उलझनों के उद्घाटन और मानव की अश्चेतना में छिपी पशु - प्रवृत्तियों की संयोजन को जैनेन्द्र कुमार बहुत महत्व देते हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की परम्परा का अनुसरण करते हुये जैनेन्द्र जी ने अपने कथानकों के माध्यम से मानव के अन्तर्मन की कहानी कहनी चाही है । अतः अन्तर्मन के उद्घाटन को अपने कथानक का लक्ष्य बनाने के कारण, उन्होने मानव की विविध मानसिक अवस्थाओं, जटिलताओं और द्वन्द्वों तथा जटिलताओं को अपने कथानक का आधार बनाते समय जैनेन्द्र जी में मन की स्वस्थ अवस्था के बजाय उसकी विकृतावस्था को अधिक लिया है । यही कारण है कि मन की कल्पना पर आधारित उनके अधिकांश कथानक मानसिक उलझनों एवम् पेचीदगियों की कहानी ही अधिक कहते हैं ।

"सुखदा" नामक उपन्यास में सुखदा भी मानसिक द्वन्द्व से आक्रान्त है । सुखदा के आरम्भिक विकास में ही असाधारणता की गांठ थी । इसी गांठ को परिस्थितियों ने जटिलतर बनाया । उसके जीवन का उद्देश्य भौतिक-वादी है, किन्तु विवाहोपरान्त अपनी विषम और विपरीत स्थिति पाकर उसका महत्वाकांक्षी मन विक्षोभ में भर जाता है । उसके द्वन्द्वमुक्त जीवन में क्रान्तिकारी गंगा सिंह का प्रवेश, उसके कुण्ठाग्रस्त एवम् विकल व्यक्तित्व को फूट पड़ने का अवसर देता है । फलतः वह क्रांतिकारियों में सम्मिलित हो जाती है । उसका क्रान्तिकारी व्यक्तित्व उसकी कुण्ठाग्रस्तता का ही विस्फोट है । सुखदा अहं प्रवृत्ति से प्रेरित है जिसे महत्वाकांक्षा ने और भी उक्त रूप प्रदान किया है । तभी सीमित साधनों से युक्त पति और परिवार के बीच वह सामंजस्य नहीं करती । पति के विरूद्ध अपने पतनीत्व को अस्वीकार कर प्रेयसी की ओर अग्रसरित होकर क्रान्तिकारियों में जाकर भी असफल रहती है । मन

के भीतर जो अतृप्ति थी, शायद वही इस भांति फूटकर अपने को बुझाती और हठात् तृप्ति का स्वाद पाना चाहती थी । फिर धीरे - धीरे उसमें अर्थ भी जान पड़ने लगा । मन कुछ व्यस्तता चाहता था, अपने आपसे दूर कहीं फसना चाहता था ।"[1] वह नारी जागरण के द्वारा अपने निराश और विकल नारीत्व को बन्धन मुक्त करना चाहती है । वह पति की सनातन दासता से स्वच्छन्द जीवन की व्यवस्था की वकालत करके अपनी वेदना को परिशान्त करती है । उसका व्यक्तित्व अहं प्रधान है । इसीलिये उसके जीवन में समझौता तथा समर्पण तक जाने वाली निष्ठा का अभाव है ।

जैनेन्द्र अपने कथानक में एक मनोवैज्ञानिक रहस्य बुनते हैं । उनकी कुल औपन्यासिक यात्रा मनोवैज्ञानिक रहस्यों के भीतर है । उनके लगभग सभी चरित्रों में एक मनोवैज्ञानिक गांठ होती है । यही गांठ भुवन मोहिनी के व्यक्तित्व में भी दिखाई देती है । जितेन के चले जाने के बाद भुवन मोहिनी के घर - परिवेश में जो त्रासद तथ्य घटित हो गया है, वह मोहिनी की गतिविधि से अभिव्यक्त होता है - "मोहिनी आज सबेरे से ही बेहद कष्ट में थी । जैसे रात में भी कुछ उसके मन पर दबाव दे रहा था ..... जान गयी थी कि कुछ अघट घटा है .... भीतर उसके गहरा कष्ट था । जैसे मुक्का मारकर उसके भीतर का कुछ कीमती तोड़ दिया गया हो । जान पड़ता था, कि वह अभी चिल्लायेगी .... लेकिन चिल्लाई नहीं । आदत के मुताबिक नित्य कर्म में लग गयी और स्नान आदि से जल्दी निवृत्त होकर अपने पूजा के कक्ष में आ बैठी ।"[2] वह अपने अपराध को छिपाने के लिये ही इस सहज दिखने वाले व्यवहार में सक्रिय है ।

जैनेन्द्र जी ने कथानक का ढांचा खड़ा करने के लिये मानसिक द्वन्द्व एवम् कुंठा का सहारा लेने के अतिरिक्त इस द्वन्द्व के उत्तरोत्तर उद्घाटन

1- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ - 22

2- जैनेन्द्र : विवर्त : पृष्ठ - 106

तथा मानसिक कुण्ठा की प्रतिक्रिया की सहायता से कथानक का विकास किया है । द्वन्द्व और मानसिक ग्रन्थि पर आधारित उनके कथानकों में मन की इस करूणा-वस्था से अपने लिए पोषक - पदार्थ ग्रहण किये हैं । अतः द्वन्द्व और कुण्ठा पर आधारित कथा के जिन सूत्रों को वह उपन्यास के आरम्भ में पकड़ते हैं, उन्हीं के सहारे वे कथानक का विकास करते जाते हैं । जैनेन्द्र जी में अहं और काम अन्य विकारों के आधार पर अपने कथानक के उपन्यासों का विस्तार किया है । जैनेन्द्र जी ने मानसिक द्वन्द्व व उलझन को आधार बनाकर उपन्यास के कथानक का विकास करते समय उपयुक्त घटनावली का भी निर्माण किया है । किन्तु घटनाओं का विशद वर्णन करने की अपेक्षा उन्होने घटनाओं की मानसिक प्रतिक्रिया का ही चित्रण अधिक किया है । घटनाओं का अस्तित्व यदि है तो व्यक्ति के अन्तर्मन से प्रतिक्रिया स्वरूप उठने वाले बवंडरों के चित्रण तथा मनोविकारों का विश्लेषण करने के लिये ही । इसलिये उन्होने अपने कथानकों का विकास करते समय अधिकतर उन्हीं घटनाओं को लिया है जिनसे कि पात्र की मानकिस जटिलता व रहस्यात्मकता को प्रकाश में लाने में सहायता मिले । उनका मुख्य क्षेत्र मानव का अन्तर्मन होने के कारण ये जागतिक घटनाओं का थोड़ा बहुत ही वर्णन करके पात्र के मन पर इन घटनाओं की प्रतिक्रिया का वर्णन करने लग जाते हैं ।

कल्याणी के वकील साहब भी मनोविश्लेषक से कम नहीं । वह जानना चाहते हैं कि "कल्याणी" असरानी के स्वभाव में जो मृत्यु तत्व का एक स्पष्ट खिंचाव नजर आता है वह यदि प्रतिक्रिया है तो किन घटनाओं की प्रतिक्रिया है .... व्यवसाय में वह सावधान है, कर्तव्य में तत्पर .... फिर भी एक अशान्ति एक दमन, एक विचिकित्सा जो दिखाई देती है वह क्या है ? और वह क्यों है ?"[1]

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 90

उपर्युक्त विवेचनों से यह ज्ञात होता है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक कथ्य योजना के माध्यम से उपन्यासों का विस्तृतीकरण किया जाता है ।

कुछ आलोच्य उपन्यासों में पात्रों की संयोजना इस प्रकार हुई है कि एक चरित्र से दूसरे चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । सत्यधन, बिहारी, हरिप्रसन्न, श्रीकान्त, जितेन नरेश और सुखदा कान्त परस्पर विरोधी पात्र हैं और एक दूसरे की चारित्रिक विशेषताओं को अधिक मुखर कर देती हैं । उनका द्वन्द्व अहं भावना और आत्मव्यथा का, स्पर्धा और विसर्जन का द्वन्द्व है । जो एक की सहज प्रतिक्रिया है वह दूसरे के लिये एरिहार्थ और अगण्य है, और जो दूसरे का स्वभाव है, वह पहले के लिये हय और पुरूषत्वहीन है । जो एक के लिये प्रवृतित का मार्ग है वही दूसरे के लिये निवृत्ति का क्षेत्र बन जाता है । "अहम्" में स्व और पर की सीमाएं निश्चित और प्रागल्भ हैं । समर्पण में "पर" में "स्व" का लोप हो जाता है । इस तुलनात्मक चरित्र उपस्थापन से उपन्यासकार के उद्देश्य को स्पष्टता और कला को गौरव प्राप्त हुआ है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की चरित्र - योजना का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :-

(1) उच्चवर्गीय चरित्र

(2) मध्यम वर्गीय चरित्र

(3) निम्न वर्गीय चरित्र

(4) नारी चरित्र योजना ।

1- उच्च वर्गीय चरित्र तथा पात्र चरित्रता :-

जैनेन्द्र जी के उच्चवर्गीय पात्रों में वकील, डाक्टर, उद्योगपति अधिकारी आते हैं । इनके उपन्यासों के उच्च वर्गीय पात्रों के अन्तर्गत वकील साहब तथा उनकी पुत्री गरिमा, एम0 दयाल या प्रमोद, कल्याणी - डा0 असरानी राय साहब, डा0 भटनागर, बैरिस्टर नरेश चन्द्र और भुवन मोहिनी आदि आते हैं । इनके उच्चवर्गीय पात्र पैसे को समाज में अधिक महत्व देते हैं - "पैसा ही समाज में इज्जत कमाता है । पैसा ही जीवन का सर्वस्व है । कुछ पात्र निम्न वर्गीय पात्रों से प्रेरणा प्राप्त कर क्रान्तिकारी बनते हैं । इनमें मानसिक कुण्ठा जन्म ले लेती है । जैनेन्द्र जी के उच्चवर्गीय पात्र वाह्य आडम्बर ज्यादा करते हैं । ये लोग बाहर से आदर्शवादी दिखाई पड़ते हैं । लेकिन यथार्थ कुछ और ही है ।

परख नामक उपन्यास में वकील साहब बड़े आदमी हैं । गरिमा उनकी पुत्री है । जिसका विवाह सत्यधन से करना चाहते हैं । सत्यधन के साथ वह किसी तर्क को उठाना नहीं चाहते । गरिमा और सत्यधन को लेकर सत्यधन के मन में एक द्वन्द्व चलता है । अभी कश्मीर के रास्ते में रेल ही है कि सोई हुई गरिमा की प्यारी नींद की चौकसी करते हुए सत्य सोंचता है, "एक यह है कि जिसका भविष्य कैसा निश्चित सुखी है, जिसने जीवन में आराम ही पाया और विलास ही देखा है । एक वह है कट्टो जिसने केवल नकार की मूर्ति बने रहकर जीवन काट जाना है । यह कैसा वैषम्य है यह फिर सोचा अब मैं क्या करूँगा ? क्या में इस वैषम्य को बढ़ाऊँगा या साम्य - साम्य बढ़ाऊँगा । "वह कट्टो के बारे में सोंचता है ।" क्या दुखियों के प्रति हम निश्चितों को कई कर्तव्य नहीं है ? क्या संसार का सम्पूर्ण सुख हथिया लेना अन्याय नहीं है उनके प्रति जिन्हें उसका कण भी नहीं मिल पाया है ? . और कुछ नहीं तो उनकी खातिर क्या हम अपना सुख कम नहीं कर सकते ? ...... कट्टो का इसी तरह रहने देकर मैं खुद

कैसे विलास गर्त में डूब सकता हूँ । उपर्युक्त उदाहरण में महसूस किया जा सकता है कि जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के उच्च विलासितापूर्ण जीवन यापन करते हैं ।

त्यागपत्र में प्रमोद बड़ा आदमी है जो उच्च वर्ग के अन्तर्गत आता है । प्रमोद के आग्रह पर मृणाल ने कहा, "प्रमोद तुमने महाभारत तो पढ़ा है न । युधिष्ठिर स्वर्ग गए थे तो कुत्ते को नहीं छोड़ गये थे । यह बता तेरा घर कितना बड़ा है - इन सबको लेकर चलेगा । ये कुत्ते नहीं हैं और इनका मुझ पर बड़ा उपकार है ।" यह प्रमोद के अभिजात्य पर प्रहार है और भी आग्रह करने पर वह प्रमोद के धन गर्व पर चोट करती है । पूछने पर कि "रूपये का क्या करोगी" कहती है, "क्या करूँगी, यह तो अभी नहीं जानती हूँ, पर पहले तो मेरे चित्त का मरम मिट जायेगा । कि मैं तेरी सहायता नहीं चाहती हूँ । फिर रूपया छोड़ने में तेरा अपना भी भला है । खूब कमा और कमाकर सब इस गड्ढे में ला पटका कर । सुना कि नहीं । रूपये के जोर से यह नरक कुण्ड स्वर्ग बन जाता है, ऐसा तो मैं नहीं जानती । फिर भी रूपया कुछ न कुछ काम आ सकता है । प्रमोद (त्याग पत्रीय जज एम0 दयाल अभी वकील) की समझ में यह बात बिलकुल नहीं आई । उसे टालकर उसने मृणाल की समस्या का समाधान करना चाहा । बुआ ने यह साफ कह दिया कि बहुत सा रूपया पाने पर भी वह प्राईवेट वार्ड में दौड़कर चली जाने वाली नहीं है और प्रमोद कुण्ठा ग्रस्त हो चला आया । भीतर की ओर उसने कुंडी बन्द कर ली । बुआ की ओर नहीं देखा, क्योंकि बुआ तो प्रतीक थीं । बाहर था सारा समाज जो नरक जी रहा था । उसने सामने के स्वार्थ को देखा और जज एम0 दयाल बना ।

एक0 दयाल सामाजिक वस्तु स्थिति का प्रतीक है । समाज में अभी इतना चैतन्य ही नहीं है कि वह सत्य की जलती आंख को देख सके । फलतः एम0 दयाल की विफलता स्वयं समाज की विफलता है । अभिजात्य

समाज अर्थ, प्रतिष्ठा, सामाजिकता, सुविधा, बड़ा आदमीपन, इनके पीछे दौड़ता है । जैनेन्द्र के उपन्यास कल्याणी में डा0 असरानी - कल्याणी तथा राय साहब उच्च वर्गीय हैं ।

कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिन्हें उच्च और मध्यम दोनों वर्गो में रखा जा सकता है । "सुखदा" उपन्यास की सुखदा । जयवर्धन उपन्यास का जयवर्धन और इलालिजा और डा0 नाथ । सुखदा में क्रान्तिकारिता की भावना दृष्टिगोचर होती है । वह समृद्धता पूर्ण जीवन यापन करना चाहती है । वह बाहर बनाने के प्रयास में घर को बिगाड़ देती है ।

जयवर्धन और लिजा डा0 नाथ, वस्तुतः इनका सम्बन्ध मध्यम वर्ग से ही है और वे धीरे - धीरे बढ़ते हुए उच्च वर्ग में जा पहुँचे हैं । इन पात्रों में आत्म विश्लेषण की प्रवृत्ति, बौद्धिक जागरूकता एवं नैतिक संघर्ष को पैदा करने की जो क्षमता परिलक्षित होती है, वह मध्यम वर्ग के पात्रों का जन्मजात गुण है ।

उपर्युक्त विवेचना के माध्यम से यह मान्य है कि जैनेन्द्र जी के उच्च वर्गीय पात्र समाज में मर्यादित जीवन यापन कर रहे हैं । लेकिन सामाजिक मर्यादा के लिये पैसे को अधिक महत्व देते हैं । दिखावेपन की स्थिति से यह गुजरते हुए दिखाई पड़ते हैं । इनमें द्वन्द्वात्मकता की स्थिति प्राप्त होती है । अन्दर से कुछ बाहर से कुछ और ही है । इनके अन्दर छल - प्रपन्चना, बाह्याडम्बर तथा तिरस्कार की भावना विद्यमान है ।

मध्यम वर्गीय चरित्र तथा पात्र चरित्रता :-

जैनेन्द्र जी अपने उपन्यासों में पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण प्रस्तुत करना चाहते हैं और ऐसे पात्र उन्हें मध्य वर्ग में आसानी से मिल जाते हैं । उच्च या निम्न वर्ग के पात्रों की तुलना में मध्यवर्गीय पात्र समाज की

नैतिक मान्यताओं का उतनी आसानी से अतिक्रमण नहीं कर सकते, इसलिये नैतिक संघर्ष के लिये उनकी मनोभूमि जितना अच्छा अखाड़ा बना सकती है उतनी किसी अन्य वर्ग के पात्रों की नहीं । साथ ही, मध्यवर्गीय पात्रों में बौद्धिक जागरूकता तथा नैतिक चिन्तन का जो एक नैसर्गिक गुण विद्यमान रखता है, वह अपेक्षाकृत अन्य वर्गो में उतना नहीं मिलता । इसलिये मध्य वर्गो से ही पात्रों का चयन कर जैनेन्द्र जी ने आत्म विश्लेषण में समर्थ, नैतिक द्वन्द्व की ओर प्रवृत्त तथा विचारशील पात्रों का सृजन किया है ।

उदाहरण के लिये, उनके "परख" उपन्यास की कट्टो, सत्यधन और बिहारी, "सुनीता" उपन्यास के श्रीकान्त, सुनीता और हरिप्रसन्न, "त्यागपत्र" उपन्यास की मृणाल और प्रमोद, "कल्याणी" उपन्यास के डा0 असरानी, कल्याणी और वकील साहब, "सुखदा" के कान्त, सुखदा, लाल और हरिदा, "विवर्त" का जितेन, "व्यतीत" उपन्यास के जयन्त और "जयवर्धन" उपन्यास के जयवर्धन, इला नाथ और लिजा आदि पात्र मध्यवर्ग से ही सम्बन्ध रखते हैं । यह ठीक है कि इनमें से कुछ पात्र उच्च वर्ग के भी हैं, जैसे कि कल्याणी उपन्यास की कल्याणी और डा0 असरानी, जयवर्धन उपन्यास का जयवर्धन और इला, लिजा और डा0 नाथ, लेकिन वस्तुतः उनका सम्बन्ध मध्यवर्ग से ही है ओर वे धीरे - धीरे बढ़ते हुए उच्च वर्ग में जा पहुँचे हैं । इन पात्रों में आत्म विश्लेषण की प्रवृत्ति, बौद्धिक जागरूकता एवम् नैतिक संघर्ष को जन्म देने की जो क्षमता दिखाई देती है, वह मध्यम वर्ग के पात्रों का जन्मजात गुण है ।

सभी उपन्यासों में एक ही उद्देश्य व कारण ही उनके पात्रों में या समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं । न केवल प्रत्येक उपन्यास में कम से कम एक पात्र चिन्तनशील अवश्य होता है । बल्कि इन पात्रों के चिन्तन में भी समानता देखी जा सकती है । उदाहरण के लिये "कल्याणी" में वकील साहब कहते हैं, "पर मनुष्य सोंचता रहता है और होनहार होता रहता है । यह नहीं कि होनहार मनुष्य के सोच विचार की गिनती नहीं । सच यह है कि

जो होता है, हमारे द्वारा ही होता है । फिर भी कथा विचार कष्ट ही उपजाता है । इससे आवश्यक है कि विचार हो तो व्यर्थ हों । भाव तथ्य के साथ जो मन्तव्य एक रस हो, वह ही है, शेष क्लेष ।[1]

प्रमोद भी नियतिवादी है । वह सोचता है कि बहुत कुछ दुनिया में हो रहा है, वह वैसा ही क्यों होता है, अन्यथा क्यों नहीं होता, इसका क्या उत्तर है ? उत्तर हो या न हो, पर जान पड़ता है कि भक्तिव्य ही होता है, नियति का लेख बंधा है । एक भी अक्षर उसका यहां से वहां नहीं हो सकेगा । वह बदलता नहीं, बदलेगा नहीं पर विधि का यह लेख किस विधाता ने बनाया है, उसका उसमें क्या प्रयोजन हे, यह भी कभी पूँछकर जानने की इच्छा की जा सकती है या नहीं ।[2]

इसी तरह सुखदा, भुवन मोहिनी और जयन्त की विचार - धाराएं भी नियतिवाद की इसी प्रणाली में बहती देखी जा सकती हैं ।[3]

कुछ पात्रों का चरित्र - चित्रण एक ही रीति से हुआ है । कुछ समान घटनाओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया भी समान ही होती है । घर में बाहरी तत्व - हरिप्रसन्न के प्रति श्रीकान्त के जो भाव हैं, वे इस प्रकार हैं, "तुमसे कहता हूँ कि उसकी किसी बात पर बिगड़ना मत । सुनीता, तुम मुझे जानती हो । जानती हो कि मैं तुमको गलत नहीं समझ सकता । तब तुमसे मैं चाहता हूँ कि इन कुछ दिनों के लिये मेरे ख्याल को अपने में से तुम बिलकुल दूर कर देना । सब पूछा तो इसीलिए मैं यह अतिरिक्त दिन यहां बिता रहा हूँ । .... सुनीता, मुझे उसकी (हरिप्रसन्न की) भीतर की प्रवृत्ति की बात नहीं मालूम । तो भी तुमसे कहता हूँ कि तुम इन दिनों

1- कल्याणी : पृष्ठ - 70

2- त्यागपत्र : पृष्ठ - 36

3- दृष्टव्य - क्रमशः : सुखदा : पृष्ठ - 203

के लिये अपने को उसकी इच्छा के नीचे छोड़ देना । यह समझना कि मैं नहीं हूँ । तुम हो और तुम्हारे लिए काम्य कर्म कोई नहीं है ।"[1]

नरेश भी जितेन को लेकर चिन्तामग्न है । उसे ध्यान आया अतिथि का, जो आया था और अब चला गया है । वह पहले प्रेमी था । लेकिन बाद में भी प्रेमी ही, तो मुझे उसमें क्या करना है ? क्या मेरा आशीर्वाद है कि ऐसा हो ? हां, है आशीर्वाद । मेरी मोहिनी को सबका प्रेम मिले । सब ही का प्रेम मिले । क्या उसकी मेरी होने की सार्थकता तभी नहीं है कि अभिन्नता इतनी हो कि मेरा आरोप उस पर न आये ।[2]

सुखदा और लाल के बढ़ते हुये सम्पर्क को देखकर कान्त की प्रतिक्रिया भी नरेश से भिन्न नहीं है ।[3]

यदि वहां क्रान्तिकारियों के चरित्र - चित्रण के औचित्य के प्रश्न को जैनेन्द्र के दृष्टिकोण से ही देखा जाये तो भी वह निश्चित है कि ऐसे पात्रों के चरित्रांकन में गहरा साम्य है । न केवल क्रान्ति के क्षेत्र में ले जाने वाले प्रेरक तत्व समान हैं, प्रत्युत, उनके कार्य - व्यापार भी एक दूसरे से अधिक भिन्न नहीं हैं । जितेन के जीवन में तो भुवनमोहिनी का महत्व अत्यधिक है ही, हरिप्रसन्न और लाल की भी एक बहुत बड़ी कमजोरी "स्त्री" है । जिस तरह मोहिनी जितेन के दल के टूटने का कारण बनती है । उसी तरह लाल तथा सुखदा के सम्बन्ध के कारण हरीश को दल का विघटन करना पड़ता है । हरिप्रसन्न के प्रसंग में भी यह कहा जा सकता है कि सुनीता के कारण ही वह अपने दल के प्रति थोड़ा असावधान हो जाता है और उसके दल पर पुलिस का आक्रमण होता है । इसके अतिरिक्त रोकर अपनी दुर्बलता व्यंजित करना और सदा वाग्दिग्ध पर निष्क्रिय रहना उक्त तीनों ही पात्रों

1- सुनीता : पृष्ठ - 135-36

2- विवर्त : पृष्ठ - 149

3- सुखदा : पृष्ठ - 126-27

में समान रूप से पाया जाता है । इसी उलझन के कारण, जिसके ठीक - ठीक स्वरूप के विषय में हम अज्ञान में हैं - हरीश आत्म - समर्पण करने के लिये बाध्य हो जाता है ।

प्रस्तुत विवेच्य उपन्यासों में नारी पात्र भी एक दूसरे से मिलते जुलते हैं । कट्टो कल्याणी, मृणाल, मोहिनी, सुनीता, सुखदा इत्यादि सब स्त्री पात्रों के चरित्र का मूल तत्व उनके हृदय की करूणा है । ये सभी चरित्र करूणा और प्रेम से सिक्त हैं । ये स्त्री पात्र मध्यम वर्गीय चरित्र को उद्घाटित करते हैं । सुखदा को छोड़कर सभी निर्माण के सूत्र श्रद्धा और अहिंसा हैं । सुखदा से अहम्मन्यता अधिक थी जिसकी वजह से वह पति कान्त से तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकी थी, किन्तु अब उसमें अमित पश्चाताप की अग्नि धधक रही है और काठिन्य मल रहा है । वह करूणा और प्रेम की महत्ता को समझ रही है । कट्टो में सत्यधन के लिये अगाध श्रद्धा है । विश्वास भंग करने पर भी सत्यधन के प्रति कट्टो समर्पण का ही भाव है । बिहारी की सरलता और प्रमल स्वभाव ने उसका हृदय जीत लिया है और वह सत्यधन के समक्ष ही बिहारी को अपने अन्तरतम में स्थान देती है । कल्याणी को अपने पति से प्रेम नहीं है, लेकिन फिर भी वह भरसक कोशिश करती है लेकिन उनके प्रति उसका विरोध या अप्रेम प्रकट न हो । वह सदा डा0 असरानी के प्रति आभारी और कृतज्ञ ही दिखाई देती है । मृणाल के व्यक्तित्व को परिस्थितियों ने करूणा से इतना आपूरित कर दिया है कि वह कोयले वाले को भी अस्वीकार नहीं कर सकी । सुनीता और मोहिनी दोनों क्रमशः हरिप्रसन्न और जितेन की प्रचण्डता और दुर्दमता को अपने प्रेम और अहिंसात्मक व्यवहार से साधारणता के स्तर पर ले जाती है । अनिता को यद्यपि जयन्त से प्रेम है किन्तु अपने पति की और भी वह लापरवाह या श्रद्धाशून्य नहीं है । चन्द्री में आधुनिक नारी की अहम् भावना सशक्त है किन्तु काल के व्यवधान में उसका अहं भी करूणा और आत्म - व्यथा

में धुल गया है । इस प्रकार प्रेम और आत्म - व्यथा ही जैनेन्द्र के नारी पात्रों के चरित्र - चित्रण के प्रमुख उदाहरण हैं ।

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि चरित्रांकन में जैनेन्द्र की कला असाधारण है । जैनेन्द्र जी के उपन्यास में मध्यम वर्गीय चरित्र उभर कर आया है ।

3- निम्न वर्गीय चरित्र तथा पात्र चरित्रता :-

जहां एक ओर इन उपन्यासों में सुखदा, जितेन, जयन्त कल्याणी आदि विशद पात्रों का सुन्दर व सफल निर्माण हुआ है, वहां दूसरी ओर गंगासिंह तिन्नी, प्रभात, बुधिया, कपिला आदि लघुपात्रों के विधान में भी स्तुत्य प्रौढ़ता और सौन्दर्य का दिग्दर्शन मिलता है । ये पात्र अत्यधिक प्राणवन्त और स्वतः सम्पूर्ण है । इनमें वैयक्तिक भिन्नता इतनी स्पष्ट है कि यह वैचित्य उत्पन्न करने में लेखक की कला - शक्ति की ओर एक इंगित है, जिसका परिचय हमें उसके विशद चरित्र - निर्माण में अधिक नहीं मिलता है । वास्तव में ये लघु चरित्र गढ़ी हुई मूर्तियां हैं जिनमें मूर्तिकार ने अपनी कला - साधना को मूर्त किया है । सुखदा वह मृणाल जैसी अमर सृष्टियों के साथ में वे भी अविस्मरणीय हैं ।

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "त्यागपत्र" नामक उपन्यास में जितेन निम्न वर्ग की दशा को अतयन्त दयनीय दिखाया गया है । मृणाल पहले कोयले वाले के साथ रही । बाद में उठना चाहा, ट्यूटर बनी परन्तु लांक्षन खुलने पर अभिजात्य को छल मानकर नीचे जाने का पथ ही उसने स्वीकार किया और अन्त में उस वर्ग के लोगों में जा पहुँची जो समाज की जूठन हैं । उनकी बुझती और जलती इन्सानियत के भरोसे ही वह जी और शायद मरी । इस स्थिति का चित्रण देखिए, "जहां नगर की सडांद रहती है, वहां वह रहती थी । अधेड़ अवस्था की वेश्याएं बंकार मजबूर पेशेवर भिखमंगे, कानून

की आंख और चंगुल से बचकर छिपे - उघड़े काम करने वाले उचक्के लोगों की वह जगह थी । बुआ वहां कैसे आ पड़ी । वह बीमार थी, खटिया से लगी पड़ी थी । चार - पांच ऊपर के वर्णन के स्त्री - पुरूष आस - पास थे । उनके चहरे पर बुआ की अवस्था के लिये आग्रह और चिन्ता लिखी थी । वे परेशान मालूम होते थे, पर बात ये बड़ी लापरवाही के साथ करते थे । क्या - शर्म वहां न थी । ..... कहने का तात्पर्य यह है कि इन लोगों की समाज में कोई इज्जत न थी, ये लोग बेपरवाह व इज्जतदार, अमर्यादित, अर्थहीन, निरूद्देश्य जीवन यापन करते थे ।

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "सुखदा" नामक उपन्यास में गंगासिंह निम्न वर्ग का व्यक्ति है, जो सुखदा के जीवन में आता है । गंगा सिंह उनके यहां कुछ दिन नौकर रहता है । बाद में वह पकड़ जाता है और एक प्रमुख क्रान्तिकारी सिद्ध होता है । गंगा सिंह के जीवन से प्रेरणा पाकर सुखदा नई - जीवन भूमि पर बढ़ती है । इससे यह आभास होता है कि जैनेन्द्र के उपन्यास के निम्न वर्ग के पात्र धनाभाव में भी जीवन के प्रति जागरूक हैं तथा उनमें कर्तव्यनिष्ठता, उत्साह की भावना विद्यमान है । ये क्रान्तिकारी भी दिखाई पड़ते हैं । ये मध्यवर्गीय पात्रों के क्रान्तिकारिता के क्षेत्र में प्रेरणास्त्रोत भी बनते हैं ।

जैनेन्द्र जी के निम्न वर्ग के पात्र आर्थिक विषमता के कारण धनाभाव में घटनापूर्ण जीवन जीते हैं । ये अपने अस्तित्व को सो चुके हैं । समाज में इन्हें इज्जत की निगाह से नहीं देखा जाता है । ये विवश हैं, दीन - हीन तथा आक्रामक हो चुके हैं । मजबूरियां इन्हें कमजोर बना देती हैं । लेकिन इन दशाओं में भी इनमें एक नयापन है - इनके चरित्र उज्ज्वल तथा आदर्शमय दिखाई पड़ते हैं । इनमे निश्छलता, ईमानदारी, जागरूकता सत्यवादिता के दर्शन होते हैं ।

जैनेन्द्र का उपन्यास विवर्त में मध्यम वर्गीय पात्र जितेन क्रान्तिकारी बन गया है । एक दर्जन आदमी उसने अपने चारों ओर जोड़ लिए हैं और

निम्नवर्गीय एक बकालग्रस्त बंगाली से उन्नीस वर्ष की तिन्ना को भी ले लिया है, जो उसका छोटा सा घर चलाती है । परन्तु उसके भाव की है । मन की नहीं । वह उसे अपना मन नहीं दे सका है, मन उसका काम में है । यह अवश्य है कि तिन्नी के आत्म समर्पण ने उसे ऊँचा उठाया है । स्वयं वह तिन्नी के लिये असम्भव और अग्राह्य है, परन्तु उससे उसके लिए उस मातृत्वमयी नारी की सार्थकता कम नहीं होती ।

नारी चरित्र योजना तथा पात्र चरित्रता :-

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों ने जीवन के बाहरी चित्रण की अपेक्षा अन्तरंग चित्रण को प्रधानता दी । इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास जैनेन्द्र का "परख" स्वीकार किया गया है, जिसमे व्यक्ति की प्रतिष्ठा ही नहीं हुई वरन् उसके अन्तर्मन की भावनाओं को भी अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है । व्यक्तिवादी उपन्यासकारों ने मानव - मन की अतृप्ति मोनेच्छाओं की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन अपने उपन्यासों के द्वारा प्रस्तुत किया । इस प्रवृत्ति के द्वारा हिन्दी उपन्यासों में नारी चरित्र का विशेष रूप से विस्तृत विचार तथा विश्लेषण पाया जाता है । नारी - पुरूष से ज्यादा मानसिक बल खाती है । प्रेम, दया, करूणा, कोमलता आदि सम्भावनाओं की अधिष्ठात्री है । वह "अपने मूक त्याग से अपने अस्तित्व को मिटाकर अपने पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है । तन पुरूष का रहता है, पर आत्मा वस्तुतः नारी की ही रहती है । नारी की स्थिति पुरूषों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है और वह सत्य अर्थो में पूरूष को पूर्णता प्रदान करती है ।[1] इसलिये "औपन्यासिक मोचजन्य स्थितियों में नारी, मन के अगोपन का चित्रण करने के लिये नारी को नायिका के रूप में चित्रण नहीं करता, अपितु नारी प्रधंन उपन्यासों की रचना भी उसे करने लगता है ।

1- सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृष्ठ - 17

जैनेन्द्र युग में नारी जागरण पर्याप्त विकसित अवस्था में पहुँच चुका था । जैनेन्द्र जी ने स्त्री को जीवन के केन्द्र में रख दिया तथा यहां तक कह डाला कि धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है । जैनेन्द्र जी के ही शब्दों में कहा गया है - "पुरूष बनाता है, बिघाड़ा बिगाड़ देता है - "वह अंग्रेजी की एक कहावत है । जिसमें संशोधन कर वह भी कहा जा सकता है - पुरूष बनाता है, स्त्री विगाड़ देती है । तब भी कहावत में कम कथ्य, कम रस नहीं रहता । बात वास्तव में यह है कि पुरूर्ष कम बनाता या बिगाड़ता है जो कुछ बनाती है और बिगाड़ती है स्त्री ही । स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है । फिर उन्हें बिगाड़ती भी वही है । आनन्द भी वही और कलह भी .... धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है .... दुनियां स्त्री पर टिकी है ।"[1] इस युग में नारी - पुरूष का परम्परागत भेद मूल्य रहित होने लगा एवं दोनों के बीच समानता व्याप्त होने लगी । फलस्वरूप नारी में नया सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा पारिवारिक चेतना का विकास हुआ । प्रेम की नैतिक धारणाओं की प्राचीनता का परिष्कार किया गया एवम् प्रेम के क्षेत्र में स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति की भावना पैदा हुई । अब स्त्री के चरित्र तथा मनुष्य के भाग्य को अत्यन्त गोपन कहा जाता रहा है, परन्तु जैनेन्द्र जी ने इसी नारी के गोपन मन के अनेक प्रकार की भावनाओं को अपनी दार्शनिक चिन्तन प्रक्रिया तथा व्यक्तिवादी विचारणा शक्ति के माध्यम से प्रकट किया जाता है । नारी का चरित्र तर्कहीन स्वीकार कर लिया गया था, किन्तु जैनेन्द्र जी के अनुसार "स्त्री - चरित्र्य तर्कहीन नहीं है, अपितु उसका सतीत्व तर्कहीन है ।[2] यही वजह है कि नारी की व्यक्तिवादिता और मनोविश्लेषणता ने उसकी सामाजिकता, सतीत्व, मर्यादा, श्रोनेच्छायों, पारिवारिक एवम् सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों ने उसके प्रत्येक गोपनीय अंग को तर्क

1- जैनेन्द्र : परख : पृष्ठ - 49

2- डा0 देवराज उपाध्याय : जेनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : पृष्ठ - 7

के निष्कर्ष पर अगोपन किया है तथा उसकी स्वच्छन्दता और स्वतंत्रता को नवीन स्वरूप प्रदान किया है ।[1]

जेनेन्द्र के नारी - चारित्र्य की विशेषता है कि उनकी नायिकाएं मध्यवर्गीय समाज तथा धारणाओं में पत्नी, साधारण घरेलू कम पढ़ी लिखी स्त्रियां हैं । घर गृहस्थी के दायित्वों तथा पति एवम् परिवार की नैतिक निष्ठाओं को भी मानने वाली है । परन्तु मध्यवर्गीय सामाजिक चेतना के स्तर पर उनमें एक विशिष्ट वैयक्तिक चेतना की भी चरम परिणति प्राप्त होती है, जिससे वे अनायास ही तथा स्वच्छन्द आन्तरिक प्रेरणाओं से छटपटाकर रह जाती हैं । एकान्त में वे कभी - कभी गहरे अवसाद एवम् खीझकर अनुभूतियां किसी अनजाने अप्राप्य को पाने की आह से भर जाती है । बच्चों का बन्धन, पति का भय तथा पारिवारिक वातावरण उन्हें भरा भी वस्त्र नहीं करता । वे अपने मन के अनुकूल निश्चय करके करने वाली नारियां है । ऐसी सामाजिक सापेक्षता उन्हें माना नहीं जो विवशता अथवा नियंत्रण बनकर उनका रास्ता राके । प्राचीन परम्पराओं में बंधकर चलने की परिपाटी उन्हें इष्ट नहीं । वे जीवन के विषम छोरों पर चलना पसन्द करती हैं, भले ही वहां समस्याएं ही क्यों न पैदा हों । वे समस्याएं भी उन्हें सामर्थ्यवान तथा गतिशील बनाती हैं । इन मध्यवर्गीय स्त्रियों में अपनी सामाजिक परिप्रेक्ष्यगत स्थितियों को भोगते हुए जिस निराशा, अनास्था, वैयक्तिक कुण्ठा, आक्रोश तथा अतिवादी संकीर्ण दर्शन की परिणति प्रदर्शित की गयी है, वह फ्रायडीय धारणाओं के आधार पर की गयी है ।

जैनेन्द्र जी के नारी पात्रों की सबसे बड़ी विस्मय की बात यह है कि उनके सभी पात्र अपने पति के अलावा दूसरे पुरूष की तरफ आकर्षित होते हैं । इस आकर्षण का प्रमुख श्रोत फ्रायड यौनवाद ही है । सामाजिक एवम् ग्रहस्थ जीवन का असन्तोष भी इस तरह के चित्रण के लिये उत्तरदायी हो जाता है ।

1- डा0 विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना : पृष्ठ - 88

किन्तु मुख्य रूप से इसकी वजह यौन का आकर्षण ही है । विवाहिता होते हुए भी उनमें अपने पहले प्रेमी के प्रति आकर्षण पाया जाता है । जैनेन्द्रीय आदर्श दृष्टिकोण से वे पति - परायण हैं तथा सतीत्व के बन्धन से बंधी सामाजिकता का बोझ अपने ऊपर उठाये चल रही है । दूसरी तरफ अपने पूर्वराग की याद कर अपने प्रेमियों के प्रति करूणा का मधुर परयक रस बरसाने को आतुर रहती है । सुनीता, सुखदा, भुवनमोहिनी, अनीता - नीलिमा तथा रानी वसुन्धरा इत्यादि ऐसी ही स्त्रियां हैं जो पत्नीत्व तथा प्रेयसी की दोहरी भूमिका निभा रहीं हैं । जैनेन्द्र की नारी पुरूष गामी होकर भी अपने पति में किसी तरह संघर्ष पैदा नहीं होने देती । उनके एक तरफ पति है एवम् दूसरी तरफ प्रेमी । उनकी चेतना उन्हें पति के प्रति विश्वासघात नहीं करने देती, साथ ही प्रेमी के प्रति विमुखता का भाव भी नहीं आने देती तथा वे स्वयं प्रेयसीत्व तथा पत्नीत्व के बीच संघर्षात्मक जीवन भोगने के लिये तत्पर रहती है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में पुरूष - पात्रों की तरह ही स्त्री पात्र भी व्यक्ति परक है । जैनेन्द्र ने मनोविश्लेषण का आश्रय लेकर एवम् अपने निजी दर्शन के आधार पर अपने नारी - पात्रों के अन्तर्मन का विश्लेषण करते समय सामाजिकता को कोई स्थान नहीं दिया है । उनके प्रायः सभी पात्र नितान्त वैयक्तिक हैं । "व्यक्तिवादी चेतना के परिप्रेक्ष्य में जहां उनके नारी पात्र अहंवादी व्यक्तित्व धारण किये हुए हैं वहीं प्रेमी के प्रति समर्पित होने की स्थिति में उनका अहं विगलित होता प्रतीत होता है, जिसे हम जैनेन्द्रीय विचारधारा को सार्थक परिणति के रूप में चिह्लित कर सकते हैं ।"

जैनेन्द्र जी के नारी - पात्र प्रेम तथा विवाह की द्वन्द्वात्मक चेतना से अभिभूत दृष्टिगत होते हैं । जैनेन्द्र युग में नारी स्वातंत्र्य तथा परिवर्तित जीवन - मूल्यों ने वैवाहिक आदर्शो में भी बदलाव शुरू कर दिया था । परिणाम स्वरूप जैनेन्द्र ने यौन नैतिकता के नवीन मूल्य स्थापित करने का प्रयत्न किया । उनके पात्रों में शारीरिक सम्बन्ध सामाजिकता एवम् नैतिकता

की सीमा से परे मानवता के सहज विकास की प्रवृत्ति के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं । यौनाचार की वजह से जैनेन्द्र जी के नारी पात्र प्रेमी के प्रति समर्पण तथा पति की सहनीयता से जूझते हुए "घर - बाहर" की संघर्षात्मक समस्या से जुड़ जाते हैं । स्त्री इस प्रेम को हृदय में संजोये रहती है एवं सामाजिक दोष को मानने में लेशमात्र हिचक नहीं करती । वैवाहिक सम्बन्धों के बीच तृतीय आहत पक्ष (पर) का प्रवेश नारी में अन्दर बाहर की समस्या उत्पन्न करता है । त्रिकोणात्मक प्रेम की अतल गहराइयों में नारी किसी भी पुरूष को लेकर न तो डूब पाती है तथा न पुरूष को प्राप्त कर पाती है । इसीलिये वह पति तथा प्रेमी के बीच अपनी आन्तरिक भावनाओं से जूझती रहती है । सहती रहती है, टूटती रहती है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों का प्रत्येक पति अपने आपको सौभाग्य शाली मानता है कि उसे ऐसी सुयोग्य तथा सुन्दर पत्नी प्राप्त हुई, परन्तु इसके विपरीत पत्नी के द्वन्द्व का मूल वही है कि जीवन साथी उसके मनोनुकूल नहीं । विवाह की सीमा - रेखा पर टिककर नजर फैलाती है तो जीवन उन्हें एक विराट शून्य, बेहद कटु बेहद दर्दनाक, पीड़ा, तड़प, कुंठा और घुटन से बंधझ हुआ सा प्रतीत होता है .... इस लोक के बाहर झांक पाती है तो उन्हें लगता है कि उस पार इतना कुछ है कि जिसे न तो एक नजर में देखा जा सकता है और चाहकर भी न एक बार में सहेजा जा सकता है ।[1] जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की समस्या मूलतः व्यक्तिमूलक चेतना की समस्या है क्योंकि इन नारियों में पत्नीत्व कम, प्रेयसीत्व प्रधान है । यही वजह है कि "इन उपन्यासों की समस्या सर्वप्रथम नारी होना है । वह किसी पुरूष से प्रेम करती है । प्रेम की परिणति क्या होगी - इस पर विचार नहीं करती लेकिन भावी घटनाएं उसे कभी प्रेयसी बनाकर ही छोड़ देती हैं तो कहीं पत्नी ।"[2] इसीलिए जैनेन्द्र जी के नारी पात्र विवाह तथा प्रेम के द्वन्द्व

1- गुर्ट शचीरानी : वैचारिकी : जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद, पृष्ठ : 215

2- डा0 विजय कुलश्रेष्ठ : जयवर्धन की पहचान : पृष्ठ : 56

के मध्य उलझ जाती है ।

जैनेन्द्र जी के नारी पात्रों की एक अन्य विवेचना है उनकी अहंवादिता । वे सामाजिक से ज्यादा वैयक्तिक हैं । उनमें एक निजी व्यक्तित्व का विकास है । वे अपने परिवार से, पति से अधिक स्वकीय हैं । सामाजिक जवाबदेही को वे मानती नहीं । उनके मन में दुहरा संघर्ष व्याप्त है । स्वच्छन्द वैयक्तिकता ने उनमें अहंता जाग्रत कर दी है । वे चाहती हैं "उन्हें कोई समझे, उनके रूप को परखे, उनके सौन्दर्य की कोई प्रशंसा करे और उनके प्रेम - पाश में आबद्ध हो जाए ।"[1] अहंता से प्रभावित होकर ही वे इस वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति के स्तर तक पहुंचती है । इसके मूल में काम वासना की मूल प्रवृत्ति सहायक होती है । इसीलिये "जैनेन्द्र की नारियों में विभिन्न ग्रन्थियों से परियोजित मानसिकता के साथ अहंता उनके निरंतर स्वपीड़न की स्थिति तक ले जाती है ।"[2]

वही अहंता उनके चरित्र को मानसिक भ्रान्तियों, प्रेम, स्वच्छंदता इत्यादि के वात्याचक्रों में विभक्त करती है तभी सची रानी गुर्ट ने जैनेन्द्र की नारियों की इस प्रवृत्ति पर मन्तव्य करते हुए कहा है कि "जैनेन्द्र के उपन्यास की नायिकाएं अपने दुराग्रह के कारण जीवन की विधि विरोधी परिस्थितियों में निम्नगामी और अप्रत्याशित स्तर पर उतर आती है । साथ ही बुर्जुआ अहं की मानसिकता और रूमानी अनास्था से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व के फलस्वरूप उनके सामाजिक सम्बन्ध विशेष और स्थित विशेष को निर्धारित करने वाला व्यक्तित्व खण्डित है ।"[3]

जैनेन्द्र जी की औपन्यासिक नायिकाएं पत्नीत्व के स्तर पर "स्व" की व्यर्थता तथा "पर" की प्रशस्तता चाहती है । वे पति तथा "पर पुरूष"

1- गुर्ट : शचीरानी : पृष्ठ - 20

2- डा0 विजय शंकर कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना : पृष्ठ - 142

3- गुर्ट : शचीरानी : वैचारिकी : पृष्ठ - 213

को लेकर प्रेम की त्रिकोणात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है । विवाह के बाद पति तथा प्रेमी के बीच छुरी बनकर जीवन व्यतीत करती है । इस प्रकार की स्थिति में वह सामाजिक रेखा में आबद्ध शादी के नितांड़ के लिये पति के प्रति अपने दायित्व का पूर्णरूपेण पालन करती है । दूसरी तरफ पत्नी रूप में भी प्रेमी के लिये समर्पित होना अन्यथा नहीं समझती क्योंकि वे सामाजिक से अधिक वैयक्तिक है । इस बारे में जैनेन्द्र जी स्त्रियों का अभिमत है - "हमारा काम यह है कि हम पुरूषों को सामने चलावें । जब वे पीठ की ओर भागना चाहे तब हम सामने हो जाती हैं । हमसे पार होकर वह जा नहीं सकेगा ।"[1] नारी की यह स्वेच्छाचरण अभिव्यक्ति सिर्फ स्त्री तक ही परिसीमित नहीं है । पुरूष भी उसे इसके लिये उकसाता है । "सुनीता" उपन्यास में श्रीकान्त पात्र द्वारा पत्नी को स्वीकृति देता है कि "सुनीता मुझे उसकी भीतर की प्रकृति की बात नहीं मालूम तो भी तुमसे कहता हूँ कि तुम इन दिनों के लिये अपने आपको उसकी इच्छा के नीचे छोड़ देना । यह समझना कि मैं नहीं हूँ । तुम हो और तुम्हारे लिए काम्य कर्म कोई नहीं है .... तुम उसकी वैरागी वृत्ति को किसी तरह काट सको, उसमें कहीं बांधकर बैठने की चाह जगा सको तो शुभ हो ।"[2] वह प्रवृत्ति जैनेन्द्र के दर्शन से प्रभावित है, जो यह स्वीकार कर चलता है कि यह प्रक्रिया वासना पर अहिंसात्मक ढंग से विजय की प्राप्ति है । या पुरूर्ष के मन की विरक्ति का यौनोपचार है ।

जैनेन्द्र जी के नारी पात्र वैयक्तिकर्ता के धरातल पर इतने गहरे पैठे हैं कि सामाजिकता कहीं भी उन्हें आबद्ध नहीं करती । उनके उपन्यासों में योनेच्छा के उद्दीप्त चित्र तो उपलब्ध हैं पर स्त्री के उस स्वरूप का सब जगह अभाव है, जो माता है, वह जननी है । "उसके सभी उपन्यासों में

1- जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ - 67

2- जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ - 168

3- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : पृष्ठ - 10

नारी मात्र नारी है, भोग्या है, पत्नी है, प्रेयसी है और भी कुछ है पर मातृत्वपूर्ण नारी उसमें कहीं भी नहीं है । शिशु की किलकारी से सूनी, अपने अन्तरंग के द्वन्द्व से प्रताड़ित और अपने अहं से प्रयंचित नारी ही सर्वत्र गतिमान है ।"[1] पुत्र की इच्छा का मोह तक उनमें नहीं है ।

जैनेन्द्र जी ने नारी जीवन के कुछ पक्षों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया है, परन्तु खुद परम्परागत संस्कारों से स्वच्छंद न रह सकने की वजह से वह स्त्री के प्राचीन आदर्शों का तिरस्कार कर पाने में असमर्थ हैं । उनकी औपन्यासिक नायिकाएं वस्तुतः समस्या तथा आदर्श के मध्य झुलती सी प्रतीत होती है । किसी पत्नी के मन में अपने पहले प्रेमी के लिये प्रेयसी भाव के प्रति उन्हें सहानुभूति है परन्तु वह पत्नी का वास्तविक आदर्श उसके पतिव्रत में देखने के इच्छुक हैं । जैनेन्द्र जी की धारणा है कि "मैं उस स्त्री की पूजा करूँगा जो कैसे भी व्यक्ति को पति रूप में पाती और उसे देवता मानकर कभी - कभी पतिव्रत - भाव से विमुख नहीं होती है । लेकिन कोई स्त्री ऐसा न कर सके तो सहसा दोष और दण्ड देने के लिये भी मैं आगे नहीं बैठूँगा ।[2] इससे जाहिर है कि एक तरफ वह पतिव्रत्य को स्त्री का आदर्श स्वीकार करते हैं तो दूसरी तरफ उस आदर्श परिव्यक्त नारी को सहानुभूति प्रदान कर जीने की प्रेरणा भी देते हैं ।

जैनेन्द्र जी ने नारी जीवन को विशाल फलक पर नहीं देखा । स्त्री जीवन के नवीन मूल्य, स्त्री की आर्थिक परतन्त्रता, नारी जाति का आधुनिक परिप्रेक्ष्य तथा जीवन द्रृष्टि इत्यादि के प्रति जैनेन्द्र जी प्रायः मौन ही रहे हैं । जिस प्रताड़ित द्वन्द्वमयी नारी का चित्रण उन्होने किया है उसका वे सिर्फ सहानुभूति ही दे सके हैं समस्या का हल नहीं । उनके स्त्री - पुरूष

1- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : पृष्ठ - 10

2- जैनेन्द्र : काम, प्रेम और परिवार : पृष्ठ - 144

गांधीवादी सत्याग्रही संस्कारों से प्रभावित दृष्टिगत होते हैं । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के नारी पात्रों का चरित्र पाठकों के सामने सम्यक् रूप से उभरकर सामने आया है ।

जैनेन्द्र के कथासाहित्य में चित्रित समाज

सामाजिक परिपार्श्व :-

राजकीय परिवर्तन की अपेक्षा सामाजिक विवर्तन की प्रक्रिया अधिकांशतः मन्थर गति से हुआ करती है । किन्तु दो विश्व - समर की वजह से उसमें भी तीव्र से बदलाव हुए हैं । विज्ञान से तीव्र से होने वाले विकास ने पहले से प्रचलित परम्पराओं और मर्यादाओं के आगे प्रश्न - चिन्ह लगाये हैं । पाश्चात्य में इस क्षेत्र में बदलाव अधिक तीव्र गति से हुए हैं । स्त्रियों की स्थिति में जबरदस्त विकास हुआ है । नैतिकता का विघटन मानव मूल्यों का ह्रास, आस्था का खण्डित रूप, अहम् फल्कार आपसी विद्वेष, रंग - भेद, जाति व धर्म भेद इत्यादि रूप मनुष्य के सामाजिक मूल्यों में स्थापित हुए हैं । यहां तक कि विवाह संस्था में भी बेहद तीखे बदलाव हुए हैं । जैनेन्द्र जी अनेक बार यूरोप गये हैं । वहां के बदलाव तथा नवीन स्थापित अनास्थावादी मूल्यों को परखा तथा अनुभव किया है । नवीन जागृति के पश्चात् यहां विधवा विवाह की शुरूआत हुई तथा बाल - विवाह पर रोक लगाई गई । वैवाहिक समस्याएं, बलात्कार, भ्रूण हत्यायें, व्यभिचार हत्यादि युग संदर्भ में सामने आने लगी । स्त्रियों में शिक्षा का प्रसाद बढ़ा । वे नौकरी भी करने लगीं । प्रेम विवाह भी होने लगे । होटल सभ्यता ने परम्परागत सामाजिक मूल्यों को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । विसंगतियों और विज्ञान सम्भत विद्रपताओं ने समाज को दिशाविहीन सा कर दिया । प्राचीन फेकने के लिये रह गया तथा नवीन के गीत गाने प्रारम्भ हो गये । आत्मिक तथा सौहार्द पूर्ण व्यवहार औपचारिकता पर आकर ठहर गया । समाजवाद, साम्यवाद अथवा राष्ट्रवाद की नीति समाज नीति बनने लगी ।

जैनेन्द्र जी ने युग की सामाजिक समस्याओं के निराकरण पर प्रहारात्मक रवैया अपनाया । समाज को स्वस्थ्य रूप में पुनर्स्थापित करने हेतु

आत्मपरक अनुभूतियों के माध्यम से निराकरण प्रस्तुत किये । समाज की समस्याओं में गहरी अभिरूचि दिखाई । जैनेन्द्र जी भारतीय परम्परा के स्वस्थ्य रूप को लेकर चलने वाले एक अर्थ में व्यक्तिवादी साहित्यकार है । युग के सांस्कृतिक सामाजिक विश्वासों को स्वस्थता एवम् व्यावहारिकता देने के लिये हिन्दी गद्य साहित्य को जैनेन्द्र ने प्रथम बार व्यक्ति के माध्यम से अध्ययन करने का प्रयत्न किया और व्यक्ति का संघर्ष समाज के प्रति सचेत किया, इन्होने अपने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है और उनका चित्रण इस प्रकार किया है कि हमारी सहानुभूति उनसे और उनकी परिस्थितियों से हो जाती है । हम समाज की कृतिम विषमताओं के प्रति जो व्यक्ति के स्वस्थ्य चरित्र निर्माण में बाधक है, घृणा करने लग जाते हैं ।[1]

निबन्ध के माध्यम से जैनेन्द्र ने समाज की रूढ़ और अस्वस्थ्य परम्पराओं पर सीधे और तीखे प्रहार किये जिनके परिणाम स्वरूप "धर्मयुग" के सम्पादक को उनको लिखना पड़ा कि "कुछ खण्डों में आपने इतने विद्रोही (सामाजिक मान्यताओं) भावों का प्रतिपादन कर दिया है कि सब मान्यताओं के प्रति श्रद्धालु व्यक्तियों के मन में तीव्र घृणा जाग गई । हमारे पत्र के पाठकों में अधिकांश व्यक्ति परम्परा प्रेमी हैं । उन्हें आपकी सर्वथा मौलिक स्थापनाएं अच्छी नहीं लगती । अतः प्रार्थना यही है कि इतस्ततः को कुछ काल के लिये स्थगित कर दें । इन कालमों में जो भी जाएगा हमारे परम्परा प्रिय पाठकों की शासयात्मक दृष्टि का शिकार हो जायेगा ।"[2] जैनेन्द्र जी परम्परा और प्रगति को परस्पर विरोधी नहीं स्वीकार करते हैं । जीवन की परम्पराएं लगातार निर्वाध्य गति से समय की धारा के साथ चलती रहती हैं ।

1- हिन्दी गद्य का वैभवकाल : डा0 माधुरी दुबे : पृष्ठ - 206

2- इतस्ततः : जेनेन्द्र : पृष्ठ - 11

(क) उच्चवर्गीय समाज :-

उच्चवर्गीय समाज के अन्तर्गत सम्भ्रान्त परिवार के लोग आते हैं । ये लोग समृद्धि शाली व्यक्ति होते हैं । इनका रहन - सहन, खान - पान पहनावा उच्च कोटि का होता है । समाज में मर्यादित जीवन यापन करते हैं । समाज के विशिष्ट कार्यो में इनका विशेष हाथ होता है । सुविधा सम्पन्न होने की वजह से इनके कार्य में सफलता हासिल करने में कोई कठिनाई नहीं होती है । ये कुलीन तथा शिक्षित होते हैं ।

जेनेन्द्र जी के उपन्यासों में मध्यम वर्ग की अपेक्षा उच्चवर्ग के पात्र कम हैं । इनके उपन्यासों में तो कुछ ऐसे पात्र हैं जिन्हें मध्यम वर्गीय तथा उच्चवर्गीय दोनों में रखा जा सकता है । सुखदा इसका एक सटीक उदाहरण है ।

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "त्यागपत्र" नामक उपन्यास में संभ्रान्त परिवार के लोग अपने बच्चों को शिक्षा - दीक्षा पर विशेष ध्यान देते हैं । अच्छे - अच्छे स्कूलों में दाखिला करवाना तथा घर पर ट्यूटर लगाने की विशेष सुविधा करते हैं । एक अंश देखने योग्य है । "उन्होने कहा - स्कूल में तो जाते ही हैं । पर वहां कुछ पढ़ाई होती है । और यहां ऊधम इतना मचाते हैं कि राम राम । इससे एक तो मास्टरनी लगा ली है, एक मास्टर आता है । तीस रूपया माहवार । मैं अलग से पढ़ाई पर खर्च करती हूँ ।"[1]

कल्याणी नामक उपन्यास में कल्याणी एक डाक्टर है । वह एक आरोग्य - भवन का निर्माण करती है । जिसमें गरीब रोगियों के लिए बिना फीस इलाज करने की सुविधा प्रदत्त की गई है । जिसकी वजह से उन्हें समाज में काफी इज्जत तथा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है । एक अंश उद्धरित है - "जिनके पास इलाज के लिये पैसा है, उनका सवाल नहीं है ।

1- जैनेन्द्र : त्यागपत्र : पृष्ठ - 94

पैसा जिनके पास नहीं है, सवाल उन्ही का है । और मेरे देखने में आया है, पैसे वालों में बहुतों का रोग ही पैसा है । बड़ी फीस के एवज में ही उन्हें आराम पहुँचाया जा सकता है । पैसा उनका अधिक खर्च हो, इसी में उन्हें इलाज की कीमत मालूम होती है । इस तरह के पैसे के रोगियों की सेवा से एकदम हाथ खींच लेने का मेरा साहस नहीं है । पैसा कम प्रलोभन नहीं है । (तालियां) आप लोग जानते हैं । बिना पैसे हम सभ्यतापूर्वक उठ - बैठ नहीं सकते । (तालियां) इसलिये एक घण्टे के लिये इस जगह फीस वाले रोगियों के लिये भी मैं अवश्य सुलभ रहूंगी । सुलभ का मतलब आप जानते ही हैं, दुर्लभ (तालियां) अधिक सुलभता पैसे के विरूद्ध हैं । (तालियां) पर इस आमदनी का सब रूपया इस आरोग्य - भवन के काम आएगा । ....।[1]

उच्च वर्ग के लोग पैसे को अधिक महत्व देते हैं । पैसे से कीर्ति प्राप्त करना चाहते हैं तथा समाज में आदर, पैसे प्राप्त करने के लिये बड़े से बड़े खतरे उठा सकते हैं । "कल्याणी" उपन्यास का एक उद्धरण लिखित है - "मैने कहा - सुना है कि वह कहीं दूर जाने वाले हैं ? बोली - हां उनका मन छोटे काम से नहीं भरता है । वह कोई बड़ा काम कर उठाना चाहते हैं । जिसमें रूपया हो तो बहुत हो, यश हो तो बहुत हो । खतरा भी फिर चाहे बहुत ही हो । .... लेकिन मुझे आप नहीं रोक लेंगे क्या जाने नहीं देगें ? क्या जाने नहीं देंगे । देखिए कितना वक्त हो गया है ।

अच्छा, मैं चली ।

मैने कहा - मेरी कामना है कि डाक्टर की साहसिकता सफल हो ।[2]

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 37-38

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 44

उच्च वर्ग के लोग सामाजिक कार्य में अधिक अभिरूचि लेते दिखाई पड़ते हैं । अनेक प्रकार के समारोहों तथा आन्दोलनों में भाग लेते हैं । कल्याणार्थ हेतु अनेक प्रकार के अच्छे कार्य करते हैं । "अजबारो में उनका नाम अब अक्सर पढ़ने को मिल जाया करता था । उनके आरोग्य - भवन ने नगर के विशिष्ट लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा था । अन्य महिलोपयोगी फार्मो में साहित्यिक समारोहों में वह प्रमुख भाग लेने लगी थी ।[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में उच्चवर्गीय लोगों के यथार्थ का पर्दाफाश हुआ है । बाहर से जो कुछ है और अन्दर से कुछ और ही । बाहर से तो कथनी तथा करनी दोनों में ही अन्तर पाया जाता है । चेहरे पर एक ऐसे नकाबपोश पहने हुए हैं कि जिसके माध्यम से दुनियां को एक आदर्शवादी के रूप में पहचाने जायें । "कल्याणी" उपन्यास का एक अंश दृष्टव्य है - "सच पूछिए तो मुझे उनका उल्लास सुखद नहीं हुआ । जेसे वह भीतर कुछ और है । एक चेहरा है जिसे ओढ़ लेने से काम बनने में मदद मिलती है । एक रंग जो वास्तविकता को अन्यथा दिखा सके । चमक ऊपरी है, भीतर जाने क्या है । लेकिन फिर भी वह उल्लास इतना स्वाभाविक और अनायास मालूम होता था कि मन यह भी न मानना चाहता था कि वह यथार्थ नहीं है । आखिर फिर यथार्थता क्या है ? देखता हूँ कि खद्दर की धोती अब नहीं है, हाथों में सोने की चूड़ियां बढ़ गई हैं और ईयरिंग बहुत कीमती मेज के कानों में दीखते हैं । क्या यह यथार्थ नहीं है ?[2]

अभिजात्य वर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता का विशेष प्रभाव पड़ा हुआ है - "राय साहब बोले - एक एट होम है । ...... के प्रीमियर के सम्मान में आप जरूर आइयेगा । बल्कि वक्त से कुछ पहले आइए । मेरी कोठी

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 54

2- वही : पृष्ठ - 57

के बराबर ही कोठी है । जी हां, नई दिल्ली ।[1] डाक्टर अन्दर बैठ रहे थे, कि सबकी ओर से राय साहब ने मुझसे क्षमा मांगते हुए कहा - माफ कीजिएगा मैने शायद आपकी सेर में हर्ज किया ।[2]

व्यतीत नामक उपन्यास में सम्भ्रान्त परिवार के अन्तर्गत अनिता, मि0 पुरी तथा चन्द्री आते हैं ये लोग वैभवशाली जीवन व्यतीत करते हैं । समृद्धता तथा सम्पन्नता इनके पीछे - पीछे दौड़ती है । इनका रहन - सहन बड़ा सुखमय दिखाई पड़ता है । ये कहीं - कहीं धैर्यशाली भी दिखाई पड़ते हैं । प्रशंसा करनी होगी चन्द्री की । वह टूटी नहीं थी । फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेन्ट में अकेली बैठी दिखाई दी ।[3]

अभिजात वर्गीय लोग सुखमय, संस्कृति में पढ़े हुये शालीन, गम्भीर तथा बुद्धिमान होते हैं । पैसों का सदुपयोग करना जानते हैं । इनके पास जो आभूषण तथा पैसे हैं, उन्हें बड़े ही सुनियोजित ढंग से सुरक्षित रखते हैं । "यों भी वह निश्चिन्त थीं और चोर की बुद्धि पर हंसती थीं । कहती, "समझा होगा बड़े आदमी की बेटी है, माल मिलेगा । इन्साफ यह है कि मेहनत का कुछ मिलना चाहिये । चोर विचारे को क्या मिला होगा । जेवर लाकर में थे, रूपये बैंक में । हाथ पड़ा होगा कुछ बर्तन कपड़े ।[4]

उच्चवर्गीय लोग रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़कर एक नवीन परम्परा की शुरूआत करना चाहते हैं । नये समाज की स्थापना के लिये एक क्लब की शुरूआत करते हैं । यह विशिष्ट समाज है जिसमें कुलीन सम्भ्रान्त तथा शिक्षित लोग आते हैं । "इलाहाबाद में एक क्लब शुरू हुआ तो रूढ़िताओं से अपने को मुक्त मानता था । है तो वह अत्यन्त विशिष्ट समाज़ है । वह

1- वही : पृष्ठ - 156

2- वही : पृष्ठ - 159

3- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ - 86

4- वही : पृष्ठ - 115

रेखाओं से पार के प्रयोग कर सकता है । इस प्रकार अत्यन्त सम्भ्रान्त, कुलीन और परम शिक्षित ही क्लब के सदस्य हो पाते थे ।[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में उच्च वर्गीय लोगों में धन की लोलुपता स्वार्थपरता अहंकार, दम्भ वाह्य आडम्बर, आत्म प्रवंचना से ग्रसित पाये जाते हैं ।

उच्च वर्ग अर्थ सम्पन्न हैं । इसके बावजूद भी यही वर्ग सबसे अधिक अर्थग्रस्त दिखाई देता है । भोगवादिता का प्रभाव इसी वर्ग में अधिक देखा जाता है । भारतीय संस्कृति की अपेक्षा पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण इस वर्ग की विशेषता है ।

(ख) मध्य वर्ग :-

जैनेन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्गीय पात्रों की प्रधानता है । "परख" की कट्टो, सत्यधन, बिहारी, "सुनीता" के श्रीकान्त, सुनीता, हरिप्रसन्न, त्यागपत्र की मृणाल, "सुखदा" के कान्त, लाल, सुखदा, "विवर्त" के जितेन "व्यतीत" के जयन्त और "अनन्तर" की अपरा मध्यवर्ग के पात्र हैं, जिनके माध्यम से मध्यवर्ग की सामाजिक, वैयक्तिक राजनैतिक, सांस्कृतिक एवम् आर्थिक चेतना अभिव्यक्ति हुई है । इन उपन्यासों में मध्यवर्ग के पुरूष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों को प्रमुखता प्राप्त हुई है । आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में जैनेन्द्र में नागरिक मध्य वर्ग की परिस्थितियों और उनके जीवन के कुछ चुने हुए पक्ष निरूपित हैं ।[2] डा० रातरतन भटनागर ने लिखा है - जैनेन्द्र के उपन्यास मध्यवर्गीय संस्कृति के अनिश्चय, पलायन मनोवृत्ति, आदर्शवाद के आवरण में यथार्थ जीवन के वैषम्य को छिपाने की छलना, बौद्धिकता की विवशता और उसकी हार के सूचक हैं । यदि उनकी रचनाएं विकृत हैं या अस्पष्ट हैं

1- जैनेन्द्र : पृष्ठ - 187

2- नन्ददुलारे बाजपेई : राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध, पृष्ठ - 51

तो उनके पीछे मध्यवर्गीय संस्कृति स्थित है । उसमें मिथ्या या विकृति को जान - बूझकर नहीं उभारा गया है ।[1]

जैनेन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्ग की आर्थिक समस्याओं का विशद विवेचन प्राप्त होता है । "परख", "सुनीता", "त्यागपत्र", "कल्याणी", "सुखदा", "विवर्त", "व्यतीत", "मुक्तिबोध", "अनन्तर" में इसे स्पष्ट देखा जा सकता है । "सुनीता" में हरिप्रसन्न पैसे को घटिया मानता है - "पैसा चीज खराब है, उसका लेन देन परस्पर मन में मुटाव पैदा कर देता है ।" जीवन के मूल्य पैसे के साथ परिवर्तित होते रहते हैं । जीवन में जितना भी आनन्द और सुख है उसका सारा विधान पैसे से बना है । जयन्त (व्यतीत) कहता है - "पैसा है इससे आनन्द भी है । मान लेता हूँ, आनन्द का विधान आर्थिक है, जीवन का विधान और समाधान आर्थिक है । पैसा चल रहा है इसलिये जीवन चल रहा है ।[2]

जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज की नवीन चेतना हुई है । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में मध्यवर्ग की दुर्बलताओं एवं विवशताओं की अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है । जैनेन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्ग के नारी एवं पुरूष की व्यक्तिगत दुर्बलताएं विस्तार से वर्णित हैं । आधुनिक मध्यवर्ग राजनीतिक प्रपंचों, सामाजिक द्वन्द्वों एवम् आर्थिक विभीषिकाओं से उलझा हुआ है । व्यक्तिगत चेतना एवं सामाजिक नैराश्य उलझती सी मालूम पड़ रही है । असन्तोष, अतृप्ति एवं अवसाद के मध्य मध्यवर्ग जी रहा है । जैनेन्द्र के उपन्यासों में यदि एक तरफ मध्यवर्ग की कमजोरियां है तो दूसरी तरफ मध्यवर्ग की प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा के भी दर्शन होने पर एक सामाजिक दुर्व्यवस्था एवम् अनैतिकता की परिस्थिति आ सकती है जिसकी परिणति

1- सत्यप्रकाश मिलिन्द्र : जैनेन्द्र - व्यक्तित्व और कृतित्व (द्रष्टव्य - उपन्यासकार जैनेन्द्र पुर्नमूल्यांकन ।

2- डा0 रामरतन, जैनेन्द्र कुमार, सुनीता : पृष्ठ - 83

व्यक्तिगत आत्मपीड़न एवम् कष्ट सहने में होता है । अपने उपन्यासों के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए जैनेन्द्र कुमार ने स्वयं लिखा है - मेरे ख्याल में उपन्यास में न व्यक्ति चाहिए न टाइप । न रीति चाहिए न राजनीति । न सुधार, न स्वराज । उससे तो प्रेम की सघन व्यथा की मांग ही हो सकती है और वह प्रेम इस या उसमें नहीं बल्कि इस उसकी परस्परता में ही है ।[1] जैनेन्द्र ने मध्यवर्ग के पात्रों के हृदय की विभिन्न वृत्तियों का पारस्परिक, संघर्ष दमन एवम् उसकी प्रतिक्रिया को चित्रित करने में सफल प्रयास किया है । मध्यवर्ग की राजनैतिक, आथिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक चेतना की भी अभिव्यक्ति किया है ।

नियतिवादी दर्शन नास्तिकतावादी विचारधारा का पोषक है जो ईश्वर और उसकी विधानात्मक शक्ति में विश्वास करता है, वह यह स्वीकार करता है कि जीवन में हर कार्य उसी परमसत्ता की संचालिका शक्ति के इंगित भर होता है एवं उसके नियंत्रण के बाहर कोई नहीं है । संसार को बड़ी से बड़ी शक्ति को भी उसके समक्ष लाचार तथा सिर झुकाना पड़ता है । जेनेन्द्र जी अपने जीवन में "नियतिवाद" के विश्वासी रहे इस कथ्य का संकेत उनके उपन्यास देते हैं । जैनेन्द्र जी के मध्यवर्गीय पात्र नियतिवाद हैं । स्थिति को उसके यथातथ्य के रूप में मान लेते हैं ।

"त्यागपत्र" नामक उपन्यास की नायिका मृणाल को तब उसके पति ने खुद यह कहकर परित्याग कर दिया कि वह उसकी पत्नी नहीं है, तब वह सच्ची पतिव्रता नारी के वास्ते उस पर अपना भार नहीं सौंपती है । "परख" नामक उपन्यास की कट्टो अनहोनी में विश्वास करती है । "अनहोनी घट नहीं सकती, होनी टल नहीं सकती । जो हो गया है, हो गया । उसको मिटाना अब बस के बाहर की बात है ।[2] श्रीकान्त के पत्र पर सोचती हुई

1- जैनेन्द्र : साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृष्ठ - 188

2- जैनेन्द्र : परख : पृष्ठ - 103

सुनीता भी यही कहती है - मुझे स्वयं कुछ नहीं कहना है नियति के बहाव में बहते ही चलना है, धर्म - अधर्म, बिसार देना है ।[1] सुखदा नामक उपन्यास की सुखदा भी "विधि" के दुलेख[2] को अपनी नेत्रों के समक्ष देखती है तथा स्वीकार करती है कि "जीवन के सम्बन्ध में हमारा समस्त निर्णय समुद्र के तट पर कौड़ियों से खेलने वाले बालकों के निर्णय की भांति है"[3] विवर्त नामक उपन्यास की मोहिनी भी जितेन को ढांढस बंधाती हुई कहती है - घबराओं नहीं । जो हुआ हो गया । होनहार कब टला है ।[4]

"व्यतीत" नामक उपन्यास का नायक जयन्त भी भाग्य के हाथों लाचार है - "एकाएक जगह छोड़ने का निश्चय कैसे बन गया । क्यों बनकर डिग न सका, आज भी मैं जानता नहीं हूँ । सिवा इसके कि अभाग्य साथ चलता है, और क्या कहूँ ।[5] "जयवर्धन" नामक उपन्यास के पात्र भी नियति का अस्तित्व मानते हैं । वाचार्थ के शब्दों में - "दण्ड भी ईश्वर का है, जयवर्द्धन बेचारे का नहीं है, इसी से मैं उसे अपनाये हुए हूँ । .... ईश्वर से लड़ाई चल नहीं सकती, भई ।[6] अनामस्वामी नामक उपन्यास में स्वामी कहते हैं - "हम सब यहां ईश्वर के हाथ में मात्र साधन बनने की साधना में जमा हुए हैं । इसलिये हमें पवित्र से और पवित्र बनना है । दूसरा कुछ कर्तव्य हमारे लिये नहीं है । शेष सब प्रयोजन हमने अपने से दूर किए हैं ।[7]

1- जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ - 144
2- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ - 91
3- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ - 18
4- जैनेन्द्र : विवर्त : पृष्ठ - 29
5- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ - 40
6- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ - 34
7- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 21

इस तरह जैनेन्द्र जी के माध्यम पात्रों में संघर्ष करने का बल नहीं है । बाहरी संघर्ष की वजह होते हुए भी वे उसके प्रति आंख बन्द कर लेते हैं, तथा निष्क्रिय हो जाते हैं । डा० रणवीर रांगा ने कहा है - "जैनेन्द्र जी के पात्र मांसल कम और मानसिक अधिक हैं । भाग्य से होड़ लेकर अपना पुरूषार्थ दिखाने की लगन उसमें नहीं है, उल्टे, वे तो नियतिवादी हैं ।[1]

जैनेन्द्र जी के मध्यम वर्गीय पात्र समाज में रखते हुए भी उससे पटे हुए से अलग दिखाई पड़ते हैं । समाज के नाम पर उनका सम्बन्ध पड़ता है । पति अथवा पत्नी के किसी दोस्त अथवा प्रेमी से । जैनेन्द्र जी की नायिकाओं के प्रेमी तथा पति एक न होकर अलग - अलग दो पुरूष होते हैं । उनका जिनसे प्रेम हो जाता है, उनसे विवाह नहीं हो पाता तथा जिनसे शादी हो जाती है उनके प्रति वे सर्मपित नहीं हो पाती हैं ।

वह उसका मार्ग प्रशस्त करते हुए कहता है - "अगर मैं सौ फीसदी तुम्हारा हूँ , तो एक फीसदी भी मुझे अतिरिक्त गिनती में न लोगी ।"[2] श्रीकान्त सुनीता को पत्र में लिखता है - "सुनीता, तुम मुझे जानती हो । जानती हो कि मैं तमको गलत नहीं समझ सकता । तुम तुमसे मैं चाहता हूँ .... मेंरे ख्याल को अपने से तुम बिल्कुल दूर कर देना ।"[3] "सुखदा" नामक उपन्यास में सुखदा के पति का कथन है - 'मेरी अपेक्षा तुम्हें तनिक भी इधर से उधर करने की नहीं है । तुमको न रहने देकर मैं क्या पाऊँगा । तुमको पाऊँगा तो तभी जब तुम तुम हो ।"[4] मैं हूँ, यही तुम्हारी दिक्कत है, है न सुखदा । आज तुमसे कहता हूँ कि मुझे अपने में मान लो । इस तरह की बातों में मेरा अलग से विचार मत किया करो ।"[5]

1- डा० रणवीर सांगा : हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ०-360
2- जैनेन्द्र : विवर्त : पृष्ठ - 73
3- जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ - 135
4- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ - 52
5- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ - 53

जैनेन्द्र जी के मध्यम वर्ग की एक विशेषता अहंभाव का दमन है । जैनेन्द्र जी की यह धारणा है कि मनुष्य को अपने को संसार में एक बार करना है कि तथा संसार को अपने में प्रतिफलित देखना चाहता है लेकिन अहंभाव इस लक्ष्य की सिद्धि में बाधा डालता है । यह अहंकार आत्मपीड़ा की साधना के माध्यम से ही विगलित हो जाता है । मनुष्य के जीवन में उसके सुख - दुख की यह अहमन्यता ही है तथा उसका विचार ईश्वर के प्रति समर्पण भाव में है । उनकी धारणा है कि अहंकार को नष्ट नहीं किया जाता, उसको गलाया या धुलाया ही जाता है तथा यह आत्म - व्यथा द्वारा ही सम्भव है । इस प्रक्रिया को अहंकार का उन्नायन भी कहा जाता है । इस साधना में अहंकार नष्ट नहीं हो पाता, उसकी तुष्टि का माध्यम परिवर्तित हो जाता है । "सुनीता" नामक उपन्यास में श्रीकान्त समर्पण वृत्ति और निरहा का प्रतीक है - सुनीता का चरित्र इसका क्रियात्मक रूप है । "त्यागपत्र" नामक उपन्यास की मृणाल इसी समर्पण भाव की साक्षात् प्रतिमा है । सत्यधन अपने अहं भाव और आत्म - प्रवंचना से ग्रस्त होने की वजह से ही दुख पाता है । सुखदा अहं - भाव की वजह से दुख उठाती है ।

जैनेन्द्र जी के मध्यम वर्ग में पीड़ा सम्बन्धी नवीन दर्शन पात्र प्राप्त होता है । जैनेन्द्र जी पीड़ा को मन तत्व स्वीकार करते हैं ।, मानव चलता है, चलता जाता है और बंद - बंद दर्द इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है । वही सार है । वही जमा हुआ दर्द मानव की मान्स वाणी है, उसके प्रकाश में मानव का गति पथ उज्जवल होगा । जैनेन्द्र जी की रचनाओं से यह अभिव्यक्त होता है कि जिस पीड़ा को उन्होने इतना महत्व दिया है, वह व्यक्तिगत है या सामाजिक । दूसरा यह पीड़ा का दर्शन कहीं - कहीं उनकी पलायनवादी मनोवृत्ति को प्रकट करता है । मृणाल अपने दु:ख को लेकर जो जीवित है, दर्द के प्रति उनका लगाव निश्चय ही स्वस्थहीन तथा अव्यावहारिक है ।

जैनेन्द्र जी के मध्यवर्गीय समाज में अहिंसा सम्बन्धी नवीन दर्शन प्राप्त होते हैं । अहिंसा का सामान्य अर्थ है जीव - हत्या का निषेध, किन्तु गांधी जी ने उसे नवीन अर्थ प्रदान किया । उनकी दृष्टि में अहिंसा का अर्थ है, दूसरों के लिये खुद पीड़ा सता तथा अपने अहं को घुलाना और दृष्टप्रवृत्ति वाले, निर्दयी पीड़क के मन में दया पैदा करना । यह प्रेमजन्य आत्म - पीड़न का सबसे अधिक तीव्र रूप है, अतः उसी की अभिव्यक्ति उनकी कृतियों में प्रधान हैं । जैनेन्द्र जी पाठकों के हृदय में आत्मपीड़न की प्रेरणा देकर, उनमें प्रेम पैदा कर जीवन की समग्रता को महसूस कराने का प्रयास करते हैं । निर्जन जंगल में रात के समय में हरिप्रसन्न के समक्ष सुनीता का निर्वस्त्र हो जाना, गांधी की अहिंसा का साहित्यिक प्रतिपादन ही है । वह हरिप्रसन्न की काम - हिंसा के प्रति अपना समग्र शरीर समर्पित कर देना चाहती है तथा उसकी यह अहिंसा वृत्ति हरिप्रसन्न की हिंसा भावना पर सतह पाने पर कमजोर नहीं पड़ती है । त्यागपत्र नामक उपन्यास की मृणाल के चरित्र में भी जैनेन्द्र के आत्म - व्यथा या आत्म - पीड़न का सिद्धान्त प्रतिफलित हुआ है तथा प्रमोद भी अपने त्यागपत्र के माध्यम से इसी आदर्श में अपनी आस्था अभिव्यक्त करता है । मृणाल जीवन में पग - पग पर मिलने वाले अनाचार तथा अन्याय के प्रति हिंसात्मक प्रक्रिया का आश्रय न ले । तप तथा साधना के मार्ग का सहारा लेती है । मृणाल का कोयले वाले के प्रति समर्पण, उसकी काम - वृत्ति का द्योतक न होकर, उसके अहिंसा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यास मध्यवर्गीय संस्कृति के अनिश्चय, पलायन, मनोवृत्ति, आदर्शवाद के आवरण में यथार्थ जीवन के वैषम्य को छिपाने की छलना, बौद्धिकता की विवशता और उसकी हार के सूचक हैं ।[1] डा० नन्द

1- सत्य प्रकाश मिलिन्द : जैनेन्द्र व्यक्ति और कृतित्व : पृष्ठ - 175

दुलारे बाजपेयी ने लिखा है - "मध्यवर्गीय परिवारों की जीवनचर्या का विशेषकर उसके घरेलू अंश को जैनेन्द्र जी ने बड़ी निपुणता के साथ अंकित किया है । जो समस्याएं उन्होने उठाई हैं, वे भले ही समाधान कारक या महत्वपूर्ण या वास्तविक न हों, फिर भी वे असम्भव स्थितियां नहीं हैं । पाठकों को उनके द्वारा उठाये गये प्रश्नों में एक कौतूहल एक जिज्ञासा अवश्य होती है ।"[1]

(ग) निम्न वर्ग :-

भारतीय समाज को आर्थिक आधार पर तीन वर्गो में विभाजित किया गया है । (1) उच्च वर्ग, (2) मध्यम वर्ग, (3) निम्न वर्ग । उच्च वर्ग के अन्तर्गत सम्भ्रान्त परिवार के लोग आते हैं । मध्यम वर्ग के अन्तर्गत सामान्य कोटि के लोग आते हैं तथा निम्न वर्ग के अन्तर्गत गरीब लोग आते हैं । निम्न वर्ग के लोग समाज में तिरस्कृत माने जाते हैं । इनका सामाजिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं होता है । अधिकांशतः इनका जीवन संकुचित होता है । ये जीवन की एक ही परिधि में बंधे रहते हैं । लेकिन कहीं - कहीं पर इनकी अहं भूमिका पाई जाती है । ये बहुत कुछ सोंच समझकर भी कुछ नहीं कर पाते हैं । ये आर्थिक रूप से विपन्न होते हैं ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में निम्न वर्ग के पात्र बहुम कम आये हैं । इनकी कोई विशेष अहं भूमिका नहीं है । इनके अन्दर स्वाभिमान नाम की चीज नहीं है । ये अपनी परिस्थितियों से जकड़े हुए हैं । ये जिस जगह रहते हैं वहां सफाई नाम की चीज नहीं हैं । भले व्यक्ति वहां जाने से इतराते हैं । जैनेन्द्र के त्यागपत्र नामक उपन्यास में एक स्थल दृष्टव्य है - "शहर के उस मुहल्ले में जाते हुए मन मेरा दबा आता था । कहां बुआ, कहां इस जगह की गन्दगी । वहां नीचे दर्जे के लोग रहते थे । भीतर गली में गहरे

1- डा0 नन्ददुलारे बाजपेयी : "नया साहित्य : नये प्रश्न : पृष्ठ - 266

जाकर बुआ की कोठरी थी । बनिया बाहर एक दुकान लेकर वहां दिन में कोयले का व्यवसाय करता था ।[1]

निम्न वर्ग के लोग सडांध जीवन व्यतीत करते हैं । इनके पास ठीक से न तो पहनने के लिये कपड़ा होता है, न तो रहने के लिये ठीक से मकान । दैनिक वस्तु की चीजों को देखने लगता है कि ये लोग आर्थिक अभाव में किसी तरह से जीवन व्यक्त कर रहे हैं "त्यागपत्र" नामक उपन्यास में एक उद्धरण देखने योग्य है - "भी बुआ ही, लेकिन उनका यह क्या रूप था ? देख दुबली थी, मुख पीला था । गर्भवती थी । एक धोती में अपनी सब देह ढांके वर्ग से बड़ी न होगी । बाहर थोड़ी खुली जगह थी, जहां धोती अंगोछे सूख रहे थे । कमरे में एक ओर कपड़े छिने थे । उनके पास ही दो - एक बक्स़ थे । उनके ऊपर बांस टांग कर कुछ कान के कपड़े लटका दिये थे । बुआ को पीठ की तरफ दो - एक टीन के आधे कनस्तर, दो - चार हड़ियां और कुछ मिट्टी के सकोरे और टीन के डिब्बे थे । वहां पास में कुछ पीतल एल्यूमिनियम के बर्तन रखे थे और एक टीन की बाल्टी और पानी का घड़ा भरा रखा था । एक कोने में कोयले की बोरी आधी झुकी हुई खड़ी थी ।[2]

जैनेन्द्र के द्वारा लिखी गयी कल्याणी नामक उपन्यास में निम्न वर्ग के पात्र न के बराबर हैं । एकांक स्थल पर दिखाई पड़ते हैं । इनका समाज में कोई महत्व नहीं है, इन्हें लोग हेम दृष्टि से देखते हैं । ये बड़े लोगों का आदर बहुत करना जानते हैं । कल्याणी में एक उदाहरण दृष्टव्य है ।

"उन्होने बेहरा को बुलाकर कहा कि चाय न लावें । सुनकर भी वह खड़ा रहा तो झल्लाकर कहा - सुन नहीं लिया ? नहीं लेंगे कुछ नहीं लेंगे, कुछ भी नहीं लेंगे । बस, अब जाओ बेहरा चला गया तो वह मुझे कहने लगी यह आदमी बेवकूफ है । उसे जानना चाहिए कि आप कुछ नहीं लिया

1- जैनेन्द्र : त्यागपत्र

2- जैनेन्द्र : त्यागपत्र

करते । फिर वह क्यों आस रखता है ?"[1]

"सुखदा" नामक उपन्यास में गंगासिंह नामक एक व्यक्ति है जो सुखदा के यहां नौकर है । वह क्रान्तिकारी है । जिसकी प्रेरणा से सुखदा भी राजनीतिक जीवन में पदार्पण करती है ।

व्यतीत नामक उपन्यास में कलुसा उसकी लड़की बुधिया निम्न वर्ग के पात्र हैं । निम्नवर्गीय लोग उच्चवर्गीय लोगों को सम्मान तथा आदर की दृष्टि से देखते हैं एक उदाहरण दृष्टव्य है - "मोटर में आने - जाने से आस पास के लोगों की निगाह में मैं आ चला था । उतरकर गली में पहुँचता हूँ । कि कोलाहल सुन पड़ा । भीड़ थी और पास पड़ोस सारा उसमें झुक आया मालूम होता था । मुझे देखते ही भीड़ के किसी ने कहा "लो बाबू जी आ गये । बाबू आप ही बताइये ....।[2]

कलुआ आर्थिक रूप से अभावग्रस्त है वह अपने जीवन के प्रति लापरवाह दिखाई पड़ता है । वह नशा खोरी तथा सामाजिक मार्यादा से अभावग्रस्त है । पैसे के लिए अपनी बेटी की इज्जत को बेचने में लेशमात्र भी नहीं हिचकता है । उसकी बेटी बुधिया के प्रतिरोध पर वह उसे पीटता है । एक उद्धरण लिखित है - "बुधिया चली गई और कलुआ को बुलाकर मैने कहा, देखो, अब उसक तुमने मारा तो हवालात भिजवा दूँगा, समझते हो । और यह तोड़ी छोड़ नहीं सकते ? हर किसी का उधार करते हो और फजीहत सहते हो ? सारे मुहल्ले को बदनाम कर रखा है और नहीं तो कलुआ देखों नहीं, जवान बेटी है और उसकी शादी करो । नहीं तो मां उसकी सुरग से तुम्हे देखकर भला क्या कहती होगी, सोंचो तो ?"[3]

1- जेनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 94-95

2- जेनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ - 38

3- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ 30

निम्न वर्गीय कलुआ आर्थिक विवशता की जंजीरों में जकड़ा हुआ है, वह गरीब तथा लाचार है । वह किंकर्तव्यविमूढ़ है । उसकी महत्वाकांक्षा नहीं है । वह व्यक्तित्वविहीन है । उसमें स्वाभिमानी पुरूष के कोई भी लक्षण नहीं हैं । कलुआ की मूंछे छबरीली थीं । बाल हली की कटी दूब से खड़े, चेहरा बद - हवास और कठोर । पर मुझे अचरज हुआ । शब्द उससे नहीं बन सके और वह नहीं बोल सका । आवाज भीतर रूंधकर रह गई । कोई प्रयत्न काम न आया । विवशता आखिर आंखों में आंसू ले आई और वह ढरकते हुए उसकी मूंछों पर बूंद बनकर अटक आये ।[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में निम्न वर्ग कम उभरकर आये हैं । निम्न वर्ग की स्थिति को यथार्थ की पृष्ठभूमि पर चित्रित किया गया है । ये आर्थिक रूप से विपन्न हैं । सामाजिकता का अभाव है ।

परिवार की अवधारणा :-

जैनेन्द्र जी ने मार्श्रस्थिक जीवन को बदल दिया है । भारत में संयुक्त पारिवारिक जीवन को हमेशा आदर्श की दृष्टिकोण से देखा गया है । जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में नारी की पारिवारिक स्थिति का बड़े ही मनोयोग ढंग से वर्णन किया है । अंग्रेजों के सांघातिक सम्पर्क ने भारतीय पारिवारिक प्रणाली पर ठोस असर डाला । जिससे भारतीय जीवन में भी विश्रृंखलता पैदा हुई । जैनेन्द्र जी की सूक्ष्म एवम् पैनी दृष्टि ने इस बदलाव को भी लक्ष्य किया है । फलस्वरूप उनके उपन्यासों में विश्रृंखलित होने वाले पारिवारिक जीवन की अनेक विसंगतियों का विशद वर्णन किया है ।

आर्थिक विषमताएं पति एवम् पत्नी के मध्य अनबन का कारण बन जाती है, इस बात को जैनेन्द्र जी ने "सुखदा" में स्पष्ट किया है, जिसे

1- जैनेन्द्र : त्यागपत्र

"सुखदा" को संयुक्त परिवार का भार विवश होकर उठाना पड़ता है, जिसे वह लेशमात्र भी पसन्द नहीं करतीं हैं । अपने विवाह के बाद की पारिवारिक परिस्थिति का चित्रण करती हुई वह कहती है - "कुछ दिन बाद ही मुझे गृहस्थी में बहुत सी बातों का अभाव दिखाई देने लगा । कुछ भाग गांव में ससुर को भेजा जाता था, सो क्यों ? जेठ क्यों कुछ कमाने का काम जल्दी नहीं करते ? ननद की तबियत क्यों इधर लगी रहती है ? हम लोग कितनी तंगी में रहते हैं, फिर भी उन सबको रूपया पहुँचाया जाता है, वह बिल्कुल ठीक नहीं है । इन बातों को लेकर अनबन होने लगी ।[1] सुखदा संयुक्त परिवार की उत्तरदायित्व हीनता एवम् आर्थिक रूप से अपनी विवशता से उत्पन्न असन्तोष उपर्युक्त कथन में प्रकट करती है ।

पति - पत्नी के सामंजस्य के अभाव में भी पारिवारिक जीवन में संघर्ष पैदा हो जाता है । इस बात को जैनेन्द्र जी ने "सुखदा" उपन्यास में कहा है । सुखदा का विवाह एक मध्यवर्गीय स्थिति के 150/- रूपये पाने वाले कान्त नामक व्यक्ति से हो जाता है । यहीं से आर्थिक कठिनाईयों की शुरूआत हो जाती है जो बाद में पारिवारिक कलह का रूप धारण कर पति - पत्नी में असामंजस्य होने के कारण उनके सम्बन्ध विच्छेद का कारण बन जाती है । आर्थिक विषमता के बीच पति के निरंकुश व्यवहार सुखदा को उच्छंखृल बना देता है । वह अपनी आय से परिचित होते हुए भी ज्यादा व्यय करती है । अर्थ के अभाव के कारण अपनी स्थिति में रहना उसे हीनता महसूस होती है । वह कहती है - "तनिक से धनिक और ऊँचे से ऊँचे लोगों के समक्ष अपने को अपने स्वामी को और अपनी गृहस्थी को रखना और दिखलाना चाहती थी । स्वामी के मुंह से जब हल्की मितव्यायिता की बातें सुनती तो मुझे अच्छा नहीं लगता था । मैं इनको कहती थी कि सदा की ऊँचाई की तरफ देखना चाहिये तभी उन्नति होगी ।[2] कान्त अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप रखने के पक्ष में है । सुखदा द्वारा पुत्र को नैनीताल पढ़ने

1- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ - 10
2- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ - 11

के लिये भेजने को वह तत्पर नहीं हैं । क्योंकि कान्वेन्ट शिक्षा का खर्च उठा सकना उसके बस की बात नहीं है । वह कहता है - ऊँची पढ़ाई का मोह झूठा है । सुखदा उससे आदमी धरती से उखड़ा रखता है और तबियत से विलायती बनने लगता है ।[1] इतना ही नहीं वह अपनी आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए आगे कहता है - "तुम बेटी अमीर की हो पर गृहणी अमीर घर की नहीं हो । सो घर के हिसाब से चलना चाहिये ।[2] इस तरह सुखदा एवं कान्त दोनों की मान्यताओं एवम् विचारों में काफी अन्तर है, जिससे उनका जीवन दुखमय बना हुआ है । "कल्याणी" में कल्याणी एवम् डा० असरानी के मध्य संघर्ष का कारण दोनों की विचारधाराओं में समानता न होना है ।

जैनेन्द्र जी के अधिकतर उपन्यासों की मूल समस्या नारी एवं उसके प्रेम और विवाह से सम्बन्धित है । प्रेम, आत्मव्यथा, उत्सर्ग, नारी जीवन का प्रधान है । हृदय एवं बुद्धि का संघर्ष इन नारियों में हमेशा होता रहता है । जैनेन्द्र जी की नायिकाओं में काम वासना एवम् विवेक का द्वन्द्व सब जगह प्राप्त होता है । वे बहुत प्रयास करने पर भी अपने पतियों को समर्पण नहीं कर पाती है । स्वतंत्र व्यक्तित्व का बोध उन्हें घर एवम् बाहर की समस्याओं से जकड़ लेता है । पति तथा प्रेमी के मध्य में वे प्रेमी को ही समर्पित दिखाई पड़ती हैं । हरिप्रसन्न के लिये सुनीता, लाल के लिये सुखदा, जितेन के लिये भवन मोहिनी और जयन्त के लिये अनिता समर्पित हो जाती है ।

सामाजिक मर्यादाओं की अपेक्षा करके नारी अच्छंखृलता पर आधारित प्रेम समर्थन जैनेन्द्र नहीं करते । "परख" में बिहारी के पिता कहते हैं - "प्रेम जो कब्जा चाहता है, वैसे प्रेम तो छोटे समाज के अनिष्टकर है । प्रेम

1- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ - 89

2- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ - 89

में यदि इस आधिपत्य की आकांक्षा है - "यह कि वह मेरी है मेरी ही है, मेरी हो जाये तो इस प्रेम में, विश्वास, रखो, मंदलापन है । स्वच्छन्द और वास्तविक प्रेम इस प्रकार की आधिपत्य आकांक्षा से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता ।[1] सत्यधन प्रेम करने से कितना लाभ होगा या हानि होगी इसी सोंच विचार में वह कहता है - "प्रेम जीवन बहलाने की वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिये स्वाहा नहीं किया जा सकता है । जीवन तो दायित्व है, और विवाह वास्तव में उसकी पूर्णता की राह उसकी शर्त । जीवन प्रेम से ज्यादा महत्व की ज्यादा ऊँची और पवित्र चीज है । प्रेम जो अन्त में केवल एक आवेश एक भाव है, उस पर जीवन कैसे निछावर कर दिया जाये ।[2]

जैनेन्द्र जी ने "परख" में प्रेम - विवाह, सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा, में नारी के स्व्च्छन्द प्रेम तथा विवर्त व व्यतीत में प्रेम की समस्या को विस्तृत रूप से चित्रित किया है ।

"परख" में बिहारी के पिता के सामने कट्टो को दिये गये वचनों की मीमांसा इस तरह करता है - "हमारा ब्याह हुआ है इसलिये हम दूसरा विवाह न करेंगे । साथ रहे न रहें कुछ बात नहीं । क्योंकि हम हमेशा साथ हैं ।[3] "सुनीता" में मध्यवर्ग की विवाहित नारी के स्वच्छन्द प्रेम की समस्या है । सुनीता अपने पति के आदेश से हरिप्रसन्न के हृदय की गांठ खोलने में सफल होती है ।[4]

लाल के माध्यम से स्वच्छन्द प्रेम की समस्या "सुखदा" में वर्णित है । लाल की धारण है - "घर गृहस्थी में यहां का व्यक्ति अब जब जुटा

1- जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ - 90

2- जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ - 91-92

3- जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ - 113

4- जेनेन्द्र कुमार : सुनीता : पृष्ठ - 139

है और भारतीय नैतिकता उस परिधि में घेरकर उसे मन्द और निस्पंद किये जा रही है । अब पारिवारिक नहीं सामाजिक संस्कृति चाहिये । हम छोटे - छोटे स्वार्थो के भंवरों में चकराते रह जाते हैं बढ़ नहीं पाते । बिखरे बने रहते हैं, राष्ट्र में न होकर सहज इकट्ठे नहीं हो पाते । मूल में हैं इससे हमारा विवाह जो प्यार को बांधता है खोलता नहीं ।[1]

प्रेम के क्षेत्र में भी पैसे ने कई श्रेणियां निर्मित की हैं जिसके फलस्वरूप जीवन में ज्यादा विषमता बढ़ गई है । "व्यतीत" में कुछ व्यक्ति प्रेम के साथ अर्थ की असमानताओं का शिकार होते हैं एवं कुछ प्रेम की असफलता से सन्यासी बनकर अपने जीवन को बरबाद कर दे हैं । प्रेम एवम् अर्थ के पाटों के मध्य में पिसता हुआ मध्यवर्गीय अपना सम्बल नहीं खोज पाता, कारण है कि न तो उसके पास उन्मुक्त प्रेम ही है और न प्रेम की भावनाओं को पैसे की रूपहली छाया में देखने वाला पैसा ही ।

इस तरह जैनेन्द्र जी ने नारी के प्रेम के क्षेत्र में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । जैनेन्द्र जी प्रेम को चित्त की प्रवृत्ति नहीं नारी की मूल भावना मानते हैं तथा दोनों की धारणा है कि नारी की प्रेम भावना का दमन नहीं किया जाये ।

जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में मातृत्व की महिमा का चित्रण समान रूप से किया है । नारी के जननी के रूप पर जैनेन्द्र जी को अपार श्रद्धा है । मातृत्व की भावना को जैनेन्द्र गौरवपूर्ण मानते हैं । जैनेन्द्र जी भी स्त्री की सार्थकता मातृत्व में मानते हैं । कल्याणी मातृत्व को दायित्व मानती हुई कहती है "स्त्रीत्व स्वातंत्र्य और कुछ नहीं, मातृत्व से बचने की चाह है और अगर उसमें मातृत्व का फल नहीं है तो वह निष्फल है अनर्थकर है । स्त्री की सार्थकता मातृत्व है । मातृत्व दायित्व है । यह स्वातंत्र्य नहीं है ।[2]

1- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : 111

2- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 62

सामाजिक जीवन के परिवर्तित हुए मूल्यों के प्रति जैनेन्द्र जी की दृष्टि सहानुभूतिपरक रही है । जैनेन्द्र जी में प्राचीनता के प्रति मोह भी नहीं है, तथा नवीन मान्यताओं का दुराग्रह भी नहीं है । जैनेन्द्र जी ने पश्चिमी संस्कृति, इसके अन्धानुकरण एवम् गलत प्रभाव का विरोध किया है । जैनेन्द्र जी ने कल्याणी के द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है । कल्याणी शिक्षित नारी है फिर भी उसका मन भारतीय संस्कृति का पुजारी है । धर्म में कल्याणी की आस्था है । जगन्नाथ जी की आरती में सभी को शामिल करके धर्म के विराट स्वरूप की वह कल्पना करती है । अमीर - गरीब का भेद उसकी पूजा में नहीं है । कल्याणी पाश्चात्य एवम् यौर्वात्य की संस्कृति की तुलना करती है । एवम् पाश्चात्य की संस्कृति का अनुसरण भारतीयों के लिये हितकर नहीं समझती है । उसका कहना है कि यह संस्कृति (विलायती संस्कृति) तो आदमी - आदमी के बीच में स्वार्थ का सम्बन्ध बनाकर हथियार की जरूरत पैदा कर देगी नही तो उनके दर्मियान एक खाई बनी रहने देगी । इस संस्कृति में हृदय नहीं है, हिसाब है । संस्कृति उसे कौन कहता है ? जो चमक है वह ज्वरावेश की है, स्वास्थ्य की नहीं है, सन्तोष वहां नहीं है ।[1]

"कल्याणी" के माध्यम से आधुनिक नारियों की आलोचना प्रस्तुत करके जैनेन्द्र जी ने अपने भारतीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । सुखदा नामक उपन्यास में सुखदा का नायक कान्त, सुखदा के कहने पर पुत्र को नैनीताल पढ़ने के लिये भेजने के पक्ष में नहीं है, क्योंकि उसकी मान्यता है कि कान्वेन्ट शिक्षा से आदमी विलायती बन जाता है - "ऊँची पढ़ाई का मोह झूठा है, सुखदा, उससे आदमी धरती से उखड़ा रहता है और तबियत से विलायती बनने लगता है ।[2]

1- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 78-79

2- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ - 89

जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक स्थिति का बड़े ही मनोयोग ढंग से उल्लेख किया है । उसके उपन्यासों में टूटने वाले पारिवारिक जीवन की अनेक विसंगतियों का व्यापक उल्लेख मिलता है ।

दाम्पत्य सम्बन्ध :-

जैनेन्द्र जी वर्तमान समाज में प्रचलित दाम्पत्य पद्धति के विरोधी हैं । उनकी धारणा है कि प्राचनी वैवाहिक - नियम, शांतिमय, अनैतिक एवं कठोर है । जैनेन्द्र जो दाम्पत्य का आधार भोग नहीं विसर्जन मानते हैं । जैनेन्द्र जी के ही शब्दों में - "विवाह वैसा ही एक प्रयोग है । वह संयोग के लिए नहीं है । संभोग को संयत करने के लिये है, इसलिये मैं मानता हूँ कि उसका आधार भोग नहीं है, विसर्जन है । प्रेम के नाम पर साधारणतया जिस विलास का आशय लिया जाता है वह विवाद के सार्थकता नहीं है ।[1]

अपने इसी दृष्टिकोण को जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यास "अनामस्वामी" में इसी तरह प्रकट किया है - "विवाह के समर्थन के कारण भोग को समर्थन नहीं प्राप्त होता । विवाह द्वारा भी ब्रह्मचर्य साध्य है । जितना तह सध सके उतना अच्छा । परम धर्म की यही विशेषता है । वह सबके लिये है, सबको सुगम है ।[2]

जैनेन्द्र जी दाम्पत्य को व्यक्तिगत नहीं सामाजिक मानते हैं । "व्यतीत" में उन्होने इसी विचार - धारा को प्रकट किया है - "कहने योग्य परिचय हमारे बीच में न था, परिचय से आशय सामाजिक परिचय । और विवाह सामाजिक है । इन दोनों ने अच्छी तरह देखा कि वह सामाजिक है ।[3]

1- जैनेन्द्र कुमार : प्रस्तुत प्रश्न : पृष्ठ - 64

2- जैनेन्द्र कुमार : अनामस्वामी : पृष्ठ - 31

3- जैनेन्द्र कुमार : व्यतीत : पृष्ठ - 69

जैनेन्द्र जी ने श्री दाम्पत्य - बन्धन को मान्यता न देकर नारी के प्रेम करने की आकांक्षा का समर्थन किया है - "प्रेम बन्धन में नहीं बंध सकता ।[1] जैनेन्द्र जी ने दाम्पत्य - विधि को व्यक्ति की उन्नति वृत्ति माना है एवं उसमें आत्म - समर्पण को परखा है - "विवाह किसी जाति में भी देखिए, वैवाहिक विधि को निष्पन्न करने वाली जो रीतियां और जो मन्त्र हैं, उसमें मनुष्य की हीन - वृत्ति नहीं बल्कि उत्कर्ष वृत्ति ही व्यक्त हुई है । सब विवाह विधियों में समर्पण की भावना है, बफादारी की प्रतिज्ञा हैं ।[2]

जैनेन्द्र जी तलाक के समर्थक नहीं है । कल्याणी एक बार नहीं कई बार डाक्टर असरानी के हाथों मार खाती है परन्तु वह विद्रोह नहीं करती । वह डाक्टर है एवम् आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर हैं । महिला मण्डल एवम् पड़ोसी उसकी मदद के लिये उद्यत है । महिला मण्डल कल्याणी का पिटना नारी - वर्ग का अपमान समझती है ।[3] परन्तु कल्याणी पर इसकी कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं होती । तलाक देने की बात तो दर वह परंपरागत नारी की तरह उपवास, ईश्वर की पूजा, तथा धर्म और आत्मपीड़ा का मार्ग अपनाती है ।

अनमोल विवाह के कारण भी भारतीय नारी का जीवन करूणा से द्रवीभूत हुआ है । अनुकूल पति न प्राप्त होने के कारण स्त्री की स्थिति अत्यन्त शोचनीय पाई गई है । जैनेन्द्र जी ने त्यागपत्र नामक उपन्यास में मृणाल के माध्यम से अनमोल विवाह जैसी कुरीतियों का विरोध किया है ।

दाम्पत्य जीवन में नारी को मां बनने की अभिलाषा जोरदार पाई जाती है । वह संसार को पैदा करती है इसी से उसे जननी की संज्ञा दी

1- जैनेन्द्र कुमार : समय और हम : पृष्ठ - 520

2- जैनेन्द्र कुमार : प्रस्तुत प्रश्न : पृष्ठ - 65

3- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 21

जाती है । जैनेन्द्र जी के उपन्यास "कल्याणी" को नायिका भी मातृत्व में महत्ता को मानती है और स्त्री की सार्थकता मातृत्व में मानती है ।[1] कल्याणी-अपने पेट में पल रहे बच्चे के लिये जीवित है । आप नहीं बता सकते, लेकिन मैं बताती हूँ । मैं इस पेट के बच्चे के लिये जीती हूँ । .... बस यही अभागा है जो मुझे मरने नहीं देता । मैं मरी तो वह भी नहीं जन्मेगा । इससे मैं मर भी तो नहीं सकती ।[2]

कल्याणी के समक्ष आत्म निर्भरता समस्या नहीं है अपितु समस्या है कि वह गृहणी बनकर पति की आज्ञाकारी बने अथवा नौकरी करके पति के लिये धन एकत्रित करें । कल्याणी अपने पति से कहती है - "दोनों में से कोई एक चुनकर मुझे दे दो पतिव्रत या डाक्टरी । मैं पतिव्रत में परायण हो जाऊँ या डाक्टरी में कमाई करके दूँ । दोनों साथ होना कठिन है । जो मेरे ही चुनने की बात है तो मैं कहूँगी कि डाक्टर नहीं बनना चाहती पर अगर तुमको डाक्टरी की आमदनी भी चाहिये और बिना उसके नहीं चल सकता तो पतिव्रत की मांग उतनी कसी नहीं रखी जा सकेगी ।[3] डा0 असरानी गृहणी और नौकरी दोनों की ही मांगे करता है । अतः उसका जीवन दुखमय से बोझित हो जाता है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यास अनामस्वामी की पात्रा वसुन्धरा की धारणा है कि - "स्त्री का मूलाधिकार हो कि वह उपकरण की भांति पुरूष को पाये और उसके द्वारा अपने मातृत्व की सार्थकता हो पाले । स्त्री को माता होना ही है और पुरूष के प्रति उसका यह दावा टलेगा नहीं ।[4]

1- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 70

2- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 60

3- जेनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 46

4- जैनेन्द्र कुमार : अनामस्वामी : पृष्ठ - 239

दाम्पत्य वह आध्यात्मिक बन्धन है जो स्त्री - पुरूष को एक सूत्र में पिरो देता है । इसलिये विवाह पर जीवन का सुख - दुःख निर्भर है । दाम्पत्य के सम्बन्ध में यदि गम्भीरता से न सोचा जाये तो स्त्री - पुरूष का जीवन निराशाजनक हो जाता है । दाम्पत्य की समस्या जीवन की महत्वपूर्ण समस्या है । हिन्दू समाज में माता - पिता के लिये विवाह का प्रश्न अनेक उत्तरदायित्वों से पूर्ण रहा है । सन्तान का विवाह करने में उनके सामने अनेक मजबूरियां आती हैं, जिनमें से दहेज प्रथा प्रमुख है । दहेज प्रथा का चित्रण जैनेन्द्र जी के त्यागपत्र तथा परख उपन्यासों में प्राप्त होता है ।

जैनेन्द्र जी ने त्यागपत्र की नायिका मृणाल के द्वारा अनमेल विवाह पर अपने विचार को व्यक्त किये हैं । त्यागपत्र की नायिका मृणाल अपने भाई एवं भावज का आश्रित है । मृणाल शीला के भाई से विवाह के पहले ही प्रेम करने लगती है, जिसे आर्य गृहिणी के आदर्शो में ढली भावज मान्य नहीं कर पाती एवम् उसकी शादी एक बड़ी उम्र के दुहाज पुरूष से कर दी जाती है । परन्तु मृणाल नवीन घर में समझौता न कर सकी एवम् अधिकांशतः वह अपने पति के हाथ बेतों से मार खाती है ।[1] बाद में यह रहस्य खुल जाने पर कि मृणाल विवाह के पहले शीला के भाई जो अब कहीं सिविल सर्जन हैं एवम् आजन्म अविवाहित जीवन व्यतीत करने का प्रणय किये हैं । उससे मृणाल प्रेम किये थी, उसका पति उसे घर से निकाल देता है । मृणाल अपने भतीजे प्रमोद से इस बारे में अपना स्पष्टीकरण देती है - "मैं स्त्री - धर्म को पति धर्म ही मानती है । उसको स्वतंत्र धर्म नहीं नहीं मानती । क्या पतिव्रता को यह चाहिये कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे । वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैने उनकी आंखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया । उन्होने कहा -

---

1- जैनेन्द्र कुमार : त्यागपत्र : पृष्ठ - 28

"मैं तेरी पति नहीं हूँ - तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती । पतिव्रता का यह धर्म नहीं है ।[1] इस तरह जैनेन्द्र जी मृणाल के अनमोल विवाह से नारी धर्म, पतिव्रत धर्म के नाम पर होने वाले जैसे अन्धविश्वासों की ओर संकेत किया ।

जेनेन्द्र जी ने भी वैवाहिक समस्याओं को अपने उपन्यासों में उठाया है, परन्तु अन्ततः गांधीवादी आत्मपीड़न के सिद्धान्त में ही उनका अन्त होता है । परख का सत्यधन विवाह पर आस्था रखता है, परन्तु प्रेम को मनोरंजन समझाता है, उसें वह सामाजिक रूप नहीं दे पाता । दूसरी तरफ बिहारी विवाह को सामाजिक मान्यता तो प्रदान नहीं करता, फिर कट्टो के साथ विवाह - प्रतिज्ञा में बंधता है । इसे सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ्य विचार नहीं माना जा सकता है ।

विवाह की आलोचना करते हुए भगवत दयाल कहते हैं - "विवाह बिलकुल एक सामाजिक समस्या है, सामाजिक तत्व है । तुम भूलते हो, अगर तुमने उसे और कुछ समझा । उन कुछ उत्तरदायित्व से जो जीवन के साथ बंधे हैं, उऋण होने के लिये वह विवाह का विधान है ।[2]

जैनेन्द्र जी ने "कल्याणी" में विवाह एक पातिव्रत धर्म की समस्या को विशद रूप से वर्णित किया है एवं सतीत्व का बहाना लेकर नारी पर जो अत्याचार होते हैं उसका जमकर विरोध किया है । कल्याणी उनकी इस विचार का विरोध करते हुए कहती है - "मैं तो मशीन हूँ । कट - कट, कट - कट रूपया बनाती है । हर काम रूपया मांगता है । है न ? यह दुनियां का सच है । तब मैं रूपया बनाऊँगी, मांगूंगी, बटोरूंगी ।[3] पति

1- जैनेन्द्र कुमार : त्यागपत्र : पृष्ठ - 62

2- जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ - 90

3- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 143

कल्याणी के शरीर का सौदा करता है, इस बात से भी कल्याणी नाराज है । डा0 असरानी का चरित्र गलत स्वार्थ से परिपूर्ण है । वह अपनी पत्नी को सामाजिक प्रतिष्ठा की वस्तु बनाना चाहता है । डा0 असरानी संस्थाओं को दान देते हैं तथा संस्थाएं कल्याणी का आदर करतीं हैं । परन्तु इस आदान - प्रदान के मध्य कल्याणी उनकी स्वार्थपूर्ति का साधन मात्र है । पति के धूर्ततापूर्ण मन के भावों का स्पष्टीकरण करती हुई कल्याणी कहती है - डा0 साहब दान देते हैं । सो संस्थायें मुझे मान देतीं हैं । इससे संस्थाओं को लाभ होता है, हमें भी लाभ होता है । बताइये इसमें गलत क्या है ? जिस पर मुझे अपनी कीमत बढ़ने पर क्यों झिझक होनी चाहिये .... मैं हूँ कि इन्वेस्टमेन्ट ।[1] यह विनियोजन स्त्री के आत्म सम्मान का सूचक नहीं है, बल्कि उसकी पूरी, विवशता, दीनता तथा लसचारी का परिचायक है ।

भोग को समर्थन नहीं प्राप्त होता । विवाह द्वारा भी ब्रह्मचर्य साध्य है । जितना वह सध सके उतना अच्छा । परम धर्म की यही विशेषता है । वह सबके लिये है, सबको मालूम है ।[2] जैनेन्द्र जी विवाह के बन्धन को धार्मिक न मानकर सामाजिक मानते हैं । व्यतीत में उन्होने इसी विचार धारा को व्यक्त किया है - "कहने योग्य परिचय हमारे बीच में न था, परिचय से आशय सामाजिक परिचय । और विवाह सामाजिक है । हम दोनों ने अच्छी तरह देखा कि वह सामाजिक हैं ।[3]

जैनेन्द्र के अपने उपन्यासों में सतीत्व एवम् पतिव्रत भावना सम्बन्धी विचारों की गहराई के साथ प्रकट किया है । भारतीय समाज में नारी को सती,

---

1- जेनेन्द्र कुमार : पृष्ठ - 143

2- जैनेन्द्र कुमार : अनामस्वामी : पृष्ठ - 31

3- जैनेन्द्र कुमार : व्यतीत : पृष्ठ - 69

देवी और पूजनीया कहकर सम्मान दिया गया है । जैनेन्द्र जी के अधिकतर नारी - पात्र अपने जीवन में नारी के आदर्शो के साथ - साथ पति - भक्त के आदर्श को शीर्ष स्थान दिये हुए हैं । स्वेच्छाचारी होते हुए भी, वे पति परायणा हैं । कल्याणी सनातन सतीत्व की दुहाई देती हुई कहती है - "स्त्री को सीखना होगा वही सनातन सतीत्व । वही उसकी चरम और एकान्त साधना, यही उसका धर्म । उसका अलग स्वत्व कुछ न रहे, सब पति में खो जाए । स्मरण रहे कि पति व्यक्ति नहीं है, वह प्रतीक है, इससे वह सती को यह सोंचने का अधिकार नहीं है कि पति संदोष हो सकता है । अपंग हो, विकलांग हो, जैसा हो पति ही है । पति देवता है । स्मरण रहे कि वह देवता अपने आप में नहीं, सतीत्व को महिमा के प्रकाश में ही वह देखता है । इसलिये व्यक्ति रूप में संदेह बनकर पति के स्थान में चाहे जो हो, कैसा हो वह अपूर्ण हो, सती उसको भी देवता बना सकती है ।[1]

प्रेम सम्बन्ध :-

जैनेन्द्र जी ने नारी के प्रेम को भोग की वस्तु नहीं मानकर आत्मा की वस्तु स्वीकार किया है । प्रेम उनके लिए भावनागत विषय है, भौतिक नहीं । वह पुरूष को उन्नति एवम् अध्यात्म की ओर अग्रसर करता है । जैनेन्द्र जी के उपन्यास कल्याणी की नायिका प्रेम को भोग नहीं मानती - "भोग प्रेम नहीं । .... नहीं, वह प्रेम कभी नहीं । प्रीति का भोग है त्याग ।[2] एक अन्यत्र जगह पर प्रेम की उच्चता को मानते हुए जैनेन्द्र जी ने चित्रित किया है कि - "यदि मल में प्रेम की प्रेरणा नहीं है तो शिव और सुन्दर की समस्त आराधना भ्रान्त है । सुन्दर और शिव की प्राप्ति के अर्थ मात्रा करने की पहली शर्त यह है कि व्यक्ति प्रेम धर्म की दीक्षा पाये ।[3]

1- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 71

2- जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ - 72

3- जैनेन्द्र कुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृष्ठ - 62

प्रेम की अमोघ शक्ति में विश्वास करे हुए भी जैनेन्द्र जी उकसे चित्रण में त्यागशील एवम् सत्यशील भावना को इतना उभरने नहीं देते, जिससे प्रेम पात्रों के जीवन को रूपान्तरित कर सके । डा0 सुषमा धवन जी का कथन है - जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में प्रेम मानव स्वभाव का रूपान्तर करने की शक्ति नहीं रखता । वह जीवन की अमूल्य सम्पदा नहीं है, दर्शन का अमर तत्व है । उसके प्रेम का स्वरूप कुण्ठाग्रस्त है, घुटन तथा घुमड़न उत्पन्न करने वाला है ।[1]

जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में प्रेम में अतृप्ति का संकेत किया है । जैनेन्द्र जी का मत है कि प्रेम में तृप्ति सम्भव नहीं है । जैनेन्द्र जी का मत है कि अधिकतर पात्र प्रेम में अतृप्ति की घोषणा करते हैं । जैनेन्द्र जी की अधिकतर नायिकाओं के प्रेम में अतृप्ति दृटिगोचर होती है । वे दूसरे पुरूष से अपना सम्बन्ध, स्थापित करती है । उनके पति भी अपनी पत्नियों को अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करने की छूट दे देते हैं । "सुखदा" उपन्यास की नायिका सुखदा माता बनने के पश्चात् भी अतृप्ति है - 'विवाह के कोई डेढ़ वर्ष बाद बालक हुआ । तब मैं गिरस्तिन ही थी, फिर भी मन अतृप्त था ।[2]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में स्वच्छन्द प्रेम की प्रवृत्ति का चित्रण ज्यादा हुआ है । जैनेन्द्र जी प्रेम पर किसी के बन्धन को मानने पर इन्कार कर देते हैं । वे प्रेम को मुक्त मानते हैं । प्रेम मुक्त ही हो सकता है । जो मुक्त न हो, ऐसे प्रेम की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता ।[3] हम लाख चाहें प्रेम बन्धन में नहीं बंध सकता । बल्कि वही है, जिससे आदमी अपनी

1- डा0 सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास : पृष्ठ - 172

2- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ - 12

3- जैनेन्द्र कुमार : समय और हम : पृष्ठ - 519

मुक्ति पायेगा ।[1] उदिता (अनाम स्वामी) का मत है - "प्रेम वह नहीं है जो बांधता है, मुक्त करता है ।[2]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में उन्मुक्त प्रेम का विशद चित्रण प्राप्त होता है । स्वतन्त्र प्रेम की दीवानी जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की नायिकाएं विवाह के बन्धन एवम् सामाजिक मर्यादाओं को नकारते हुए पर - पुरूष के प्रेम को प्राप्त करने के लिए उद्धत हैं ।

सुनीता उपन्यास की नायिका, सुनीता, प्रेमदीवानी मीरा की व्यथा समझने का प्रयास करते हुए स्वयं को भी हरिप्रसन्न की ओर आकर्षित होती पाती है । सिर्फ इतना ही नहीं, हरिप्रसन्न के मन में पड़ी हुई काम - अभुक्ति की ग्रन्थि खोलने के लिये वह आत्म - समर्पण करने की उद्यत है । "सुनीता" उपन्यास की नायिका सुनीता की आदर्शमयता का अनुसरण करते हुए, त्यागपत्र की नायिका मृणाल, शरीर - दान में भी सती के धर्म को पालन का ध्यान रखती है । एक के पश्चात् कई पुरूषों को अपना शरीर सौंपने के पश्चात् भी वह अपने आपको सती मानती है । "सुखदा" उपन्यास की नायिका सुखदा अपने पति से अलग होकर मिस्टर लाल के प्रति समर्पित है, तो विवर्त की नायिका सुखदा भुवनमोहिनी, अपने प्रथम श्रेणी जितेन को पूरी पूरी तरह समर्पित है । इसी तरह "व्यतीत" की नायिका, अनिता भी जयन्त की तरफ आकर्षित है एवम् उसके सामने आत्म - समर्पण करने में स्त्री - सुख लज्जा का पूर्ण परित्याग करने में लेशमात्र भी नहीं हिचकती है । इन सभी नायिकाओं की प्रगलभता एवम् पर - पुरूष को अपनी ओर आकर्षित करने की धृष्टता देखते ही बनती है । "जयवर्धन" उपन्यास की नायिका, इला भी जब मिस्टर हुस्टन के सामने अपने गोपनीय प्रेम - रहस्यों का वर्णन करने लगती है तो उसकी इस प्रेम - प्रसंग पर अत्यन्त ही आश्चर्य होता है ।

1- जैनेन्द्र कुमार : समय और हम : पृष्ठ - 529

2- जैनेन्द्र कुमार : अनामस्वामी : पृष्ठ - 257

"सुनीता" के सन्दर्भ में देखा जाये तो प्रेम एक नवीन जीवन की मांग है - स्थिरता के मुक्ति की मांग है । सुनीता में यह संकेत है कि "पानी बहते - बहते कहीं बंध गया है उसे खुलना चाहिए । जीवन की कुछ वाहिर्गमन मिले और घर के भीतर की गृहस्थी को घर के बाहर की दुनियां का दौर अधिक संसर्ग और अधिक संघर्ष मिले तो शायद कुछ इसकी सृष्टि हो, चैतन्य जगे ।"[1] अर्थात जैनेन्द्र प्रेम से एक नये जीवन की संभावना को जोड़कर देखते हैं जो घर और बाहर के अनोखे संयोग की संज्ञा है । जैनेन्द्र की दृष्टि में प्रेम का अनुभव है जो बांधकर ही खोलता है । इस अनुभव से सुनीता के स्थिर क्रियाकलापों में एक चपल उल्लास की सृष्टि होती है । बाह्य का अन्तगवलोकन जैनेन्द्र की वह शैली है जो प्रेम जैसे व्यापार के निरूपण में समर्थ है - "सिर पर से साड़ी हट गई है । एकाध तिनका बालों में उलझ गया है । किसी राग का भुला सा पद गुनगुना रही है । काम में वेग और उल्लास है ।[2] प्रेम के अनुभव को ऐंद्रिक अनुभव के रूप में भाषा देते हुए जैनेन्द्र लिखते हैं । लेकिन वह तो कमरे के बाहर तैर गई । उस समय उसकी रेशमी की साड़ी की ध्वनि आभा ही कांपती हुई झलमल हरिप्रसन्न की आंखों में रह गई और उसके कानों में साड़ी की तरल पर्तो को छूकर जाती हुई समीर की सरसराहट करने लगी । मानों कुछ हौले-हौले बज रहा हो । कुछ भीना - भीना बरस रहा हो और भीतर से उसे भिगो रहा हो ।[3]

कभी - कभी आश्चर्य होता है कि व्यवस्था में प्रेमानुभव को उलझाने वाले जैनेन्द्र व्यवहार में उसे बहुत सुलझाकर देखते हैं । यही देखना उनके उपन्यासों की प्रासंगिकता का आधार है । पर जैनेन्द्र के पाठक जानते

1- जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ - 18

2- सुनीता : पृष्ठ - 30

हैं कि प्रेम को सुलझाकर देखना जैनेन्द्र के लिये सन्तोष है स्वभाव नहीं । प्रेम के चित्रण ने जैनेन्द्र के यहां फिल्मी हल्कापन भी उभरता है उससे उनके दूरदर्शन की गंभीरता नष्ट होती है - "वह आया था कि बस देर उसी सोती हुई जो देख लेकर वह उन्हीं पांव लौट आयेगा । लेकिन वह तो उस दर्शन को वहां पीने लगा । पीते - पीते क्या हुआ कि एकाएक बैठकर उस नारी के चरणों की उंगलियों को उसने धीमे से चूम लिया । ऐसे धीमे कि शायद होठों ने छुआ भी नहीं । किन्तु लहक लहकती ही गई । फिर वह पास आ बैठा । धीमे से उसके हाथ को उठाया और मुंह से लगाया । शनैः शनैः फिर सुनीता की देह पर हाथ फेरना शुरू कर दिया । मद जैसे उस पर चढ़ता ही जाता था । धीरे - धीरे सुनीता ने आंखे खोली । नहीं उसने आंख नहीं खोली । वह अपने शरीर पर आहिस्ता - आहिस्ता फिरते हुए इस पुरूष के हाथ का स्पर्श अनुभव करने लगी । कुछ देर तो वह यों ही पड़ी रही, फिर आंख खोल कर मानो कलकर उसने कहा "हरि बाबू" तुलना करके देखे तो इस अनुभव की पकड़ में वे सभी संभावनायें हैं जिनका एक निम्न स्तर पर उपयोग करके कृष्णा ने सूरजमुखी अन्धेरे के जैसा उपन्यास लिखा है । पर वहां दार्शनिक ग्रथियों का आतंक नहीं है । इसलिये प्रेम के दैहिक अनुभव की भाषा लेखकों के काम आती है ।

"विवर्त" नामक उपन्यास में जैनेन्द्र लिखते हैं - "जीवन प्रेम है और प्रेम का भी नियम है - परिवर्तन । पर प्रेम कहीं वह भी है जो स्वयं अपने में से परिवर्तनों की सृष्टि करता है और अपने में ही फिर उन्हें समाहित कर लेता है, यह संभावना उन्हें न थी पर इन चार वर्षो पर पीछे निगाह फेरकर देखते हैं, तो पाते हैं कि जैसे अनहोना उनके साथ होता रहा है । लेकिन आज सहसा इस निरव्य नीलाकाश में से अहैतुक और निर्मूल क्या कोई बादल आया चाहता है ? यह उलझन मोहिनी के पति नरेश के मन की उलझन पैदा हुई है जो एक बार नरेश के मन के उत्साह को बढ़ाने वाली भी है । समस्या वही सुनीता की है । पर उसके निरूपण को उतना महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य

नहीं दिया गया है । तीसरे को यहां हरिप्रसन्न की तरह गौरवान्वित भी नहीं किया गया है ।

"मुक्तिबोध" नामक उपन्यास में स्त्री प्रेम से बचने वाले पुरूष को चुनौती देती है ।[1] शरीर के अस्वीकार के लिये उसके पास केवल एक शब्द शेष रहता है - धिक्कार । अब उसकी मुस्कराहट बंद हो गई थी । बांह की ऐठन के साथ उसने जरा बल खायी थी और उसकी आंखों में अपार विस्मय दिखा आया था । विस्मय के साथ ही जाने कैसा यह धिक्कार था ।[2] तात्पर्य यह है कि जैनेन्द्र के प्रेम दर्शन में शरीर के होने न होने को लेकर प्रश्न उठते रहते हैं । जैनेन्द्र के पास इस समस्या का कोई सरल समाधान नहीं है ।

"जयवर्धन" में इला लिजा से कहती है - "पर क्या तुम जय को प्रेम करती हो ? नहीं भी तो सराहना तो करती ही हो । फिर लिजा क्या तुम ही उनकी सार्थकता में बाधा बनना चाहोगी .... प्रेम का आधिपत्य नहीं होता है न, मान लो मेरा आधिपत्य है या होगा .... जय तुम्हारे इतने ही है .... लेकिन क्या यह प्रेम है लिजा जो आरोप लाता है ?

"अनाम स्वमी" नामक उपन्यास में कहा गया है - "स्नेह की व्यथा में से अनुभूति बनती है । इसी से इतिहास में मतवादी नहीं, प्रेमी ही मान् होता आया है । उसका ब्रह्मचर्य हटाग्रही नहीं है, रस स्निग्ध है । स्त्री की ओर से आंख मोड़कर वह अपनी सुरक्षा नहीं खोजता है, बल्कि स्त्री मात्र से अपनी सहज प्रीति का निमंत्रण देता है ।[3] आगे के संवाद में अनामस्वामी की व्याख्या है - "बीच में कोई ऐसा खींचकर स्त्री को उधर

1- विवर्त : पृष्ठ - 70

2- मुक्तिबोध : पृष्ठ - 66

3- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 36

और पुरूष को इधर रखकर ब्रह्मचर्य की सिद्धि होगी यह मेरा विश्वास नहीं है । कहते हैं कि दोनों मिलेंगे वहां काम उपजा ही रखा है काम जगा कि ब्रह्मचर्य स्खलित हुआ । किन्तु काम शक्ति भी है । व्यक्ति की निजता और सगुणता मिलने से मूल शक्ति काम शक्ति का रूप धारण करती है । इससे कहना इतना है कि उस पर से व्यक्ति की अभिधा और सीमा को उठा लेना है । निर्वैयक्तिक रहकर काम ही प्रेम हो जाता है । काम मूल शक्ति का स्वरूप नहीं निरूप है ।[1]

"त्यागपत्र" के प्रमोद से अनामस्वामी मृणाल के व्यक्तित्व की चर्चा करते हैं जो "त्यागपत्र" की मुख्य चरित्र रही है । उनके शब्द हैं "तुम ठीक कहते हो कि प्रेम ब्रह्मचर्य है । प्रेम नहीं झेल पाते तभी ब्रह्मचर्य आता है । पर मानो कि तुम्हारी बुआ में जितनी थीं प्रेम में उससे अधिक गहनता को अवकाश है ।[2] स्पष्ट है कि अनामस्वामी की दृष्टि में मृणाल की दैहिक आसक्ति प्रेम की गहनता में बाधक रही है । जैनेन्द्र महाप्रेम की व्यथा की साधना का उल्लेख करते हैं । उसका अनुभव है : "दैहिक प्रेम हिस्त्र भाव के बिना बनता नहीं है ।[3]

जैनेन्द्र का प्रेम और दृढ़ता के सम्बन्ध का तर्क अनोखा है, जिसका उदाहरण यह स्थल है .... राग अकेला होता ही नहीं, द्वेष से युक्त होकर ही होता है .... राग बिना द्वेष के जो नहीं सकता । कोई तीसरा न हो तो भी दो यदि भोग में मिलेंगे तो उनमें संशय ही रहेगा । घृणा और प्रेम संभोग में भिन्न नहीं होते । जिसमें घृणा नहीं उस प्रेम में संभोग असम्भव है ।

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 38-39

2- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 41

3- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 42

कथाकार जैनेन्द्र जी के प्रेम सम्बन्धी उपर्युक्त दृष्टिकोण को देखते हुए यह आभास होता है कि प्रेम जैनेन्द्र के उपन्यासों की केन्द्रीय संवेदना है । वह उनके लिये दैहिक अनुभव है और आत्मिक प्रतीत भी । इसलिये वे प्रेम की व्याख्या ही नहीं करते, उसके प्रभाव को भी व्यंजित करते हैं ।

सामाजिक अन्त : क्रियाएं :-

व्यवहारगत भिन्नता के होते हुए भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जब अन्तर्जगत का विश्लेषण किया जाता है तब व्यक्तिगत और सामाजिक अभिप्रेरणा एक - दूसरे को समर्थन देने लगती है । विचारक मन के मतानुसार, सामाजिक साहचर्य की भावना का मूल कारण सामाजिक अभिप्रेरणा ही है जो अधिकांश व्यक्तियों से स्वाभाविक रूप से विद्यमान रखती है । जब व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर मनुष्य को समाज से पृथक किया जाता है तब अत्यधिक व्यतिक्रम की सम्भावना उत्पन्न होती है ।[1]

मनोविश्लेषणवादी विचारधारा ने मूल प्रवृत्तियों के स्वच्छन्द प्रकाशन को अन्तर्जगत के सन्तुलित विकास के लिये आवश्यक माना है । सामाजिक प्रवृत्ति तथा नैतिक जीवन की अनिवार्यता को महत्व देने वाले विचारकों ने इस स्वच्छन्दवृत्ति के प्रति गंभीर प्रतिक्रिया व्यक्त की है । मनुष्य के अन्तर्जगत की सक्रियता से अवगत होने के लिये इन मूल - प्रवृत्तियों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है ।

---

1. The Social motives found is most. If not in all normal human beings are well exemplified by desire to associate with othars. All organisms that are long dependent upon others for servival become greatly disturbed when is alated.
--- Norman L. Mann - Psychology.
The Fundamentals of Human Adjustment.'
Pub.George G. Harrap & Co. Ltd., London, 1959. P-101.

अन्तर्जगत के सन्तुलन के तथा समुचित विकास के निमित्त मनोवैज्ञानिकों ने मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन को आवश्यक माना है । मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा विकसित और सन्तुलित माना जाता है । अतएव उसके उद्दाम तथा असामाजिक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है तथा सामाजिक उपयोगिता के दृष्टिकोण के कतिपय मूल प्रवृत्तियों में शोधन को अनिवार्य माना है । प्रत्येक सर्जन साहित्यकार जाने तथा अनजाने में अपनी प्रवृत्तियों में परिवर्तन लाने अथवा प्रयत्न करता है, क्योंकि यह उसकी परम आवश्यकता होती है । मूल - प्रवृत्तियों में परिवर्तन या संशोधन प्रस्तुत करने की प्रमुख विधियां निम्नलिखित हैं :-

(1) अवदमन
(2) विलियन
(3) मार्गान्तरीकरण
(4) शोधन
(5) संवेग
(6) स्थायीभाव और भावना ग्रंथियां
(7) संकल्प शक्ति
(8) स्मृति
(9) अवधान
(10) कल्पना
(11) चिन्तन और तर्क
(12) बुद्धि
(13) स्वप्न - विश्लेषण

किसी भी विचार अथवा भाव की जब तृप्ति नहीं हो पाती तो व्यक्ति निरन्तर उसका दमन करता रहता है । इसी दमन के परिणाम स्वरूप उसकी मनः स्थिति कुण्ठित हो जाती है और कालान्तर में वही कुण्ठा ग्रन्थि का

रूप धारण कर लेती है कि "यह विचार या विचार - समूह है जो भावना के साथ सशक्त रूप से सम्बद्ध होती है क्योंकि उसके जीवन का नैतिक स्तर, समाज की परम्पराएं और रीति - रिवाज उसे अभिव्यक्त करने की स्वीकृति नहीं देतें ।[1]

द्वेत ही तो व्यक्ति और समाज के बीच निरन्तर बढ़ता जा रहा है जिससे व्यक्ति अपने अस्तित्व को खो रहा है । "स्व" और "पर" की नींव उसमें गहरी हो रही है । उसके लिये जैनेन्द्र जी ने जो रास्ता सुझाया है, वह काल्पनिक इसलिये है कि हम उस पर द्वेत स्थिति में या किसी एक पक्ष के होकर विचार कर रहे हैं । विदेशों में विवाह संस्था प्रश्न - चिन्ह बन ही चुकी है । हमारे यहां भी रोजमर्रा वैवाहिक - जीवन की विसंगतियों से घबराकर पति - पत्नी दोनों अथवा दोनों में से एक आत्म हत्या का रास्ता स्वीकार करने के लिए बाध्य हो रहे हैं । जैनेन्द्र की दृष्टि अनागत में वर्तमान की समस्याओं को लेकर ठहराती है, वे विचारते हैं :

"नये विवाहों की विफलता की कहानियां इतनी ज्यादा कानों पर आती हैं कि सोंचता रह जाता हूँ कि इस विवाह संस्था का आगे भविष्य क्या है ।"[2]

जैनेन्द्र का चिंतन - मनन जिस ऊँचाई पर पहुँच चुका है, हो सकता है, समाज को वहां तक तो उठाना असम्भव हो, परन्तु हमारे सामने यह लक्ष्य तो सदैव हमें अनुप्रेरित करता रहेगा । ध्यान तो रहेगा कि हमने कहां पहुँचना है । हम प्रयत्नशील तो बने रहेंगे और उससे कुछ ऐसे परिवर्तन

" The complex is an ideas or a group of ideas Strongly tinged with emotion that is repressed by the individual because his standard of moral and the customs of his community do not permit its expressions.
- Elements of Educational Psychology By: H.R Bhatia, 1953, P.266

2- विवाह और व्यक्तित्व : इतस्तत : जैनेन्द्र : पृष्ठ - 50

भी बराबर होते रहेंगे और जिससे मानव - जाति, मुक्ति - भाव का अनुभव कर सके ।

जैनेन्द्र के सत्य को जीवन में केन्द्र माना है । जैनेन्द्र जी की धारण है कि सत्य के आग्रह में आत्मा व प्रेम का बल होगा । त्यागपत्र की नायिका मृणाल के निरन्तर ह्रासोन्मुख होने में भी आत्मा का तप है, जो उसे पतित से पावन बना ले जाता है । "कर्म सत्याग्रह में से जन्म पाता है । गति और वेग सब वहां से आता है । अहिंसा के योग से जो होता है सो यह कि उस क्रम में बन्धन नहीं पैदा होता और उस गति से स्थिति में भंग नहीं आता । लेकिन स्पष्ट रहना चाहिये कि केवल अहिंसा वेग को खाती है, जीवन की क्षमता के लिये सत्य का आग्रह अनिवार्य धर्म होता है ।[1] अन्तिम रूप से और दो शब्दों में यों कह सकते हैं कि मनुष्य का जब सब कुछ हार जाता है तब प्रेम में परमात्मा के हवाले अपने को छोड़ देने का नाम सत्याग्रह है । प्रेम में छोड़ना यानी अहम् जीवन को विसार रहना और परम् जीवन के प्रति आहुति हो रहना ।[2]

कल्याणी में प्रेम की व्याख्या इस प्रकार है : और प्रेम ? प्रभु प्रेम ही सत्य है, बाकी प्रेम माया है । उस पर घर नहीं बन सकता । जैसे रेत पर दीवार नहीं उठ सकती प्रेम सदा बेघर हैं । घर उजाड़ते उसे देखा है । घर बसाये वह भी क्या प्रेम है ? घर में घिरा कि वह उड़ा । प्रेम गगन बिहारी ही हैं, मुक्त होकर ही वह है । बांधने से ठहरता नहीं । इससे प्रेम की बांध से बचो । प्रेम के गीत भले । उसका राग मन में बसाए रखो पर उसके करने में खैर नहीं ।[3]

1- सत्याग्रह : अकाल पुरूर्ष गांधी : जैनेन्द्र : पृष्ठ - 101

2- सत्याग्रह : अकाल पुरूष गांधी : जेनेन्द्र : पृष्ठ - 102

3- कल्याणी : पृष्ठ - 18

समझना कठिन है कि जैनेन्द्र की व्याख्या प्रेम को चुनौती की तरह वरण करने की प्रेरणा होती है या उससे विरक्त करती है । कठिनाई यह है कि जैनेन्द्र राग पक्ष में तो हैं ही । यह सब जैनेन्द्र के दृष्टिकोण को एक गूढ़ अबूझ दर्शन बनाता है । कल्याणी अपने पति के प्रेम की व्याख्या कुछ कम रहस्यमय ढंग से नहीं करती, "मैं अपने ऊपर उनके प्रेम के आवेग को जानती हूँ । प्रेम करते हैं, इसी से मार तक सकते हैं । .... डाक्टर मुझे प्रेम करते हैं, कुछ अन्यथा करेंगे तो प्रेम के ही कारण ......।[1]

सुनीता में जैनेन्द्र ने स्त्री पुरूष के वैवाहिक तथा विवाहेतर सम्बन्धी की समस्या को प्रस्तुत किया है । उपन्यास में श्रीकान्त और सुनीता पति - पत्नी हैं । लेखक उनके वैवाहिक जीवन में, एक असाधारण स्थिति की कल्पना करके चला है । ये दोनों स्वस्थ्य, सुन्दर हैं और परस्पर अनुरक्त और कर्तव्यशील है । श्रीकान्त उदार तथा भावुक प्रकृति का व्यक्ति है, वकालत के व्यवसाय में उसकी सन्तोषजनक आय है । सुनीता पढ़ी - लिखी तथा अच्छे स्तर के सुसंस्कृत परिवार की लड़की है । इतना सब होने पर भी विवाह के लिये तीन वर्षो के भीतर वे परस्पर एक रिक्तता का अनुभव करने लगे हैं । सुनीता अनिन्द्य यौवन सुनीता घर का सभी काम काल स्वयं अपने हाथों से करती है । उस समय श्रीकान्त अपने आपमें एकाकी को सामने दीवार में एकटक देखते हुए एक सांस लेता है और उठकर टहलने लगता है । और काम कर चुकने के बाद सुनीता कमरे में हुई तो सामने दीवार में एकटक देखती हुई एक भरी सांस लेती है, दूसरी लेती है और फिर झटपट और किसी नये काम को ढूँढ डालती है और उसमें लग जाती है ।[2] बहुत उनके वैवाहिक जीवन में आए इस विचित्र अभाव के विषय में उपन्यासकार लिखता है - "श्रीकान्त चाहता है, घर में कुछ ऋतु बदले,

---

1- कल्याणी : पृष्ठ - 88-89

2- सुनीता : पृष्ठ - 7

नहीं तो वहां असलता और जड़ता सी छाती जाती है । बहुतेरी बार ऐसा हो गया है कि एक कमरे में होने पर भी कोई मिनट तक उसे सुनीता से कहने को कुछ नहीं सूझा है, और सुनीता भी चुपचाप रही है । तब दम घुट - घुट गया है । ऐसा क्यों हो जाना चाहिये, इसका कोई समर्थन कोई कारण उसके मन को नहीं मिलता ।[1]

सुनीता तथा श्रीकान्त के पारस्परिक सम्बन्धों में नैसर्गिक ऊष्मा का जो अभाव तथा उदासीनता है, उसका कोई सुनिश्चित, सुस्पष्ट कारण उपन्यासकार ने प्रस्तुत नहीं किया है । उसने उनके वैवाहिक जीवन में भाव - शून्यता की स्थिति, स्वतः कल्पित कर ली है । उनकी उदासीनता के मूल में किसी प्रकार के काम - विक्षोभ (सेक्स - शक्ति) की स्थिति की संभावना भी उचित नहीं जान पड़ती । इस प्रकार का विक्षोभ स्त्री में जड़ता (ओवर सेक्सुआलिटी) या काम के अस्वाभाविक, नितान्त दमन के फलस्वरूप जड़ हो सकती है । इस प्रकार की किसी भी स्थिति का संकेत सुनीता के जीवन में प्राप्य नहीं है । श्रीकान्त तथा सुनीता के सम्बन्धों में उत्पन्न अवसाद का कारण किसी यौन कुण्ठा की अपेक्षा, उनके जीवन व्यतीत करने के दृष्टिकोण में खोजना उचित होगा । दोनों के जीवन में एक रसता है । प्रकृति या समाज का सम्पर्क पाकर किसी परिवर्तन, किसी ताजगी की अनुभूति उन्हें नहीं हो पा रही है । जीवन - प्रवाह बहते - बहते कहीं बंध गया है । उसे खुलना चाहिये । जीवन को कुछ वहिर्गमन मिले, और घर के भीतर की गृहस्थी को घर के बाहर की दुनिया का अधिक और संसर्ग,अधिक और संघर्ष मिले तो शायद कुछ रस की सृष्टि हो, चैतन्य जागे । यदि यही स्थिति दीर्घकाल तक चलती रहती तो इसका दुष्परिणाम वही होता जो अज्ञेय की सुप्रसिद्ध कहानी, "रोज" के प्रति पत्नी का हुआ था । उदाहरण के लिये, सुनीता के मन में कई बार कई

1- सुनीता : पृष्ठ - 11

फिल्में देखने की बात भर गई है । उसके जी में बहुत है कि यह जो उसके बाहर होकर दुनियां फैली है, वह यह सब कुछ देखे, सभी कुछ देख डाले । पर पति के अनुगमन में वह भी विश्व की ओर से मुंह फेरकर अन्तर्मुखी होने की महत्ता पर चित्त लगाती रही है ।

जैनेन्द्र के त्यागपत्र की मृणाल में अहम् है और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह किसी अन्य को आघात नहीं पहुंचाती, वरन् आत्मपीड़ित होती है । उपन्यास के आरम्भ में ही मृणाल की इस प्रवृत्ति की एक घटना से परिचय मिलता है । स्कूल में मास्टर अपनी कुर्सी की गद्दी में पिन चुभोकर रखने वाली लड़की या नाम जानना चाहता है, सब लड़कियों के सह में बैठे रहने पर वह एक - एक को पीटने की धमकी देता है । लड़कियों का इस प्रकार भयभीत होना मृणाल को बुरा लगता है । वह आगे बढ़कर उस शरारत का उत्तरदायित्व स्वयं स्वीकार कर लेती है, यद्यपि शरारत वास्तव में शीला की थी । हथेली पर बेतों की मार खाने पर वह न रोती है और न क्षमा मांगती है और सोंचती रही कि एक बार तो मैं भी सचमुच का कसूर करके देखूँगी । इस तरह दण्ड तथा अत्याचार के आतंक से भयभीत न होकर आगे बढ़कर अपराध को ओढ़ लेना मृणाल का स्वभाव है ।

मृणाल, शीला के भाई से प्रेम करती है और अपनी भाभी से दण्ड पाती है । वे मेल पति से विवाह हो जाने पर कष्ट उठाती हैं किन्तु चूँ नहीं करतीं । उसकी कुण्ठा आत्मपीड़न के मार्ग पर चलकर आत्मघात को वरण करने के लिये तत्पर है । प्रेमी का ध्यान उसने सदा के लिये त्याग दिया है, किन्तु उस विगत कथा को अपने पति को सुनाकर वह स्वयं को विपत्ति के मुंह में झोंकती है । उसने घर से ठोकर खाकर, ससुराल में जाकर कष्ट उठाया है और अब ससुराल से निष्काषित हो विशाल जगत् क्षेत्र में ठोकरें खाने का निर्णय कर लिया है । उसमें सामाजिक रूढ़ियों और मान्य ताओं के लिये तीव्र प्रति हिंसा का भाव है । वह कोयले वाले में अपने

प्रति आकर्षण अनुभव कर उस पर "करूण" हो उसे समर्पण करती है । जानती है, वह धोखा देगा । मृणाल उसका "नशा" उतर जाने पर उसे उसके घर लौटा देना चाहती है । अपनी इस गतिविधि को मृणाल "पातिव्रता - धर्म" की संज्ञा देती है । मृणाल का अहम् समाज की परिपाटियों को अस्वीकार कर उन्हें नयी परिभाषा देता है और इस क्रान्ति का मूल्य, निज के बलिदान से चुकाता है । मृणाल सहर्ष समाज की उच्छिष्ट बनना पसन्द कर सकते हैं, उन्हीं को जीवन के साथ नये प्रयोग करने की छूट हो सकती है । वह अपने कार्यकलाप को आदर्श का रूप देकर, वस्तुतः अपनी असामान्यता को तर्क संगत बनाती है (रिशनलाइज) करती है ।

कल्याणी नामक उपन्यास में कल्याणी सुनीता और मृणाल जैसी घरेलू स्त्रियों से भिन्न हैं पर वह कमाऊ स्त्री है । उसकी मनोव्यथा इनसे कहीं बढ़कर है । वह सुनहरे और सुयोग्य है । असरानी ने कल्याणी की कौमार्यावस्था में उसे झूठे ही बदनाम करके चारो ओर से घेरकर उसकी विवशता का लाभ उठा स्वयं उससे विवाह कर लिया है । कल्याणी का वैवाहिक जीवन अत्यन्त दुःखद है । पति की स्वार्थममता, पाशविक मनोवृत्ति उसे पग - पग पर चुभती है । कल्याणी सब कुछ सहन करती है साथ ही उसमें मृणाल (त्याग पत्र) जैसा अहम् भी है । वह अत्याचारों के आगे घुटने नहीं टेकती, वरन् समय - समय पर अत्याचारी की हिंसा को चुनौती देकर और भी कष्ट उठाती है । वह अपने शक्की पति के सामने जान बूझकर डाक्टर भटनागर की प्रशंसा करती है, पति को कोप भाजन बनती है और उससे लांछित, अपमानित होती है । अपने लिए आयोजित समारोह में पति की इच्छा के अनुसार न पहुँचकर पति द्वारा जूतों से पिटती है ।[1]

उपन्यास में कल्याणी की मानसिक दशा का प्रत्यक्ष उद्घाटन नहीं है, केवल उसके लक्षणों का संकेत मिलता है । कल्याणी के आचरण वैचित्र्य

1- कल्याणी : देखिए : पृष्ठ - 35-37, 99

के तल में उसका अव्यवस्थित मन है, जिसके विषय में वह स्वयं कहती है - "मेरे मन के भीतर का अंधेरा बाहर आएगा तो वह तुमको अच्छा नहीं लगेगा । उसे कुरेदने में क्या है ? उसे मूर्छा ही रहने दो ।[1]

कल्याणी में विषादोन्माद (मिलन कालियां) के लक्षण स्पष्ट हैं । उसके आत्म दमन तथा आत्मपीड़न के फलस्वरूप, उसके मन में स्थायी रूप से विषाद रम गया है । कभी उसमें उत्कट अवसाद आता है और कभी रह उल्लास तरंगों से प्रफुल्लित हो जाती है । उसके मानसिक आवेग से सम्पूर्ण उपन्यास ओत - प्रोत है । मनोविश्लेषण सिग्मण्ड फ्रायड के अनुसार मेलन कालियां के आक्रमण के समाज पीड़ित व्यक्ति का सद्विवेक या नैतिक अहम् (सुपर ईगो) उसकी चेतना (ईगो) के प्रति अत्यन्त कठोर हो जाता है । वह उसे दुरदुराता और पददलित करता है । वह उसके विगत विस्मृत साधारण कर्मो को स्मरण कराके उन्हें दुष्कर्म का रूप देता है । उन कल्पित दुष्कर्मो के लिये उसे रह - रहकर अपराध - भावना से पीड़ित करना है । मनोरोग के आक्रमण काल से पूर्व मनुष्य का सद्विवेक लुप्त रूप से इस प्रकार के आरोप अर्जित करता रहता है और आक्रमण काल में विस्फोटक रीति से उन्हें व्यक्त करता है । आक्रमण - काल बीत जाने पर पीड़ित व्यक्ति अगले आक्रमण तक बिलकुल सहज रहता है ।[2]

पीड़ित व्यक्ति स्वयं में अनेकानेक दोषों और आभावों की कल्पना करता है और कहता फिरता है कि वह अक्षम्य अपराधी है, यद्यपि उसे निश्चित रूप से ज्ञात नहीं करता कि उसका अपराध क्या है ? वह अपने लिये भांति - भांति के दण्डों और प्रायश्चितों की व्यवस्था करता है, फिर उनके आतंक से सिहर उठता है । उसे अपना इहलोक और परलोक पीड़ामय दीखता है । उसमें निरन्तर बेचैनी, अस्थिरता, पश्चाताप, अवसाद, अनिद्रा,

---

1- कल्याणी : पृष्ठ - 65

2- फ्रायड : डिक्शनरी आफ साइकोएनेलिसिस (मैलनकालिया - पृष्ठ - 110)

कष्टप्रद स्वप्न देखने तथा आतंकित करने वाले मिथ्या प्रत्यक्षीकरण (हेल्यूसिनेशन) के लक्षण उभरते हैं । कभी -- कभी उसमें उत्फुल्लता का आवेग आता है । उस समय वह असाधारण बड़प्पन और महानता की भावना से भार उठता है, अपनी सामर्थ्य में बढ़ - चढ़कर विश्वास करता है । वह स्वयं को अपूर्व पुरूषार्थी अनुभव करता है, शेखी बघारता है और बड़ी - बड़ी योजनाएं बनाता है ।[1]

"मैलनकालिया" के उपर्युक्त सभी लक्षण कल्याणी में भलीभांति द्रष्टव्य हैं । वह अंग्रेजी पढ़ी होने तथा डाक्टरी व्यवसाय में लोगों से मिलने - जुलने के कल्पित आधार पर स्वयं को बार बार दुश्चरित्रा कहती और अनुभव करती है । अपराध - भावना और ग्लानि से वह बुरी तरह ग्रस्त है । वह विषादावेग में कह उठती है - "मैं पापिष्ठा हूँ, मुझे मत छुओ । मुझे कोढ़ क्यों न हुआ ? धर्म के लायक में नहीं हूँ । .... मैं नफरत नहीं चाहती, प्रेम नहीं चाहती, अरे मुझे अकेला छोड़ दो । अकेली मरने दो ।[2] प्रायश्चित की भावनावश उसने अपनी दिनचर्या बड़ी कठोर, कष्टकर बना ली है । दिन में चार बार स्नान, चार घण्टें पूजा । सबेरे चार बजे सोकर उठना, ठण्डे जल से स्नान करना । अस्पताल में प्रातः सात से अपरान्ह दो - तीन बजे तक रोगियों को देखना, स्नान और पूजन करना, तब दिन का एक बार का भोजन ग्रहण करना । सप्ताह में एक या दो उपवास करना अपनी या घर के लोगों की भूल पर और अधिक उपवास करना । उसे अंग्रेजी संस्कृति पर प्रकोप है और इस विषय पर तथा स्त्री कर्तव्य जैसे विषयों पर वह गंभीर लेख लिखती है । कल्याणी को विश्वास हो चला है कि उसकी शीघ्र और भयावनी मृत्यु होगी । उसे रात्रि में किसी पुरूष द्वारा स्त्री को गला घोंटकर मार डालने के दृश्य का मिथ्या प्रत्यक्षीकरण होता है ।

1- एनआउटलाइन आफ एवबनार्मल साइकालॉजी, पृष्ठ - 355-36।

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 107

दूसरी ओर उल्लास के क्षेत्रों में वह बहुत प्रफुल्ल सजीव हंसमुख दीख पड़ता है । वह "भारती तपोवन" बनाने की विशद योजना प्रस्तुत करती है । और योजना को कार्यान्वित करने के लिये अपनी सामर्थ्य पर बढ़ चढ़कर विश्वास करती है । अन्ततोगत्वा कल्याणी की मृत्यु हो जाती है ।

विवर्त में मानवीय कुण्ठा का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत हुआ है । उपन्यासकार लिखता है - "एक लय में वेग होता है व्यवस्था नहीं होती । वेग ही अपनी टक्कर से कहां रोध पैदा कर लेता है । संयम उसे नहीं कहेंगे, कुंठा कहेंगे । शान्ति उससे नहीं मिलती, विफलता और विफलता हाथ आती है ।[1] उपन्यास में धनिक - पुत्री, सुन्दरी युवती भुवन मोहिनी अपने प्रेमी जितेन को हानि भावना लक्ष्य कर लेती है । फलस्वरूप मोहिनी का विवाह बैरिस्टर नरेश चन्द्र से हो जाता है और कुंठित जितेन, हाथ का काम - धन्धा छोड़कर, क्रान्तिकारी बन जाता है । चार वर्ष उपरान्त जितेन पंजाब मेल उलटने के लिये उद्योग में घायल फरार के रूप में मोहिनी के पति - ग्रह में शरण लेता है । वह मोहिनी की आंखों के सामने स्वयं भरपूर कष्ट उठाकर, उससे उसके द्वारा हुई अपनी उपेक्षा का बदला लेना चाहता है । मोहिनी की सेवा सुश्रूआ पाकर भी इसीलिए वह बात - बात पर जली - कटी सुनाता है और स्वयं को पुलिस के हाथों, में मृत्यु के मुंह में झोंक देने की तत्परता प्रकट करता है । मोहिनी जितेन की अस्तव्यस्तता के मर्म को भलीभांति समझती है । वह उसकी पीड़ा को कम करना, बांट लेना चाहती है । वह उससे अनुनय करती है - फाँसी (घोर आत्मपीड़न) क्या तुम इस वक्त भी नहीं पा रहे हो ? असल फांसी यही है । तुम इस निरन्तर फाँसी से बच क्यों नहीं जाते ।[2]

1- जैनेन्द्र : विवर्त : पृष्ठ - 9

2- विवर्त : पृष्ठ - 29

जितेन मोहिनी से कहता है - "तुमसे कहता हूँ कि लो, आओ, मुझे मिटा दो । तुम में हिम्मत नहीं है तो मैं क्या करूँ । मोहिनी, एक को मिटना होगा । .... मुझको न मिटाओगी तो अब फिर कहता हूँ कि तुम्हारा घर मिटेगा ।[1] कुंठित प्रेमी जितेन, मोहिनी का घर नहीं मिटाना चाहता है, और न मिटा पाता है, वह स्वयं मिटता है । उसकी ओर मोहिनी के बीच "अमीरी" आ जाने के कारण वह अमीरी का शत्रु क्रान्तिकारी हो गया है । धन - प्राप्ति के लिये वह मोहिनी को उसके घर से उठाकर क्रान्तिकारी - शिविर में ले जाता है । उसे बन्दी रूप में रखकर कष्ट देने का प्रदर्शन करता है । मोहिनी जितेन की कठोरता के अभिनय के मर्म को खूब समझती है ।[2] उसकी जोर - जबरदस्ती, मोहिनी का बाल - बांका नहीं करना चाहती है तब कार्य वास्तव में, जितेन के आत्मपीड़न के विस्फोटात्मक वाह्य लक्षण हैं । वह जानती है कि जितेन उसे कष्ट देने का अभिनय करके स्वयं मर्मान्तक पीड़न वहन कर रहा है, उस समय वह जितेन के पैरों को जो चूमती, सुसकती है, उस क्रिया में मोहिनी की आत्मरक्षा या आत्म-समर्पण की भावना नहीं है । वह वस्तुतः जितेन के दारूण आत्मपीड़न को अनुभव कर, करूणा से भर उठी है । वह उसे रूठे बालक को किसी प्रकार मनाकर प्रायश्चित करके उसके अन्तर्मन में पैठी हीन भावना को हर लेना चाहती है । डा० सुषमा धवन ने नारी, मोहिनी के निरीह समर्पण को जुगुप्सा मय माना है । उनके अनुसार, इस भौड़े रूप का चित्रण कला के सौन्दर्य को कम कर देता है ।[3] इन पात्रों के कार्य व्यापार को नैतिक या सामाजिक

1- विवर्त : पृष्ठ - 57-58

2- मोहिनी अनुभव कर सकी कि इस समय वह जितना ही ऊपर से तना है उतना ही भीतर से कातर है । जब तक जानता है कि मैं यहां हूँ चाहे अनन्तकाल तक ही क्यों न होऊं वह तनाव ढीलान होगा । रह रहकर उसे बालक के समान रूठे उस व्यक्ति के प्रति संवेदना होती । विवर्त : पृष्ठ - 39

3- हिन्दी उपन्यास : डा० सुषमा धवन : पृष्ठ - 194

दृष्टि से परखने पर पाठक की ऐसी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है । किन्तु जैनेन्द्र के पात्रों के अन्तर्जगत की गतिविधि को दृष्टि में रखते हुये उनके कार्यकलाप को गौण तथा लाक्षणिक महत्व देना ही मुक्ति संगत है । यह कार्यकलाप मात्र वाह्य आवरण है । पात्रों की भावना को समझ लेना पर उनके मर्म को पा लेने पर, पाठक उनकी अटपटी क्रिया पर चौंकता नहीं, वरन् भावना तथा आचरण के मध्य कार्य - कारण सम्बन्ध स्थापित कर कथा के अर्थ पा लेता है । जैसा कि कहा जा चुका है प्रस्तुत प्रसंग में मोहिनी का निरीह समर्पण केवल जितेन के प्रति समवेदना एवम् करूणा के प्रबल विस्फोट का द्योतक है ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक संकल्पनाएं :-

जैनेन्द्र जी की यह मान्यता है कि समाज की गुत्थियों और समस्याओं का समाधान भौतिक अधिकार से सम्भव नहीं है, उसमें आत्मा का तप चाहिये । आध्यात्मिक आधार ही मनुष्य की समस्याओं का खोज कर लेता है । भौतिक आधार उसमें मात्र साधन है । समाज की वर्तमान स्थिति दयनीय है । उसके लिये सुधार तथा परिवर्तन की जरूरत है, जो मनुष्य से प्रारम्भ की जानी चाहिये । क्योंकि "व्यक्ति की नीति - निष्ठा ही समाज की शुद्धि का कारण होती है ।[1] यहां वह मनुष्य को समाज का केन्द्र स्वीकार करते हैं ।

व्यक्तिगत तथा सामाजिक कर्तव्य आज अलग - अलग सामने आ रहे हैं । समाज दायित्व अथवा कर्तव्य का निर्णय खुद मनुष्य नहीं ले सकता, वह तो समाज शासक से आएगा, क्योंकि उस पर मनुष्य का नहीं वेमपेचर स्टेट का अधिकार है ।

1- समय और हम : पृष्ठ : 443

"जहां से नियन्त्रण और नियमन चलता है, उन्हें ही अधिकार है कि समाज - कल्याण का फैसला करे और उस पर पहरा रखे । अर्थात् सामाजिक हित एक वह तत्व बन जाता है, जो व्यक्ति - मान्स से स्वतन्त्र है या उस पर दबाव लाता है । इस तरह व्यक्ति की अस्मिता को उलटे चोट मिलती खुराक मिलती और शासन अथवा समाज के प्रति समर्पित होने के बजाय वह अनायास शासन मुक्त और समाज मुक्त होना चाहने लगती है । फलस्वरूप मनुष्य तथा समाज में यह द्वेत बढ़ते - बढ़ते आगे चलकर तनाव व विग्रह में फटने फूटने लगता है । "समाज और व्यक्ति, जो एक हीं सत्यता के अंग हैं, समाजवादी और व्यक्ति, प्रसाद से मानो उसके बीच का सूत्र छिन्न - भिन्न हो जाता है और वे दो अलग - अलग सत्य जैने जान पड़ते हैं ।[1]

दरअसल जैनेन्द्र इस द्वेत को पाटना चाहते हैं । क्योंकि सामाजिक विदूर्यों तथा विसंगतियों का कारण वही है । वे इस तरह से न व्यक्तिवादी रह पाते हैं और न समाजवादी । "वाद" में वह रह नहीं सकते । बुद्धि उनकी द्वेत पर ठहरे तो कैसे जब आत्मा को वह स्वीकार्य न हो । वह व्यक्तिवादी विचार को इतना अवकाश देना नहीं चाहते कि जिससे वह अपने को उच्चासन पर प्रतिष्ठित कर ऊपर को नकार दे या हीन समझे । अतः वे अनिवार्य स्वीकार करते हैं कि "सामाजिक और सामष्टिक सन्दर्भ में हम व्यक्ति को रखकर देख सकेंगे । तभी समत्व योग सध सकेगा । समदार्शित पाकर मानो हम तभी रागद्वेष पूर्ण आसक्तियों से ऊपर उठ सकेंगे ।[2] जैनेन्द्र जी समत्व योग मनुष्य और समाज अर्थात् परस्पर मनुष्यों के सहयोग को समाज और मनुष्य दोनों के हित में स्वीकार करते हैं । समाज तथा मनुष्य की एकाकारिता सामाजिक समस्याओं का सहज तथा श्रेष्ठ निदान है ।

1- समय और हम : पृष्ठ - 443

2- समय और हम : पृष्ठ : 443

जैनेन्द्र जी ने अपने कथा साहित्य में मध्यम वित्त परिवार तथा उसकी सामाजिकता पर गहराई से प्रकाश डाला है । उनको मनुष्य तथा समाज दोनों की चिन्ता है । वे दोनों में समन्वय ऐसा चाहते हैं कि द्वेत जाता रहे । मार्क्स - लेनिन स्टालिन द्वारा और उनके इज्म द्वारा और मेरे तुम्हारे द्वारा हर तरफ प्रेम को सार्थक होना है । अरे - अरे सब करना धरना क्या इसी में समाया-नहीं है । इस तरह वे प्रेम में दोनों को अद्वैत होता देखते हैं ।

जैनेन्द्र जी के इन सामाजिक संकल्पनाओं के प्रति शंकालु और नकार देने वाली समीक्षक कम नहीं हैं । वे स्वीकार नहीं करते ऐसा होता है । वे इसे धरातल से ऊपर काल्पनिक आदर्शक लोग में उड़ने वाली कहानियां स्वीकार करते हैं । जिस तरह ऐ उच्चतर प्रेम को जैनेन्द्र जी इस समस्या का हल स्वीकार करते हैं, पता नहीं वह कहां है ? तथा पता नहीं जिस स्थिति की वे कल्पना करते हैं, वह कभी इस देश की धरती पर अवतरित होगी भी या नहीं ?[1] कुछ समीक्षक उन्हें प्रतिक्रियावादी स्वीकार करते हैं । वे उन्हें राजनीति से जैसे पलायन करना पड़ा वैसे से साहित्य से पलायन करता पाते हैं क्योंकि उनकी सामाजिक धारणायें जीवन की सच्चाई ने दूर जा पड़ी है । उनकी धारणा है कि जैनेन्द्र जी स्वतन्त्र मन तर्कवाद का निरूपण करते हैं । डा0 नन्द दुलारे बाजपेयी ने निष्कर्षात्मक ढंग से कहा है कि रचना के क्षेत्र में जैनेन्द्र न तो गांधीवादी है और न आदर्शवादी है । वे एकान्तिक भावुक और कल्पना - जीठी लेखक है, जो वास्तविकता के प्रकाश में धूमिल दिखाई देते हैं ।[2] किन्तु उनको मात्र काल्पनिक तथा भावुक बताकर नकार देना अन्याय होगा । जैनेन्द्र जी कल्पना को सत्य व यथार्थ से बाहर नहीं मानते हैं । उनके कथा - साहित्य मे तो करूणा की भागीरथी प्रवाहित हो रही है तथा उनके निबन्धों में स्पष्ट तथा सीधे बात जिसमें कोई रहस्यात्मकता

1- हिन्दी निबन्धों का ऐलगिल अध्ययन : डा0 मुम्ब0 शाक : पृष्ठ - 382

2- जैनेन्द्र कुमार : जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और वृतित्व : पृष्ठ - 59

नहीं है । उन्होने जो समाधान प्रस्तुत किये हैं, उनमें मत वैभिन्य मिल सकता है किन्तु समस्याओं की तह में उतरकर उसका जैसा विश्लेषण किया है, वह यथार्थ है । सत्य, प्रेम, अहिंसा, सत्याग्रह, अहम् का परिष्कार समर्पण आदि आध्यात्मिक क्षेत्र के भी है, जिनसे वे भौतिकता ग्रस्त, प्रपीड़ित और मानव जाति का उद्धार करना चाहते हैं । वे किसी "वाद" में उसके होकर नहीं रहे इसलिये वे भावुक और कोरे काल्पनिक ठहराये जाएं, यह कहां तक युक्तिसंगत है । व्यक्ति तथा समाज का समन्वय न हो तो संस्कृति को कोई शक्ति नहीं है जो दोनों का एक साथ हित चिन्तन कर सके ।

हमारे समाज - सुधारकों का यह विचार था कि "यदि भारतीय समाज का उत्थान करना है, तो नारी - उत्थान के बिना यह सम्भव नहीं है । नारी मां है, मां के शिक्षा के बिना सन्तान कभी सुयोग्य नहीं बन सकती और बिना सुयोग्य संतान के इस देश का उद्धार संभव नहीं है । अपने इस विचार को कभी सुधारकों ने व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया है । उनका ध्यान नारी - जीवन की दयनीय स्थिति पर केन्द्रित रहा । जैनेन्द्र ने भी सामाजिक संकल्पनाओं में नारी - समस्या को प्राथमिकता दी है । जैनेन्द्र जी ने सामाजिक मर्यादाओं तथा नैतिकता के संकीर्ण घेरे को तोड़ने का साहस किया है । जैनेन्द्र जी ने घर बाहर की समस्या को साहस के साथ प्रस्तुत किया है । लेकिन इस स्वाधीनता के पीछे से बस स्वतन्त्रता अधिक है, भरा - पूरा स्वस्थ जीवन कम । जैनेन्द्र से लेकर अज्ञेय तक यही हाल है । जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारियां मूलतः पतिव्रता हैं ।

भारतीय समाज में विधवा प्रथा, दहेज, सुपत्नी, अनमेल विवाह इत्यादि कई कुप्रथाओं से ग्रस्त नारी को जीवित रखने के लिये वैश्यालय ही अन्तिम शरण, अनेक मनोवैज्ञानिक असंगतियां उत्पन्न हुई । लेकिन इस प्रथा के लिए सबसे बड़ा उत्तरदायित्व विषम आर्थिक समस्याओं पर रहा है । पुरूष के बिना नारी, सामाजिक रूप से ही नहीं, आर्थिक रूप से भी पूर्णतः

सुरक्षित नहीं है । पितृ - प्रधान समाज ने नारी को सिर्फ मातृ तथा गृहणी पद लेकर उसे शेष सभी अधिकारों से वंचित कर दिया गया । भारतीय समाज में नारी वर्ग की स्थिति सम्मानपूर्ण बन्दी से कम नहीं रही । नारी के लगातार शोषण के लिये धर्म, नैतिकता तथा सामाजिक मूल्यों में भी समय - समय पर परिवर्तन किये जाते रहे है ।

जैनेन्द्र जी ने "परख" (1929) में सामाजिक समस्याओं के चिन्तन की एक नवीन दिशा का संकेत दिया । अब तक सामाजिक संकल्पनाओं के चिन्तन की एक नवीन दिशा का संकेत दिया है, सन्दर्भ में व्यचित का मूल्यांकन किया जाता था । इस उपन्यास में व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक संकल्पनाओं को मूल्यांकन का प्रयास किया गया है । जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से हिन्दी उपन्यास में व्यक्तिवादी चिन्तन धारा को जन्म दिया । जैनेन्द्र जी ने सुधारवादी मार्ग को अव्यावहारिक बताया लेकिन स्वयं कोई उचित समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके । अब तक हिन्दी उपन्यास की विधवाएं इतनी निरीह थीं उन्हें जिस स्थिति में डाल दो, उसमें पड़ी रहती थीं, किसी ने विद्रोह नहीं किया । भाग्य का दोष तथा देवी प्रकोप स्वीकार कर वे नरक में शान्ति पूर्वक अपना जीवन गुजार देती थीं ।

जैनेन्द्र जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि बिना वैयक्तिक प्रश्नों के किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता । उन्होने विधवा समस्याओं को मनोवैज्ञानिक कसौटी पर भी परखा । "परख" की कट्टो, विधवा होने पर भी सत्यधन से प्रेम करती है । वह सामाजिक मान्यताओं से विद्रोह करती है तथा लेखक उसे पूरी सहानुभूति देता है । परन्तु लेखक अपने इस विद्रोही दृष्टिकोण तथा क्रान्तिकारी विचारों को अन्त तक निभा नहीं पाया है । इस समस्या का अन्त अत्यन्त अध्यात्मवादी रहस्यवादी ढंग से करता है । जिस उद्देश्य के साथ लेखक ने इस समय के मूल को पकड़ा था, वह अन्त में निराकार में विलीन हो जाती है । जैनेन्द्र जी के

दर्शन की यही अन्तिम परिणति और सीमा है । वे ऐसा आदर्श प्रस्तुत करे हैं, जो समाज तथा व्यवहार में संभव नहीं होते हैं ।

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "त्यागपत्र" नामक उपन्यास में अनमेल विवाह के साथ - साथ नारी धर्म की भी व्याख्या हुई है । जैनेन्द्र जी ने समस्या की गहराई से परखने का प्रयास किया है । परन्तु वह प्रश्न चिन्हों के अलावा कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करते । "त्यागपत्र" की मृणाल प्रेम करने के अपराध में एक वृद्ध व्यक्ति से विवाहिता कर दी जाती है । यहां मृणाल के अनमेल विवाह का कारण आर्थिक नहीं है । उसके मूल में सामाजिक संस्कार की भावना ही निहित है । वह जागरूक नारी है, इसलिये "नये घर" से समझौता न कर सकी और प्रायः वह अपने पति के हाथ बेतों से मार खाती है ।[1] मृणाल हमारी सामाजिक व्यवस्था में नारी के व्यक्तित्व की स्थिति का प्रश्न उपस्थित करती है । शादी होने पर उससे परम्परागत पतिव्रत धर्म निभाने की अपेक्षा की जाती है । वह नवीन वातावरण के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास करती है । परन्तु उसके पति को जब यह ज्ञात हो जाता है कि वह शादी से पहले किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करती है, तो वह उसे घर से निकाल देता है ।[2]

पुरूष कितना शंकालु और व्यक्तिवादी होता है । स्वयं उसने मृणाल से दूसरी शादी की है, परन्तु दूसरी ओर नारी की शादी से पहले प्रेम करने का अधिकार भी नहीं है । नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्माण को पुरूष सहन नहीं कर पाता । पाठकों की सहानुभूति पाकर भी मृणाल इस अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठा पाती । "मैं समाज को तोड़ना फोड़ना नहीं चाहती । समाज टूटा कि हम फिर किसके भीतर बढ़ेगें, या किसके भीतर बिगडेंगे । इसलिये में इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग यह

1- त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृष्ठ - 28

2- त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृष्ठ - 61

होकर इसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ ।[1] समाज से विमुख होकर यह विद्रोह नकारात्मक हो जाता है । इसी नकारात्मक विद्रोह के कारण जैनेन्द्र जी को कोई नवीन दिशा देने में असमर्थ रहे हैं ।

प्रेमचन्द्र के परवर्ती उपन्यासों में यौन सम्बन्धों का विस्तृत चित्रण प्राप्त होता है । इन लेखकों ने समाज, व्यक्ति प्रेम और यौन सम्बन्धों को नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास किया है तथा इनके चित्रण से मनुष्य को यौन - सम्बन्धी कमजोरियों के प्रति घृणा नहीं, सहानुभूति पैदा होती है ।

जैनेन्द्र जी ने "सुनीता" में एक नारी तथा पुरूष अतृप्त कामवासना को दार्शनिक आचरण में प्रस्तुत किया है । हिन्दी उपन्यास में सुनीता, हरिप्रसन्न तथा श्रीकान्त अपने ढंग के अकेले पात्र हैं । हमारे उपन्यासों में अब तक ऐसा पति नहीं था । जो अपनी पत्नी को अपने मित्र के साथ अवैध प्रेम सम्बन्ध रखने को प्रोत्साहित करे । सुनीता पति की आज्ञा स्वीकार कर हरिप्रसन्न के सामने अपना शरीर को वस्त्र रहित कर देती है । इस पर भी सुनीता पतिव्रता है । पर पुरूष के सामने वस्त्र रहित होने से उसके पातिव्रत धर्म पर कोई जांच नहीं आती । सुनीता से पति - पत्नी के सम्बन्धों को नवीन सन्दर्भ की शुरूआत होती है ।

तपोभूमि का धारिणी अवैध सम्बन्ध से गर्भवती होकर वेश्या हो जाती है, परन्तु फिर भी वह जल में कमल की तरह स्वच्छ है । त्यागपत्र की मृणाल परिस्थितियों से बाध्य होकर अनेक पुरूषों का आध्य लेकर भी महिमा मयी बनी रहती है । सुखदा, पति तथा पुत्र के रहते हुए भी अपने सम्पूर्ण मन से लाल की ओर उन्मुख है । "व्यतीत" की अनिता अपने सफल प्रेमी के जीवन को व्यवस्थित करने की चिन्ता में घुलती रहती है । लेकिन जैनेन्द्र ने इन विद्रोही चरित्रों को उभरने नहीं दिया है, बल्कि उन्हें अहिंसा तथा दर्शन के आवरण से ढकने का प्रयास किया है । इस दिन विधा में जैनेन्द्र न तो विद्रोहिणी नारियों का चरित्र उभारने में सफल हुए हैं तथा न

पत्नीत्व की मर्यादा का निर्वाह ही कर सके हैं । उनकी नारियां कई व्यक्तियों से यौन सम्बन्ध रखने के पश्चात् भी पातिव्रता है । यह जैनेन्द्र के माध्यम वर्गीय विद्रोह की सीमा है जिसे वे दर्शन और कोई तर्क के आधार पर न्यायसंगत तथा युगानुरूप सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के नारी - सम्बन्धी दृष्टिकोण से दो बातें स्पष्ट हो गई । एक तो यह कि सेक्स लोगों के लिये कोई रहस्य नहीं वरन् एक सहज मानवीय प्रवृत्ति है । दूसरे यह कि नारी - सम्बन्धी विशेष नैतिकता और पवित्रतावादी दृष्टिकोण ऊपर से थोपी गई वस्तु है ।

भारतीय समाज में नारी को युगों से ग्रहणी के पद पर प्रतिष्ठित किया जाता रहा है । अतः उसके घर से बाहर आकर असामाजिक - राजनीतिक और सांस्कृतिक मंच पर आने का प्रश्न ही नहीं उठता था । लेकिन आधुनिक भारत में पराधीनता, सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनों ने अन्य पीड़ित वर्गो के साथ नारी को भी सार्वजनिक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया है । नारी धीरे - धीरे सक्रिय राजनीतिक में भाग लेना आरम्भ कदर चुकी है । अब उसे पूर्णरूप से मताधिकार भी प्राप्त हो गये हैं । इस परिवर्तन से सामन्ती नैतिकता से आक्रान्त पारिवारिक संगठन के सामने एक नयी समस्या उत्तरदायित्वों में नारी किस प्रकार सामन्जस्य स्थापित कर । इसके साथ ही नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का प्रश्न भी सामने आया है । पहले राजनीति में नारी के भाग लेने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, सामाजिक क्षेत्र में भी पति ही पत्नी के उत्तरदायित्वों को निभाता था, परन्तु इस नवीन व्यवस्था में नारी ने पति की सर्वोच्च सत्ता तथा सार्वभौमिक अधिकारों के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा दिया है, तथा अन्त में इसकी परिणति घर, समाज, पति तथा वैयक्तिक स्वातंत्र्य संघर्ष में हुई है ।

राजा राधिकारमण प्रसाद के उपन्यासों से लेकर अज्ञेय के उपन्यासों तक अधिकांश राजनीतिक आन्दोलनों के नारी, पुरूष नेता अथवा क्रान्तिकारी

वाहनयुद्ध से थककर जब घर में आते हैं तो वहां अपने को अजनवी पाते हैं । बाहर के आन्दोलन और संघर्ष ने उनहें परिवार के योग्य नहीं रहने दिया है । दूसरी ओर वे पुराने पारिवारिक सम्बन्धों को चाहते हुए भी ऊपर से इन्हें आस्तिक होने का बाना धारण करना पड़ता है इसलिये मूलतः ये सम्बन्ध, सम्बन्ध न रहकर सम्बोधन मात्र रह जाते हैं ।

सिद्धान्त रूप में ये लोग स्वीकार करते हैं कि नारी नारी है । और पुरूष पुरूष, सारे पारिवारिक सम्बन्धों से परे - यही एक सम्बन्ध है । इन लोगों ने आधुनिक शिक्षा प्राप्त की थी, लेकिन पश्चिम की भांति नारी को सार्वजनिक रूप से मित्र या प्रेयसी कहने से डरते थे । इन सम्बन्धों को समाज से स्वीकार कराने का साहस भी इन लोगों में नहीं था । अतः परम्परागत रूप में न भाभी, भाभी थीं, न बहन - बहन । यहां तक कि सूक्ष्म रूप में बुआ भी बुआ नहीं थी । इसी विचित्र स्थिति को न नायक झुठला सकते थे और न स्वीकार ही कर सकते थे । वे नारी और तीव्र काम - चेतना से आकर्षित होते थे और साथ ही उसे बहन इत्यादि की पवित्र गरिमा से मंडित भी देखना चाहते थे । इसी कारण समसामयिक कथा - साहित्य में दीदी प्रेमिकाओं की बाढ़ सी आ गई । हमारे समाज के दुहरे सामाजिक मूल्यों और नैतिकता का इससे अधिक और उपहास क्या हो सकता है ?

नारी इन क्रान्तिकारी देशसेवक नायकों के इस विचित्र मनोभाव को न तो हृदयंगम ही कर पा रही थी और न पूर्णतः अस्वीकार ही कर पा रही थी । नारी को इस उलझन का अर्थ इन लोगों ने, उसे एक विचित्र पहेली और आदि - शक्ति मानकर किया । ये लोग उसे मानवी के रूप में स्वीकार नहीं कर सके । नारी इस स्थिति से ऊब गई और इसी झुंझलाहट और बेवसी की स्थिति में उसे कई जगह अनावृत्त होना पड़ा । जैनेन्द्र की सुनीता (उपन्यास की नायिका) इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है ।

इस प्रवृत्ति ने मनुष्य को रोमांटिक बना दिया है । ये सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित किये बिना ही अपनी सम्पूर्ण मुसीबतों का समाधान करना चाहते थे । नारी कहीं भी रहे, उसकी किसी के साथ शादी हो, पुरूष कहीं हो, उसकी कोई पत्नी हो, परन्तु ये अपनी बंधी बंधाई पारिवारिक व्यवस्था में (जहां वे अपने को बिलकुल ही नहीं बांध पाते) रहते हुए भी अपने आत्मा - आत्मा के प्रेम को चालू रखकर प्रेम का आदर्श दुनियां के सामने रखते हैं ।

हिन्दी कथा - साहित्य के बहुचर्चित नायक हरिप्रसन्न इसी दुविधा के परिणाम है । हरिप्रसन्न भूतपूर्व क्रान्तिकारी, नारी के अंचल की छाया पाकर, आत्मपीड़न का दर्शन बघारने लगते हैं । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की नारियां अधिक प्रभावशाली हैं वे एक साथ पत्नी, बहन और प्रेयसी के आयामों और इनके मानसिक घात - प्रतिघातों और द्वन्द्वों के बीच में दिखाई गई है । व्यक्तिवादी और पलायनवादी नायकों के बीच रहकर भी ये अपने को इन कमजोरियों से बनाये रहती है । ये नारियां अपने प्रति ईमानदारी और सच्ची और सहानुभूति की पात्री है ।

जैनेन्द्र जी स्त्री पुरूष के सम्बन्ध में मुक्तिबोध नामक उपन्यास में कहते हैं । जो स्त्री से अपने को बचाता है, वह सच से अपने को बचाता है । स्त्री झूठ नहीं है और पुरूष के लिये सच की चुनौती स्त्री के रूप में आती है ।[1] यहां स्त्री अनुभव करती है कि पुरूष को जितना ही वह स्वतन्त्र रख सकेगी, उतना ही वह उसका होगा, उसका अपना । "अनामस्वामी" नामक उपन्यास में अनाम की ही व्याख्या है, स्त्री व्यक्ति भी है । स्त्रीत्व से वह व्यक्तित्व आगे है । स्त्री - पुरूष की आत्मा में तो अभेद है न ? शरीर से हमें आत्मा की ओर बढ़ना है । इससे भोग से ब्रह्मचर्य की ओर

1- मुक्तिबोध : पृष्ठ - 76

बढ़ना है ।[1] कामवासनात्मक देश के स्पष्टीकरण के लिये यहां यह तक भी है । देश स्त्री में पुरूष के और पुरूष में स्त्री के प्रति राग के साथ द्वेष और स्पर्द्धा का सम्मिश्रण है, तभी तक उनमें आकर्षण और भोग बुद्धि है । राग अकेला होता ही नहीं, द्वेष से मुक्त होकर ही होता है ।[2] यहां उस पुरूष का प्रसंग भी है जिसकी मांग न थी, अभियोग न था, जो विवाहित को मुक्त रख सकता था, जो स्त्री से सेवा या समर्पण नहीं, उसकी अपनी भरपूरता ही चाहता था ।[3] एक पुरूष दृष्टि, यहां स्त्री की सामान्यतया, स्त्री के सहज मातृत्व के ही विरोध में भी थी । "अप्सराएं माता नहीं होती ...... भोग्या । नहीं, ठीक भोग्या भी नहीं होती । वे तो सौन्दर्य की धूप देती है, चांदनी देती है । मैं तुमसे वही देखना चाहता हूँ .... नहीं चाहता कि शरीर के बारे में तुमको संकोच रहे । अप्सरा और संकोच ?[4] यहां पर वह एक स्त्री भी थी जो पुरूष की अतीर्णता, वर्ग, दंभ, प्रतिभा को तोड़ना भी चाहती थी ।[5]

जैनेन्द्र जी हिन्दी के क्रान्तिकारी लेखक हैं । रूढ़ियों पर उन्होने कठिन प्रहार किये हैं । किसी सरल, स्वच्छ, आकर्षक जीवन की खोज में वह निरत है, परन्तु शायद उन्हें इस अन्धकार में अपना रास्ता स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता । मन में एक गांठ सी पड़ती जाती । वह न खुलती थी न घुलती थी । बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसती ही जाती थी । जो होता था, कुछ होना चाहिये, कुछ करना चाहिये । कहीं कुछ गड़बड़ है । कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है । सृष्टि गलत है, समाज गलत है, जीवन

1- अनामस्वामी : पृष्ठ - 30-31

2- अनामस्वमी : पृष्ठ - 42

3- अनामस्वामी : पृष्ठ - 141

4- अनामस्वामी : पृष्ठ - 299

5- अनामस्वामी : पृष्ठ - 280

ही हमारा गलत है । सारा चक्कर यह ऊट पटांग है । इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है । इससे जरूर कुछ होना होगा, जरूर कुछ करना होगा । पर क्या आ ? वह क्या है, जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है ?

जैनेन्द्र जी ने सुनीता नामक उपन्यास में दर्शन और अहिंसा के आवरण में नारी के घर बाहर की समस्या को प्रस्तुत किया है । जैनेन्द्र घर और बाहर में कोई विरोध नहीं देखते हैं । हरि प्रसन्न के प्रति सदा वह घर अपना ऋण मानेगा और उसको स्मरित करता रहेगा । परन्तु जैनेन्द्र जी का श्रीकान्त अतिमानवीय धरातल पर चित्रित किया जाता तो घर बाहर का विरोध अनिवार्य था । श्रीकान्त इस युग और भूमि का पुरूष ज्ञात नहीं होता है । उसकी अपनी पत्नी और मित्र दोनों के प्रति व्यवहार सहज नहीं है ।

जैनेन्द्र जी ने अपने कथा - साहित्य को सामाजिक संकल्पना में आधुनिक नारी की समस्या को दिखाया है । कल्याणी ने आधुनिक नारी की समस्या को उठाई है । विवाह और स्वतन्त्र व्यक्तित्व के अन्तर्विरोधों को स्पष्ट किया है । यदि नारी को अपने स्वप्न और कामनायें पूर्ण करने का अवसर नहीं मिलता है, तो वह शादी क्यों करे ? शादी का अर्थ आज भी पति की पराधीनता है तो उसको नई आधुनिक नारी कहां तक निभा सकती है । आर्थिक रूप से स्वावलम्बी नारी पति के संकीर्ण विचारों और शंकालुमन को कहां तक सन्तुष्ट कर सकती हैं ? क्या नारी के लिये परिवार और समाज विरोधी चीजें हैं, क्योंकि एक के लिये दूसरे को छोड़ना अनिवार्य है ? कल्याणी केवल इन समस्याओं को प्रस्तुत कर देती है । उसका समाधान अत्यन्त रहस्यात्मक और आव्यावहारिक है । उसका व्यक्तित्व दुविधाग्रस्त है और चरित्र अस्पष्ट है । यह अस्पष्टता यों तो उनके प्रायः सभी उपन्यासों में है, पर त्यागपत्र और कल्याणी में इतनी बढ़ी हुई है कि पाठक किसी निर्णय पर पहुँच ही नहीं पाता है ।[1]

1- यशपाल : बात में बात : पृष्ठ - 55

आधुनिक नारी की घर - बाहर की समस्या के पीछे आर्थिक स्वावलम्बन प्रमुख है । जिन उपन्यासों में घर - बाहर की समस्या का चित्रण हुआ है, उनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक स्वावलम्बन का प्रश्न हो आया है । बिना आर्थिक स्वावलम्बन के नारी के सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार अपूर्ण हैं । उनका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है । लेकिन उपन्यासकारों ने नारी को अन्य सभी आधुनिक समस्याओं पर विस्तृत विचार किया है किन्तु आर्थिक स्वावलम्बन को, जो आधुनिक नारी स्वातंत्र्य का मूलाधार है, विशेष महत्व नहीं दिया है । इन उपन्यासों को अधिकांश आधुनिक नारियों मानसिक रूप से तो आर्थिक स्वाधीनता को स्वीकार करती हैं लेकिन उनके लिये किसी प्रकार का संघर्ष नहीं करती है । समाजवादी यशपाल के नारी पात्र राजनीति में सक्रिय भाग लेते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक स्वावलम्बन के लिये संघर्ष करते दिखाई नहीं देते हैं । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि ये आधुनिक नारियां उच्च वर्ग से सम्बन्धित हैं, जिनके लिये अर्थ का विशेष महत्व नहीं है । स्वाधीनता के बाद हिन्दी कथा - साहित्य में मध्य वर्ग और निम्नवर्ग को आधुनिक नारियों का प्रवेश होता है । वे आर्थिक स्वावलम्बन के लिये पग - पग पर संघर्ष करती है । ये नारियां अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साथ समाज में प्रवेश करती है । स्वाधीनता के पूर्व उपन्यास में यह स्थित नहीं है ।

जैनेन्द्र की "कल्याणी" आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने पर भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की रक्षा नहीं कर पाती है । यह विचित्र भावुक नारी है, जिसकी आधुनिकता उसके संस्कार और परम्पराओं में डूब जाती है । उसकी दुविधाजन्य मनः स्थिति और जैनेन्द्र जी का रहस्यवादी दर्शन उसके व्यक्तित्व को तोड़ देते हैं । विलायत से डाक्टरी शिक्षा प्राप्त और स्वतंत्र रहकर प्रेक्टिस करती कल्याणी पूर्ण स्वावलम्बी और स्वतंत्र है । लेकिन विवाह के बाद अपने पति के दबाव के कारण प्रेक्टिस छोड़ देती है । अपने पति पर आर्थिक रूप से निर्भर होने के बाद, उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व भी टूट जाता है ।

कल्याणी नारी - प्रगति की नहीं, अवनति की द्योतक है । वह अपनी उपलब्धि की रक्षा भी नहीं कर सकती है । नई नारी के लिये यह कोई अच्छा उदाहरण नहीं है ।

जैनेन्द्र जी समाज की गुत्थियों एवम् समस्याओं का हल भौतिक आधार से स्वीकार नहीं करते । उसमें आत्मा का तप चाहिए । आध्यात्मिक आधार ही व्यक्ति की समस्याओं का अन्वेषण कर सकता है । भौतिक आधार उसमें सिर्फ साध्य रूप में है । समाज की वर्तमान स्थिति नाजुक है । उसके लिए सुधार तथा बदलाव की आवश्यकता है, जो व्यक्ति से शुरू होनी चाहिये । जैनेन्द्र जी को सिर्फ काल्पनिक तथा भावुक बताकर नकार देना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है । जैनेन्द्र जी कल्पना को सत्य तथा यथार्थ से बाहर की चीज नहीं स्वीकार करते । उनके कथा - साहित्य में तो करूणा की मन्दाकिनी बह रही है । वे किसी "वाद" में उसके होकर नहीं रहे, इसलिये वे भावुक तथा कोरे काल्पनिक ठहराये जाएं यह कहां तक न्यायसंगत है । मनुष्य तथा समाज का समन्वय न हो तो संस्कृति की कोई शक्ति नहीं है जो दोनों का एक साथ हित चिन्तन कर सके ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक अन्तः क्रियाएं व्यक्तिगत अन्तर्मन के चरित्रों के माध्यम से दृष्टिगोचर होती है ।

जैनेन्द्र के कथा - साहित्य में मनोवैज्ञानिक चिन्तन

साहित्य के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की परम्परा बीसवीं शताब्दी की देन है । मनोविज्ञान और साहित्य के सम्बन्ध की खोज अतियथार्थवादी साहित्यिक आलोचकों ने उस समय जोर से आरम्भ की जब कथा साहित्य के बारे में पश्चिमी रचनाकारों, मनोवैज्ञानिकों एवं आलोचकों ने यह स्वीकार किया कि "व्यक्ति का व्यक्तित्व भी कोई एक वस्तु नहीं है, वह मनोवैज्ञानिक स्थितियों का क्रम मात्र है । मनुष्य भिन्न - भिन्न मनोवैज्ञानिक क्षणस्थायी आदमियों की एक माला है ।[1]

आधुनिक कथा - साहित्य की आलोचना करते हुए अनिल कुमार ने लिखा है कि "बीसवीं शताब्दी की जटिलताएं कलाकार को सुथरे और प्रशस्त पथ पर नहीं चलने देती, क्योंकि अब पथ "अनेक" से अनन्त हो गये हैं । ज्ञान, विज्ञान और मनोविज्ञान ने प्रगति कर ली है .... अब गैली-लियों, डार्बिन, मार्क्स और फ्रायड कलाकार के मन पर चारो ओर से छाने लगे हैं ।"[2]

डा0 सम्पूर्णानन्द का कथन है कि कभी - कभी वैज्ञानिक के चित्त में कोई शंका उत्पन्न हो उठती है, कोई स्वप्न स्फुरित हो उठता है । वह उस शंका और स्वप्न को शब्दों में व्यक्त करने का भी साहस नहीं करता, ऐसी बातों को बुद्धि का अनर्गल दौड़ समझता है परन्तु ऐसे झीने आधार पर भी कहानी लिखी जा सकती है और लोगों के कुत्तल को बढ़ा सकती है । कोई वैज्ञानिक अपने मुंह से यह नहीं कहेगा कि ऐसी बातें संभव हैं, परन्तु इन

1- अजित कुमार : आलोचना : उपन्यास विशेषांक : अक्टूबर 1951 पृष्ठ संख्या - 26

2- अजित कुमार : आलोचना : उपन्यास विशेषांक : अक्टूबर 1951 पृष्ठ संख्या - 24-25

कहानियों के मूल में मनुष्य की कुछ प्रबल सहज मनोवृत्तियां हैं ।[1]

डा0 लक्ष्मी नारायण लाल ने साहित्य की मनोविश्लेषण पद्धति को मनोविज्ञान की परमोपलब्धि बताते हुए कहा है, "मनोविज्ञान की चरम उन्नति और उससे पाई हुई मनोविश्लेषण - पद्धति इस काल की अन्तजर्गत भी है । यह अन्तर्जगत वाह्य जगत से कहीं अधिक शक्तिशाली और जटिल है । यह सारा वाह्य जीवन उसी अन्तः चक्र से प्रेरित और निर्देशित है । यहीं नहीं, मानव अन्तर्जगत में चेतन मन से भी आगे अवचेतन जगत है और यह सबसे अधिक बलवान है । मनुष्य की इच्छाएं अपनी वाह्याभिव्यक्ति न पाकर अन्तर्मुखी हो जाती है और अवचेतन जगत् में स्थिर और अक्षुण्ण रहकर अनेक कुण्ठाओं, अस्पष्ट, अमूर्त चित्रों तथा व्यापारों को जन्म देती है ।"[2] तो यह मान्यता अन्य आलोचकों को यह कहलवाने पर बाध्य करने लगी है कि वास्तव में आधुनिक काल के मनोवैज्ञानिक की स्थापनाएं पर्याप्त सीमा तक सही ही है और मनोविश्लेषण पद्धति से हम साहित्य में चित्रित पात्रों की अतल गहराई तक पहुँचने का यत्न कर सकते हैं ।

हिन्दी उपन्यास के इतिहास में जैनेन्द्र ही सर्वप्रथम ऐसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं, जिन्होने अपनी अद्भुत चिन्तनशक्ति एवं विचार प्रवाह शैली द्वारा उपन्यास साहित्य को नया मोड़ दिया, नई दिशा प्रदान की । जिन्होने अपने उपन्यास में समाजगत जीवन के प्रतिनिधित्व चित्रण की अपेक्षा व्यष्टि को प्रधानता देकर यह प्रमाणित किया कि प्रकारान्तर से व्यष्टिमुखी व्याख्या भी समाज का अभिन्न अंग होती है । केवल वहिदर्शन ही जीवन का आलोक नहीं । अन्तर्मन की प्रत्येक पर्त के नीचे मानव - जीवन के रहस्य कोष

1- डा0 सम्पूर्णानन्द : आलोचना : उपन्यास विशेषांक : अक्टूबर 1951, पृष्ठ संख्या - 185

2- डा0 लक्ष्मी नारायन लाल : आलोचना : उपन्यास विशेषांक : अक्टूबर 1951, पृष्ठ संख्या - 150

छिपे हैं । इसीलिए उन्होने उपन्यास को वाह्य जगत से अन्तर्जगत की ओर समाज से व्यक्ति की ओर, तथा तथ्य वर्णन से मानसिकता के उद्घाटन की ओर उन्मुख किया । तथा व्यक्ति के अचेतन में निवास करने वाली विभिन्न गुत्थियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से उजागर करने का प्रयास किया है । मनुष्य की काम - अभुक्ति अहं, स्वार्थ, अपराध - भावना, रहस्य रतिकाल आदि तथ्यों का उस पर क्या प्रभाव पड़ सकता है, आदि गांठों को खोलने का सफल प्रयास जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में किया है । अतः उन्होने अन्तर्जगत का चित्रकार कहना उचित ही है । जैनेन्द्र अपने कथानक और चरित्रों के आस-पास एक मनोवैज्ञानिक रहस्य उपस्थित करते हैं, तथा उनकी सम्पूर्ण औपन्यासिक यात्रा मनोवैज्ञानिक रहस्यों के भीतर है ।

मनोवैज्ञानिकता के आयाम :

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता के आयाम अधोलिखित हैं :-

नारी मनोविज्ञान का आधार :-

हमारे संस्कार नारी तथा पुरूष को एक दूसरे का पूर्णतः संपूरक मानते हैं । वास्तव में एक दूसरे के अभाव में अपूर्णता रह जाती है । नारी तथा पुरूष का मानसिक तथा शारीरिक कुछ इस प्रकार का सम्बन्ध है कि वह अलग नहीं हो सकता । साहित्य में नारी का एक महत्वपूर्ण स्थान है । अतः पुरूष नारी के स्वभाव, विचार तथा उसकी मानसिक गतिविधि का चित्रण करता पाया जाता है । अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि उसका चित्रण बिल्कुल सत्य है । पुरूष अपनी भावना की अथवा नारी से अपने चित्रण में आरोपण करता रहा है । स्पष्ट है कि इस आकर्षण में कुछ न कुछ यौन तत्व भी विद्यमान होता है, चाहे वह व्यक्त रूप में हो, चाहे अव्यक्त रूप में । फ्रायड ने इस आकर्षण का द्वार मुक्त कर एक प्रमुख अंश बना दिया है ।

जैनेन्द्र जी का प्रेमचन्द्र युगीन साहित्य में प्रमुख स्थान है । वे सम्भवतः प्रथम कथाकार हैं जो आदर्शों तथा उपदेशकों की सीमा का अतिक्रमण कर यथार्थ के धरातल पर अपने पात्रों का ईमानदारी के साथ चित्रण करने की ओर अग्रसर होते हैं । वे स्नेह का वर्णन करते हैं, किन्तु सत्य से उसका सम्बन्ध नहीं छूटता यथार्थ की आधारशिला पर वे स्नेह को व्यक्त करते हैं तथा उनके पात्रों विशेषकर नारी पात्रों में इसका क्रमिक विकास भी परिलक्षित होता है । आज के मनोविज्ञान का फ्रायडीय यौनवाद में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होता गया है । फलस्वरूप जैनेन्द्र जी के मनोविश्लेषणपूर्ण चित्रण भी फ्रायडीय यौनवाद के घेरे से बाहर नहीं निकल पाये हैं । हमारी संस्कृति का "काम" शब्द बड़ा व्यापक है । गार्हस्थ तथा सामाजिक जीवन में सांसारिक प्रादुर्भाव के जितने भी प्रयास हैं, वे हमारे यहां "काम" के अन्तर्गत आते हैं । यौन आकर्षण तथा "काम" में इस तरह कुछ अन्तर मानना होगा । जैनेन्द्र जी के चरित्रों में यौनाकर्षण है तथा इस समस्या को ही लेखक ने कई तरह से प्रकट करने का प्रयास किया है । फ्रायडीय विचारधारा के समान ही जैनेन्द्र जी भी यौनतत्व को प्रधानता देते हैं तथा उसके महत्व को मानते हैं - "उन नामों के नीचे जाकर उन दोनों में केवल स्त्री रह जाती है, दूसरा पुरूष रह जाता है । अपने चलन - व्यवहार में चलने वाले, नाते - रिश्ते असत्य वस्तु नहीं हैं, पर प्राणी के बहुत गहरे जाकर मानो वे सब कुछ ऊपर सतह पर ही छूट जाते हैं ।

जैनेन्द्र जी के कथा - साहित्य में फ्रायड का यौनवाद दृष्टिगोचर होता है, किन्तु इसके अलावा उन्होने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाये रखने में स्फल हुए हैं । उनके चरित्र यौनवाद के चंगुल में फंसकर निरीह नहीं हुए हैं । उन्होने बड़ी बहादुरी के साथ उसका सामना किया है तथा हमेशा ऊपर उठने का प्रयास करते रहे हैं । जैनेन्द्र जी का उपन्यास - साहित्य एक ही भाव को विविध रूप में प्रकट करता आया है । भाव उनके अवचेतन की किसी कुंठा का ही पल है चाहे कथा, घटना, क्रम या अभिव्यक्ति की

शैली में भले ही कुछ थोड़ी भिन्नता हो, किन्तु सबके अन्तर में एक ही भाव - तन्तु स्थित है ।

जैनेन्द्र जी के नारी चित्रण में शुरू से अन्त तक एक ही टेक प्राप्त होती है । उनके नारी चरित्र ज्यादातर भले ही घर की मध्यम या उच्च मध्यम वर्ग की महिलायें हैं । सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि जैनेन्द्र जी के सभी नारी - पात्र अपने पति के अलावा पर - पुरूष की तरफ आकृष्ट होते हैं । इस आकर्षण का प्रमुख स्त्रोत फ्रायड का यौनवाद ही है । सामाजिक तथा ग्राहस्थ जीवन का असन्तोष भी इस तरह के चित्रण के लिये उत्तरदायी हो जाता है, किन्तु मुख्य रूप से इसका कारण यौनाकर्षण ही है । जैनेन्द्र जी के ज्यादातर नारी पात्र मानसिक द्वन्द्व से आक्रान्त हैं । इस मानसिक द्वन्द्व का कारण कुछ भारतीय समाज की संस्कार - जन्य - परिस्थितियां भी हैं । उनके नारी पात्रों के पर - पुरूष आकर्षण का क्या भेद है, यह भी अवचेतन स्थित कुछ ऐसी कुंठाओं से सम्बन्ध रखता है जिनका विकास वैयक्तिक जीवन की परिस्थितियों पर आश्रित है ।

जैनेन्द्र जी के नारी पात्रों के अन्तर में भी यही भावना कार्य करती दिखाई पड़ती है । नारी पात्रों के यथार्थवादी चित्रण और अवचेतन स्थित मानसिक ग्रन्थियों का खुलासा करते समय जैनेन्द्र जी कहीं - कहीं अति यथाथवादी भावना की तरफ भटक गये हैं । भारतीय नारी यौन जीवन के सम्बन्ध में निर्लज्जतापूर्वक बातचीत करने में संकोच अनुभव करेगी ।

मानव जीवन का कुछ घृणित पक्ष भी है । मनुष्य यदि बहुत ऊँचा उठ जाता है तो धरातल में भी पहुँच सकता है । किन्तु साहितयकार का कुछ प्रयोजन होता है, इसका कुछ उद्‌देश्य होता है । उसके द्वारा भावों और विचारों का परिष्कार होता है । साहित्य के द्वारा यदि अच्युदय का रास्ता न प्राप्त हो सके तो सत्यासत्य की दृष्टि तो प्राप्त होनी ही चाहिये । अतः यथार्थ चित्रण के समय भी जीवन के इन अवांछित पक्षों की उपेक्षा तो

करना ही होगा जो दूषित संस्कार को बढ़ावा देते हैं । पतित नारी भी अवचेतन में स्थित भावनाओं को इस तरह प्रकट नहीं करेगी कि समाज का हर प्राणी उससे घृणा करने लगे । यह अपने कमलोरों को निर्लज्जता का पहनावा नहीं पहना सकती । जैनेन्द्र जी की "दुधिया" कुछ इसी तरह का चरित्र है । वह पर - पुरूष से कहती है .... "दादा" हर किसी से पैसा ले लेते हैं और जाके साड़ी में फूँक देते हैं । मां गयी, तबसे यही हाल है । मैं अपने बस किसी को नहीं लौटाती .... मैं शिकायत नहीं करती, लेकिन तन भी बहुत पीर दे जाता है । भारतीय - संस्कृति के लिए इस तरह के चित्रण अत्यन्त ही अपरिचित से हैं । इन चित्रों के फ्रायड की यौनवादी भावना का नग्न प्रतिनिधित्व हुआ है ।

लेखक ही मौलिक रचना उसकी अनुभूति पर आश्रित होती है । कभी - कभी जीवन के अनेक अनुभव अनेक ढंग की मानसिक तथा सामाजिक कठिनाइयों एवं व्यवधानों की वजह से अवचेतन मन में जाकर रम जाते हैं । तथा उनके द्वारा विचारों का उद्वेलन होता रहता है । समर्थ कलाकार अवचेतन मन में स्थित इन भावनाओं की, उन ग्रन्थियों की तथा कभी - कभी अपनी दमित कुंठाओं की अभिव्यक्ति भिन्न - भिन्न ढंग के पात्रों के सर्जन के द्वारा बड़े ही नाटकीय रूप से करता है । यह सर्जन उसकी वेगवती अवचेतन में स्थित अर्द्ध सुसुप्त भावना का ही फल है । महान् चिंतक भी सृजन के क्षणों में कुछ इस प्रकार की बातें लिख जाते हैं जिसे समाज की दृष्टि ठीक नहीं समझ पाती, किन्तु उनकी दृष्टि से तो वह पूर्णतः सत्य तथा यथार्थ ही पाया जाता है । क्योंकि वह उनकी अमूल्य अनुभूति द्वारा पैदा होती है । इस तरह की कृतियों के प्रति कृतिकार की बड़ी ममता भी पाई जाती है । फलस्वरूप उसे अन्यथा समझ सकने की क्षमता अथवा शक्ति उसमें नहीं पाई जाती । यही नहीं इस धरातल पर पहुँचने पर उनके लिए कुछ भी गोत्य या अगोत्य नहीं रह पाता ।

सच्चा साहित्यकार वही है जो अपनी अनुभूतियों का ईमानदारी के साथ चित्रण करता है, किन्तु साथ ही उसे इसका भी ध्यान रखना चाहिये कि उसकी कलाकृति इसके व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित नहीं रहती । वह तो समाज का एक अंग हो जाती है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यास के पात्र विचारों एवं सिद्धान्तों के वात्याचक्र में न उलझकर सामान्य जीवन की तरफ उन्मुख होते परिलक्षित होते हैं । वे जीवन को सुखी रूप में जीना चाहते हैं तथा उसके लिये प्रयत्नशील परिलक्षित होते हैं । उनमें यदि कमजोरी है तो वे उनको आदर्शवाद के आवरण से आच्छादित नहीं करना चाहते । वे उसे स्पष्ट रूप से मानते हैं तथा उससे ऊपर उठने का साधन ढूँढते हैं ।

जैनेन्द्र के कथा - साहित्य में मनोविश्लेषण की उपर्युक्त प्रक्रिया का क्रमिक विकास परिलक्षित होता है । शुरू की रचनाओं में जहां उन्होने अपनी व्यक्तिगत विचारधारा को दार्शनिकता के आवरण से ढक दिया है, वहां उनकी वाद की रचनाओं में ये बीच के व्यवधान पूर्णतः दूर होते गये हैं ।

जैनेन्द्र जी के सभी नारी पात्रों में विचित्र ढंग का मानसिक द्वन्द्व चलता रहता है । सामाजिक परम्परा, सामाजिक व्यवधान तथा विचारों में वैषम्यता की वजह से ही यह स्थिति परिलक्षित होती है । उनकी साहित्यिक कृतियां सामाजिक तथा मानसिक द्वन्द्व से टकराकर ऊपर उठने का प्रयास करती है ।

जैनेन्द्र जी का दार्शनिक व्यक्तित्व उनके मानसिक तथा सामाजिक व्यक्तित्व से समान रूप से संघर्ष कर रहा है । इस संघर्ष में किसकी विजय होगी तथा कह सकना मुश्किल है क्योंकि जैनेन्द्र जी सच्चे अर्थो में प्रगतिशील है तथा उनकी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक चिन्तनों का क्रमिक विकास हो रहा है ।

जैनेन्द्र जी की प्रथम औपन्यासिक कृति "परख" बहुत कुछ परम्परागत उपन्यास के रूप में प्राप्त होती है । फिर भी उसमें कट्टो का आत्मपीड़क स्वरूप मनोविज्ञान से प्रभावित है । कट्टो का सत्यधन के प्रति त्यागपत्र तथा उसे गरिमा के साथ विवाह की स्वीकृति सहज सम्भाव्य है, सच्ची प्रेमीजन अपने प्रेमी के लिए त्याग करते हैं, किन्तु कट्टो जिस आग्रह, हठ तथा विनय अतिशय के साथ नव - विवाहित दम्पत्ति को भोजन के लिये आमंत्रित करती है, वह जैसा स्नेह - प्रषण करती है । अपने सुहाग की पोटली देती है । इन सब बातों को देखकर किसी भी मनोविद का माथा ठनकेगा और वह कहेगा कि यह तो वही है जिसे मनोवैज्ञानिकों ने कहा है -

इससे भी आगे बढ़कर बाद में वह सत्यधन को चालीस हजार रूपये देकर उससे घर में आकर रहने का आग्रह करती है । तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह सत्यधन से सन्तुष्ट नहीं है । वह उस पर मनोवैज्ञानिक विजय प्राप्त करना चाहती है, उसे अन्दर से कुचल देना चाहती है, जिससे वह अपनी गलती को महसूस कर पश्चाताप की अग्नि में जले ।[1]

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "त्यागपत्र" नामक उपन्यास की नायिका मृणाल एक आत्मपीड़न चरित्र है । आत्मपीड़ा के द्वारा आत्मपुष्टि उपलब्ध करना उसकी स्वभावगत विशेषता है । बचपन से ही उसमें ऐसी विलक्षण प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है । माता - पिता की मृत्यु के कारण बचपन से ही वह पारिवारिक स्नेह से वंचित रह जाती है । भाभी का कठोर एवम् क्रूर नियंत्रण उसमें गहरा असन्तोष पैदा करता है । इसी असंतोष की वजह से उसमें "आत्मपीड़ा की प्रवृतित पैदा हो गयी है । उसके मार खाकर प्रसन्न होने में भी आत्मपीड़न की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ही है जो दमित वासना का ही प्रसार है । मृणाल के व्यक्तित्व में एक अन्तर्विरोध व्याप्त है ।

1- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : पृष्ठ संख्या - 143

यह अन्तर्विरोध उसकी अहं भावना की देन है । अपने अहं की वजह से वह समस्या से समझौता नहीं कर पाती, संघर्ष करती है । यह दूसरी बात है कि इस संघर्ष में वह स्वयं टूट जाती है । पति के अमानवीय व्यवहार एवम् अपने घरवालों की निर्दयता की वजह से मृणाल में प्रतिशोध की भावना पैदा हो जाती है परन्तु उसका प्रतिशोध - भाव हिंसात्मक नहीं हो पाता । वह दूसरे का विघटन नहीं चाहती, आत्म - विघटन चाहती है ।

परमानन्द श्रीवास्तव ने कहा है - जैनेन्द्र के उपन्यासों की विविध मनोवैज्ञानिक तात्पर्यो के अध्ययन से एक नतीजा स्वभावतः निकाला जा सकता है । उनके नारी चरित्र समर्पणशील हैं .... सुनीता, भुवनमोहिनी सुखदा, अनिता, वसुन्धरा समर्पिताएं हैं । व्यक्तित्वविहीन चरित्रों की भी अपनी जटिल मनोवैज्ञानिक सीमाएं हैं । आत्मव्यथा, आत्मपीड़ा या पराजय की व्याख्या जैनेन्द्र के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में की गयी है । प्रायः ये सभी चरित्र अपनी व्यथा की आत्मकेन्द्रि अर्थ में ही देख पाते हैं ।[1]

जैनेन्द्र ने हिन्दी औपन्यासिकों के रूढ़ चित्रणात्मक स्वरूप को न मानते हुए व्यक्ति सत्ता के स्तर पर नारी जीवन की कुंठा, हीन भावनाएं मन की ग्रन्थियां, अनास्था एवम् प्रेम की असफलता को उभारने का प्रयत्न किया है, तथा उन्हें व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि प्रदान करते हुए स्त्री विद्रोह को उद्‌भूत किया है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में नारी पात्रों की मनोविश्लेषण की उपर्युक्त प्रक्रिया का विकास दिखाई पड़ता है ।

1- डा0 परमानन्द श्रीवास्तव : जैनेन्द्र और उनके उपन्यास : पृष्ठ संख्या - 95

बालमनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :-

एडलर के अनुसार व्यक्ति संसार में कमजोर, महत्वहीन और असहाय रूप में आता है । प्रकृति से लड़ने में वह असमर्थ होता है और भोजन वस्त्र तथा शरण के लिये अपने बड़ों पर अवलम्बित रहता है । दूसरी ओर वह देखता है कि उसके बड़ों के पास अधिक शक्ति है, वे विश्व के प्रति अधिक ज्ञान रखते हैं और जैसे चाहते हैं, रहते हैं । इन सब कारणों से वह बड़ों की शक्ति से अभिभूत हो उठता है और वह एक हीनता की भावना करने लगता है । अपनी हीनता की क्षतिपूर्ति के लिये वह अपने वातावरण को प्रभावित करना चाहता है । वह अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिये, साथियों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिये, प्रयास करता है । किन्तु जब वह अपनी कोशिशों के बावजूद अपने वातावरण से कोई उत्तर नहीं पाता तो उसे कष्ट होता है और कल्पना की शरण लेता है । उस लोक में वह उन लोगों पर रोब जमाता है जो उस पर हंस चुके होते हैं । इस प्रकार एडलर के कथनानुसार हीन - भावना की यह अनुभूति बच्चों के प्रयत्नों को जन्म देने वाली प्रेरक शक्ति है । बच्चा अपनी हीनता की क्षतिपूर्ति के लिए जिन मार्गो को ग्रहण करता है वह उसके लक्ष्य का निश्चय करता है, और जो उसके वयस्क जीवन के समस्त व्यापारों का निर्देश करता है ।

बचपन की हीन - भावनाओं की भिन्नताओं के कारण मनुष्य - मनुष्य के जीवन के लक्ष्य भिन्न - भिन्न हुआ करते हैं । वे स्पष्टतः दृष्टिगत नहीं होते यहां तक कि वे जीवन के व्यवहारों के सम्बन्धों का भी निर्माण करते हैं । ऐसे सांचे बढ़ते हैं जिन्हें हमारे जीवन के सम्पूर्ण अनुभव अपनी जगह बना सकें । इस तरह एक विशेष परिस्थिति में एक मनुष्य को आनन्द मिल सकता है, दूसरे को ऊब आ सकती है । बचपन में हमारे व्यवहारों का जो सांचा बन जाता है उसमें यदि कोई अनुभूति या आवेग नहीं आ पाते तो उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया जाता है ।

युग जीवन की इच्छा को मूल प्रेरक - शक्ति स्वीकार करता है जीवनेच्छा में लोक, वित्त और शत्रु तीनों एषणाएं समाविष्ट हो जाती हैं । मनुष्य जीना चाहता है । वह चाहता है कि उसका अस्तित्व अगर रहे, इसी इच्छा की पूर्ति के लिये वह अनेक प्रयत्न करता है । साहित्य - निर्माण उन प्रयत्नों में प्रमुख है क्योंकि साहित्य द्वारा हम अपने को भलीभांति व्यक्त कर सकते हैं और व्यक्त करना जीवनेच्छा का ही एक रूप है । युग वाले सिद्धान्त में फ्रायड एडलर के सिद्धान्त समाविष्ट हो जाते हैं । युग व्यक्तिगत अवचेतन के साथ सामूहिक अवचेतन भी मानता है और दोनों में अन्तर दिखाता है ।

इस तरह इन तीनों मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने अपने - अपने ढंग से मन के अवचेतन भाग को ही समर्थ प्रेरक और महत्वपूर्ण भाग माना है । अवचेतन में दमित वासनाएं हमारे जीवन के हर कार्य को प्रभावित करती रहती है । ये दमित वासनाएं ग्रंथियां निर्मित करती है और ये ग्रन्थियां बचपन से ही बनने लगतीं हैं इसलिये बच्चों का जीवन जो ऊपर से बड़ा ही सरल, भोला - भाला दिखाई पड़ता है वास्तव में बड़ा जटिल होता है । यदि बच्चों की मनःस्थितियों और उनकी आवश्यकताओं को ठीक से न समझकर उनका ठीक से विकास न किया जाये तो बच्चों का मन ग्रंथियों का भण्डार बन जाता है और उन्हीं ग्रन्थियों को लिए - दिए बच्चा आगे बढ़ता है । तो उसके हर कार्य, हर व्यापार और आचरण में वे ग्रन्थियां प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती हैं । अतः मनोविश्लेषण - शास्त्रियों ने बच्चों के मन की व्याख्या करके मानव - मन के उन मूलवर्ती सत्यों का पता लगाया है जो मन की गहराई में अवतरित होकर, ऊपर से सदृश्य रहकर, जीवन की हर गति को प्रभावित करते रहते हैं । फ्रायड लिबिडो को मानव प्रकृति का मूल प्रेरक - स्त्रोता मानता है । उसके अनुसार छोटे - छोटे बच्चों को आत्मरति में सुख मिलता है । बच्चों का अगूंठा चूसना आत्मरति का ही एक रूप है ।

मल - मूत्र त्याग करने में भी उन्हीं रति का सुख मिलता है । इससे एक कदम और आगे बढ़कर फ्रायड आडिपस कम्पलेक्स (लड़के का अपनी मां की ओर आकृष्ट होना) और इलेक्ट्रा कम्पलेक्स (लड़कियों का अपने पिता की ओर आकृष्ट होना) की कल्पना करता है । फ्रायड की इन व्याख्याओं के अनुसार मनुष्य स्वयं अपने कार्यो के प्रति जिम्मेदार नहीं है क्योंकि वह तो स्वतः बालित प्रवृत्तियों से प्रेरित होता है । वे प्रवृत्तियां बचपन से ही उसमें अपना स्वस्थ बना लेती हैं, कुछ ग्रन्थियों का निर्माण कर लेती हैं । चेतन स्तर पर व्यक्तित्व निर्माण की शक्ति को यह सिद्धान्त अस्वीकार करता है । अतः इन सिद्धान्तों को स्वीकार करने वाले उपन्यासकार स्मरणीय शक्तिशाली चरित्रों की सृष्टि में विश्वास नहीं करते वे तो इन पात्रों की अवचेतन - स्थित मूल प्रवृत्तियों और चेतन के साथ उनके संघर्षो की उधेड़ बुन में ही अपने को प्रवृत्त रखते हैं ।

"परख" जैनेन्द्र का सर्वप्रथम उपन्यास है । जिसका प्रकाशन सम्भवतः 1930 में हुआ था यद्यपि इस उपन्यास में प्रेमचन्द्र जी के उपन्यास की इतिवृत्तात्मकता का स्पष्ट प्रभाव है, पर इतना तो स्पष्ट है कि पाठक को समझते देर नहीं लगती कि उपन्यास एक नूतन कोरी मनोभूमि में प्रवेश कर रहा है और वह है मनोजगत का मनोवैज्ञानिक और कौशलपूर्ण चित्रण । इसमें आधुनिक मनोविज्ञान जैसे फ्रायडडियम, समाज मनोविज्ञान का भी पात्रों के चित्रण में पर्याप्त प्रभाव है । यहां हम गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के प्रभाव को खोज रहे हैं । अतः उसका उल्लेख ही समीचीन होगा । कट्टो नाम्नी नायिका का निरीह तथा सरल हृदया बाल विधवा सत्यधन नामक मास्टर पर अपने हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास एवम् अनुराग को न्यौछावर कर चुकी है पर परिस्थितियां कुछ ऐसी मोड़ लेती हैं कि कट्टो के जीवन में आ जाता है । बिहारी और सत्यधन के जीवन में पत्नी बनकर आ जाती है । बिहारी की बहन गरिमा । प्रथम दिन वह गरिमा को खूब अच्छी तरह भोजन करवाती

है, खूब आदर सत्कार करती है जिस तरह नबागता वधू का किया जाता है और फिर अपने सुहाग का उतरन, पोटली देकर उनके जीवन में से निकलकर आ जाती है बिहारी के पास । अपनी व्यथा - वेदना और अपनी उत्सर्ग भावना के लिये बिहारी से सदा के लिये एक बज्र से भी कठोर तथा फूल से कोमल तन्तु में आबद्ध हो जाती है । उन दोनों की प्रतिज्ञा है "हम वैधव्य - यज्ञ की प्रतिज्ञा में एक दूसरे का साथ लेकर आजन्म बंधते हैं । हम एक होंगे । एक प्राण दो तन होंगे । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा ।" यह कहकर दोनों अपनी - अपनी राह चल देते हैं ।

डा0 देवराज उपाध्याय का कथन है "सुनीता" नामक उपन्यास में आश्चर्य होता है, सत्या के व्यवहार पर । वह छोटी सी लड़की । नहीं छोटी नहीं । लेखक ने उसे 18 वर्ष की बताया है, पर लेखक की बात कौन ले । वह तो यों ही कहता रहता है । उसे अपने भावों को प्रकट करने के लिये कुछ शब्द चाहिये । जो ही शब्द, सामने आ जाए उनसे ही काम ले लो । कालिदास रहते तो "अनाघ्रात पुष्पम्, किसलयम्, चेतनम् भी कह सकते थे । जैनेन्द्र सत्या की चर्चा करते हुए कहते हैं "पर अट्ठारह बरस की लड़की को कभी आप अनजान न समझ लीजिएगा । नहीं तो खतरा आ जायेगा । उसकी आंखें जो देखने की हैं, सो तो देखती ही हैं, पर उसका मन जो नहीं है, वह भी उसे अनदेखे हुए में पढ़ लेता है । पर वह खट्टा मीठा मन सब कुछ भीतर ही भीतर संजोए रखता है, बरखेरता नहीं ।" यही सत्या कानपुर से श्रीकान्त के लौट आने पर न जाने कितना प्रयास करती है, कितना षडयन्त्र करती है कि श्रीकान्त उस रात को अपने घर पर न जावे और ताला बन्द पावे ।

हरिप्रसन्न जब सुनीता के पूर्ण शरीर का दर्शन कर लेता है तो उसे एक अपार और गम्भीर तृप्ति की पुलकानुभूति होती है जिसका वर्णन उपन्यासकार के शब्दों में यों है :

"हरिप्रसन्न ज्यादा दूर नहीं था । वह बैठा था । वह परास्त था, पुचकारा सा शान्त था । वह मानो इस अनुकूल विश्व ग्रन्थ में उलट गये एक तर्क - विराम के चिन्ह की भांति वह बैठा था, मानों निखित प्रवाह के बीच क्षण की एक धूप को चित्रित करने के लिये है वह है, अन्यथा वह कुछ नहीं है । मात्र एक काली बूँद है ।"

इस वर्णन को पढ़कर रविकान्त तथा आनन्द तृप्त व्यक्ति का तन्द्रालय चित्र उपस्थित होता है । फ्रायड ने बालक की काम भावना के विकास की प्रथम अवस्था को ओरल स्टेज ( ) कहा है । जिस समय वह मां का स्तनपान करता है, सेक्स का आन्दानुभूति प्राप्त करता है । फ्रायड का कथन है कि दुग्धपान से तृप्त बालक जब मां की गोद में विश्राम करता है तो उसकी मुद्रा में उसी गम्भीर सन्तोष की झलक पाई जाती है, जिसका दर्शन हयः प्राप्त मानव की काम तृप्ति की अनसाई मुद्रा में पाया जाता है । हरिप्रसन्न की जिस मुद्रा का यहां चित्रण किया गया है उसमें एक और रतितृप्त, काम - तृप्त व्यक्ति की मुद्रा में कितना साम्य है ।

कथा - साहित्य का अधिकांश प्रेम की चर्चा से परिपूर्ण है । चाहे युद्ध की कथा हो, अर्थ और परमार्थ का प्रसंग हो, राजनैतिक चक्करों का विश्लेषण हों, पर उन सबों के बीच में प्रणय की एक छोटी सी कथा अवश्य होगी । इस प्रणय व्यापार में मनोविश्लेषणवादियों ने एक विचित्रता का उल्लेख किया है कि कुछ लोगों के प्रणय - निर्वाचन में ( ) में असाधारणता होती है । कुछ व्यक्ति कुमारी तथा सर्वप्रकारेण अनुगता पत्नी के प्रति प्रेम के भावों से आन्दोलित हो नहीं सकते । वे सदा ऐसी नारियों को प्यार करते हैं जो दूसरों की हों । प्रेमी और प्रेमिका के बीच एक तृतीय व्यक्ति होना ही चहिये जिसको आहत पर चोट पहुँचाकर, जिसके अधिकारों को छीनकर तृप्ति - लोभ हो । फ्रायड के शब्दों में प्रणय - व्यापार की सफलता के लिये ऐसे व्यक्तियों को एक आहत तृतीय पक्ष की अनिवार्य

आवश्यकता होती (Need for injured third party) तभी वे काम प्ररित हो सकते हैं । कारण यह है कि ऐसे व्यक्ति अभी भी वात्यकालीन आबद्धता (Childhood fixation) से भी मुक्त नहीं हो सके हैं ।

बालक मां को प्यार करता है जो पिता (तृतीय व्यक्ति) की सम्पत्ति है । आज भी वह पिता रूपी बाधक को अपने बीच में लाकर अपनी अचेतन की प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करता है । यहां तक बात बढ़ जाती है कि जब तक नारी सती है, तब तक वह प्यार नहीं करता, पर ज्यों ही वह नारी दूसरों के वश में गई कि उस पुरूष में प्यार के भाव उमड़ने लगते हैं । फ्रायड के शब्दों में ।

".......... They are derived from a fixation of the infantile feelings of tenderness for the mother and represent one of the forms in which fixation empressing itself .... One sees at once that the fact of the mother belonging to the father would come to be on unseparable part of the mother's nature to the child growing up in a family circle also that the injured third party is none other then father himself ....".

जैनेन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास सुनीता में श्रीकान्त एक ऐसा ही असाधारण पात्र है ।

जैनेन्द्र की कहानियों में बाल मनोविज्ञान पात्र होते हैं । "पाजेब" के और बालकों के मनोविज्ञान को स्पर्श करने का प्रयत्न किया गया है । "जयसन्धि" की कहानी आत्म - शिक्षण में बालमनोविज्ञान का पुट है ।

जैनेन्द्र जी ने त्याग - पत्र नामक उपन्यास का सृजन किया है । मात् - पितृ हीन बालक मनोवैज्ञानिकों के लिये अच्छी सामन्ती उपस्थित करते हैं । प्रेम से वंचित रहने के कारण उनमें अनेक तरह की ग्रन्थियां बैठ जाती हैं और उन्हें जीवन भर बेताब किए रहती हैं । मृणाल अनाथ बालिका है । ऐसा पात्र अभी तक जैनेन्द्र नहीं लगा था, कट्टो गरीब तो है, विधवा भी है । विधवा भी अच्छी मनोवैज्ञानिक वेश होती है, पर चूँकि बचपन में उसे माता - पिता का स्नेह मिला था, इसीलिये उसके व्यक्तित्व का संगठन अधिक समकलित (integrated) ढंग से हुआ था । यही कारण था कि विपरीत घटनाओं की टक्कर से वह बिखरने नहीं पाई । मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से बचपन के प्रारम्भिक कुछ वर्ष बड़े महत्वपूर्ण होते हैं । उन्हीं दिनों व्यक्ति की जीवन शैली का निर्माण हो जाता है कि व्यक्ति परिस्थितियों का सामना किस तरह करेगा, डटकर मुकाबला करेगा या दुम दुबाकर भाग जायेगा । मेरी कल्पना है कि यद्यपि उपन्यासकार ने कुछ कहा नहीं है, मृणाल के प्रारम्भिक दो - चार वर्षों के जीवन में उसके मनोवैज्ञानिक मंथन का पर्याप्त अवसर मिला होगा । वह सबसे कनिष्ठ सन्तान थी, माता - पिता की अत्यधिक दुलार की अधिकारिणी रही होगी । अतः प्रेम पाने आकांक्षा उसमें बड़ी गहराई से जम गई होगी । मैं उपन्यासकार नहीं हूँ । पर यदि मनोवैज्ञानिक कथाकार हो तो अपनी कल्पना द्वारा वह मृणाल के शैशवकालीन जीवन के इतिहास पर अच्छे उपन्यास की रचना कर सकता है । "आश्चर्य होता है कि किसी उपन्यासकार की दृष्टि इधर क्यों नहीं जाती । जब कभी किसी प्रतिभावान कथाकार में मनोवैज्ञानिक जुम्बिरा आयेगी तो मृणाल की कब्र से तो निकलती दीख पड़ेगी । हम तब तक धैर्य से प्रतीक्षा करेंगे । (डा0 देवराज उपाध्याय)

जैनेन्द्र ने भी मृणाल के बचपन की थोड़ी बातें कहीं हैं । "अकेली यह छोटी बुआ की रह गई गई थी पिता जी उसको बड़ा स्नेह करते थे । उनकी सभी इच्छाएं पूरी करते थे । पिता जी का यह स्नेह उन्हें बिगाड़

न दे, इस बात का मेरी बात को खासा ख्याल रहता था । वह अपने अनुशासन में सावधान थीं । मेरी बुआ को प्रेम नहीं करती थीं, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता, पर आर्य गृहिणी का जो आदर्श था मेरी बुआ को भी वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना मनोवैज्ञानिकों के की कथा मां पुत्री को प्रतिद्वन्द्वी समझती है तथा पिता पुत्री के प्रति अति कोमल धारणा रखता है । इन मान्यताओं की झलक यहां पर स्पष्ट है ।

जैनेन्द्र जी के कथा - साहित्य में बाल मनोविज्ञान का चित्रण बड़े ही मनोयोग के साथ किया गया है ।

समाज की मनोवैश्लेशिकी :-

विभिन्न सामाजिक परिस्थितियां विशिष्ट मूल्यों की उत्पत्ति में सहायक होती हैं । प्रत्येक समाज और संस्कृति की निजी और दूसरे समान व संस्कृति से पृथक करने वाली जातीय विशेषतायें होती हैं । ये विशेषताएं मूल्य - संस्कार को निरन्तर नवीन रूप प्रदान करती रहती है । स्वयं जैनेन्द्र जी की मान्यता है कि जिनको सामाजिक मूल्य विकासशील होते हैं । उन्होने यह भी कहा है कि जिनको सामाजिक मूल्य कहा जाता है वह आर्थिक मूल्य होता है । धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आन्दोलन या क्रान्तियां नवीन सामाजिक मूल्य प्रदान करने वाली स्वीकार की गईं हैं । सामाजिक प्राणी समाज द्वारा निर्धारित इन मूल्यों का उल्लंघन नहीं कर सकता । और यदि वह सामाजिक - नेतिक मूल्यों की अवहेलना करता है तो उसे समाज द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाता है ।

जिस तरह सामाजिक रीति - रिवाजों, मान - मर्यादाओं तथा नियमों का प्रवाह और प्रसार समस्त समाज में व्याप्त रहता है तथा उनकी अवहेलना नहीं की जाती उसी तरह मनुष्य के अचेतन जगह में भी काम - संबंधी विभिन्न क्रियाएं प्रतिक्रियाएं, द्वन्द्व तथा संघर्ष होते रहते हैं तथा उन अभिवृत्तियों के प्रेरक तत्व इतने बलशाली होते हैं कि उनमें बदलाव लाना अत्यन्त दु:साध्य

होता है । यदि मनुष्य इन प्रेरणा - तन्तुओं से उद्भूत इच्छाओं या जरूरतों का दमन करता है तो उसका संघर्ष कम होने की अपेक्षा और ज्यादा बढ़ जाता है तथा उसके अन्तर्जगत् में कुंठा आदि विभिन्न प्रकार की ग्रन्थियां निवास करने लगती हैं जिससे मनुष्य की स्थिति घुटनपूर्ण हो जाती है । सामाजिक भय की वजह से वह उनकी वाह्याविभव्यक्ति भी नहीं करता क्योंकि इस तरह करने से उसके उस कार्य में अनैतिकता आ जाती है जो सामाजिक नियमों से मेल नहीं खाती ।

फ्रायडवाद तथा मार्क्सवाद भारत के परम्परागत नैतिक चिंतन के विरूद्ध हैं । इन दोनों विचारों - प्रभावों ने नैतिकता की जो व्याख्या करते समय अन्तः चेतना को मूलाधार बनाया है और मानव के अन्तःकारण में छिपी बैठी अहंता, भय और सेक्स की मूल प्रवृत्तियों को मानव - जीवन की प्रेरक शक्ति माना है । फ्रायडवाद में मानव - जीवन के मूल में निहित इन तीनों प्रवृत्तियों का अस्तित्व स्वीकार कर इनके दमन को अनुचित तथा अनिष्टकार ठहराया है । फ्रायडवाद के अनुसार इन प्रवृत्तियों का दमन मनुष्य के असामाजिक और अनैतिक आचरण को पैदा करता है, अतः इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों की पुष्टि को सर्वथा नैतिक मानते हुए इन्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखा गया । गांधीवाद ने संयम्, आत्म - शुद्धि जेसे जिन परम्परागत नैतिक आदर्शो की सराहना की है, उन्हें निषेधात्मक मान फ्रायडवाद ने उन्मुक्त भोग तथा निःआचरण स्वातन्त्र्य को सर्वथा नैतिक माना है ।[1]

जैनेन्द्र जी गांधी जी के "अहिंसा" सिद्धान्त से तो पूरी तरह सहमत हैं पर संयम, आत्म शुद्धि आदि विचार उनकी विचारधारा से मेल नहीं खाते । फ्रायड के समान वे भी वैयक्तिक स्वातंत्र्य में विश्वास करते हैं । इसलिये इन्होने अपनी कहानियों में ऐसे पात्रों की अवतारणा की है जो सामाजिक मूल्यों

1- हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता डा0 सुखदेव शुक्ला : 1966 : पृष्ठ संख्या - 313

की परवाह नहीं करते अपितु वैयेक्तिक मूल्यों में आस्था रखते हैं । आर0 के0 मुखर्जी का कथन है कि "व्यक्ति - विशेष के लिए मूल्य विशिष्ट होते हैं, उसकी चेतना, उसके अनुभवों और सामाजिक कार्यकलापों के कारण मूल्यों में वैयक्तिकता आ ही जाती है ।[1]

फ्रायड के समान जैनेन्द्र जी की भी धारणा है कि मनुष्य को स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये । वह जो कुछ भी करता है, समाज को उसके उस कार्य में बाधा नहीं डालनी चाहिये । उस मनुष्य की दृष्टि में वही नैतिक कर्तव्य है और उसे कुचल देने में अनैतिकता है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के कुछ पात्र एक ओर जहां डटकर समाज का विरोध करते हैं वहां दूसरी तरफ कुछ पात्र इस तरह की मनो-वृत्ति वाले भी हैं जो सामाजिक मूल्यों के समान अपनी व्यक्तिगत अभिलाषाओं और इच्छाओं में परिवर्तन नहीं ला पाते जो उनके काम - संवेदना के संसार में उद्‌भूत होती रहती है । वे इतनी बलवती होती हैं कि वाह्याभिव्यक्ति न होने पर अथवा निरन्तर उनका हनन या दमन होने के कारण अचेतन जगत् में एक ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है, जो व्यक्ति की निष्क्रिय एवम् जड़ मूलक बना देती है । जैनेन्द्र जी के पात्रों के सम्बन्ध में डा0 रमेशचन्द्र लवानिया का कथन है कि, उनके पात्र वाह्य नैतिकता को निभाते हुए भी नहीं पाते । अभिलाषा करते हुए भी वैयक्तिक मूल्यों की प्राप्ति के प्रयत्न नहीं कर पाते ।[1] परिणाम स्वरूप चेतन की अपेक्षा अचेतन जगत् कहीं अधिक बलशाली तथा गतिशील हो जाता है ।

जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में प्रेम, विधवा - विवाह, सती प्रथा, आदि जैसे परम्परागत सामाजिक मूल्यों तथा आदर्शों का अपनी कहानियों में नवीन रूप से विश्लेषण करने का प्रयास किया है । वे मानते हैं कि व्यक्ति

1- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डा0 रमेश चन्द्र लवानिया, 1973
पृष्ठ संख्या - 178

के समक्ष कुछ परिस्थितियां इस तरह की उपस्थित हो जाती हैं जो उसे इस प्रकार के कार्य के लिये उत्तेजित करती रहती हैं ।

जैनेन्द्र जी स्वीकार करते हैं कि मनुष्य को समाज द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार चलना चाहिये किन्तु यदि किसी कारणवश वह ऐसा करने में असमर्थ है तो उसे स्वतंत्र जीवन यापन का अधिकार प्राप्त होना चाहिये । उन्होने अपनी अधिकांश कहानियों में स्त्री - पुरूष पारस्परिक सम्बन्धों में कुण्ठा घुटन तथा तनावपूर्ण स्थिति दिखलायी पड़ती है । इसी घुटनपूर्ण मन:स्थिति के कारण वे अन्य पुरूष तथा स्त्री की तरफ आकृष्ट हो जाते हैं । सामाजिक दृष्टि में यह अनैतिक कार्य होने पर भी प्राप्त होती है । वे मानते हैं कि "अध्ययन समाज या मन का नहीं बल्कि आत्मा का होना चाहिये । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के स्त्री - पात्र अपने पति के व्यवहार से असन्तुष्ट हैं, पर पुरूष का आश्रय लेना सामाजिक मूल्यों की अवहेलना करना है परन्तु उनके अन्तर्जगत् के काम - संवेदना के संसार में जो संघर्ष होता है उससे उनकी आत्मा का हनन होता है । इसीलिये जैनेन्द्र ने आत्मा की तुष्टि के लिये उनके इस कार्य को अनैतिक नहीं माना है ।

जैनेन्द्र की परमात्ता - विषयक आस्था (कल्पना) उनको अनिर्वचनीय रहस्य भरी अनुभूति पर आधारित है । जैनेन्द्र के लिये मानव जीवन, इसी आस्था की देन है - जीवन का प्रारम्भ, अन्त तथा पुर्नविकास सब कुछ इससे अविभाज्य है । जैनेन्द्र अपनी इस कल्पना के ही होकर नहीं रह गये हैं, वरन् उन्होने मानव - जीवन के मूल संचालक मानव - मन की अतल गहराईयों में बैठकर उसकी स्वाभाविक गति को देखने और दिखाने का भी पूर्ण प्रयत्न किया है । उनकी मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी दृष्टि पारम्परिक सामाजिक बन्धनों में छटपटाते हुए पात्रों के अन्तर्जगत का मनोयोग से करती हैं । जैनेन्द्र के उपन्यासों में पात्रों की भावना, अतृप्ति और कामना का तीव्र ज्वर जिस क्षण उथलकर टूट बहना चाहती है, ठीक वही उपन्यासकार की आस्था आड़े आ

जाती है । इनके पात्र परमात्मा के बनाये पर समाज को तोड़े तो कैसे तोड़े ? समाज परमात्मा का प्रतिरूप है और ये पात्रों - पात्रों का ज्वार लौट जाता है, पुनः उनके मन के भीतर । आन्तरिक यथार्थ तथा आस्था के इस अपूर्व समन्वय के कारण पाठक को जैनेन्द्र की विचारधारा कुछ उलझी - उलझी - सी और उनके पात्र गुमसुम, अस्पष्ट से लगते हैं । उन पात्रों में विद्रोह है तो समर्पण भी है, उग्रता है तो निरीहता भी है और विस्फोट है तो निस्तब्धता भी है । जैनेन्द्र में दीख पड़ने वाले इस विरोधाभास की हम हरिप्रसन्न (सुनीता) के बर्नाड शॉ की लेखन, कला के सम्बन्ध में इस मत से तुलना कर सकते हैं ।

फ्रायड का सन्दर्भ और प्रयोग :-

जैनेन्द्र जी हिन्दी साहित्य के प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं । जैनेन्द्र में फ्रायड का प्रभाव पाया जाता है । उनके नारी पात्रों में कुंठा है, दमन है, साधारणता नहीं है, कुछ मन की विकृतियां हैं, काम भाव दमनोत्पन्न कई विशेषताएं हैं । उनके प्रत्येक उपन्यास में अवचेतन अहं ( ) और अचेतन ( ) की आकांक्षा है, पुकार है और "घर" "बाहर" के प्रति आत्म - समर्पण करने के लिये बाध्य हैं ।

सुलभ्य और सुसंस्कृति में पत्नी सुनीता का हरिप्रसन्न के प्रति समर्पण, त्यागपत्र की मृणाल का कोयले वाले का साथ देना, कल्याणी का अपने पति से उन्मना - उन्मना रहना, किसी के प्रति समर्पित होने की वेदना के लिये भी कुलीन गांधीवादी, देश के लिये अपनी निजता को भी खो देना वाले प्रीमियर के लिये अदम्य आकर्षण की अनुभूति के होते भी कल्याणी का का समर्पण तक न पहुँच पाना, सुखदा की दृढ़ मर्यादा - बुद्धि का लाल के सामने हार मान जाना, "विवर्त" में मोहिनी का जितेन के समक्ष हार जाना, "व्यतीत" नामक उपन्यास में व्याहता अनिता का एक ही दिन पूर्व "क्रूर पारी खबरदार जो मुझे छुआ है "कहकर दो तमाचे लगाने पर भी दूसरे दिन जयन्त

से कहना - "रात की बात भूल जाओ, मैं सुध में न थी । अब सुध में हूँ, कहती हूँ मैं यह सामने हूँ । मुझकों तुम ले सकते हो । समूची को चाहे जिस विधि चाहे ले सकते हो । ये सब प्रकारान्तर से प्रतीक के रूप में ( ) और ( ) के संघर्ष तथा उसकी विजय की कहानी है ।[1]

यौन कुंठाएं जैनेन्द्र जी के नारी - पात्र का एक ओर अहं प्रश्न है । जैनेन्द्र जी ने इस तरह का अहम् ही व्यवस्थित प्रकार से किया है । जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "जयवर्धन" उपन्यास में लिजा करती है - "जानते हैं अब जो है मेरी ओर से विचित्र अनुग्रह हैं फिर भी खोल सकते हैं, लेकिन मेरे प्रति अपने लोभ को नहीं जीत सकते विवाहित हूँ । तब तक अपनी परियंकशायिनी के प्रति मैं उन्हें तनिक भी असन्तोष का अवसर नहीं देती । हया यह पति नामक व्यक्ति के प्रति अन्याय न होगा - स्त्री - पुरूष के कुत्सित सम्बन्ध की प्रचण्ड आवेशपूर्ण परिस्थितियों के माध्यम से अहंकारपूर्ण दायित्व हीनता ही परिलक्षित होती है ।

यौन कुण्ठाओं की झलक सुनीता के निर्वस्त्र होने में है - "मुझे चाहते हो न ? मैं इन्कार नहीं करती । यह लो ......[2] और व्यतीत की अनिता जब कहती है - "कहती हूँ मैं यहां सामने हूँ मुझे तुम ले सकते हो समूची को - जिस विधि चाहे ले सकते हो ।[3] या इला का जय से सम्बन्धों का परिचय मेरे समूचेपन में से बोल उठा लो लो लो मुझे लो - "वर्जन करती ही मैं अपेक्षा में रही कि कोई होगा जो मेरी नहीं सुनेगा और ले ही लेगा । "अनामस्वामी" की वसुन्धरा शंकर उपाध्याय द्वारा निर्वस्त्र करने पर किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं करती - "और एकाएक झपटकर उन्होने वसुन्धरा

1- डा0 देवराज उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में मनोविज्ञान : पृष्ठ संख्या - 121

2- जैनेन्द्र कुमार : सुनीता : पृष्ठ - 236

3- जैनेन्द्र कुमार : व्यतीत : पृष्ठ - 123

के वस्त्र खींचने शुरू कर दिये । वसुन्धरा ने कोई प्रतिरोध नहीं किया मानो अपनी ओर से अनुमति बल्कि सहयोग देती हुई खिलखिलाकर हंस पड़ी ।[1]

जैनेन्द्र जी भोग को सुभीता बतलाते हैं - अनिता जयन्त से कहती है - "सब एक दूसरे के सुभीते के लिये हैं । क्या अपने में रहना कहीं हैं ? वह सच नहीं, असच है । होगा तो वही पाप होगा । दूसरा पाप मैने ढूँढ़ा मुझे नहीं मिला । तुम स्त्री नहीं हो इसीलिये न तुम्हें पुरूषत्व का मान है । पर अपने स्त्रीत्व पुरूषत्व को अखण्ड रखने के लिये हम नहीं सिरजे गये हैं । हमें एक दूसरे में अपना विलय खोजना होगा ।[2]

जैनेन्द्र जी के जितने प्रसिद्ध उपन्यास हैं - "सुनीता", "त्यागपत्र", "कल्याणी", "सुखदा", "विवर्त" एवम् "व्यतीत" सभी घटनाओं में घटनाओं का तरीका एक ही ढंग का है । सभी पात्र योनिक द्रृष्टि से संगत नहीं है । सभी में किसी न किसी ढंग की यौनिक असाधारणता अथवा अपराधारणता है । उनमें यौनिक प्रवृत्ति बहुत पाई जाती है । वे बड़े उत्साह से स्त्रियों की तरफ अग्रसर होते हैं, उनका घेराव करते हैं, परस्यू करते हैं । वे बड़े कर्मठ हैं, क्रान्ति दल के नेता हैं । जान ले लेना और जान दे देना उनके लिये खोल है, सरकारी खजाने लूट लेते हैं, ट्रेन उलट देते हैं । यह सब कुछ हैं पर जब नारियां उनके प्रति समर्पण पर आ जाती हैं, सेक्स की चरम तृप्ति का अवसर जाता है तो ठीक ऐन मौके पर वे दुम दबाकर भाग जाते हैं ।[3] सुनीता का उपन्यास का हरिप्रसन्न एक जगह पर कहता है - ठहरो भाभी, मैं इसलिये विवाह नहीं करता कि मैं पत्नी नहीं चाहता । मैं सब कुछ चाहता हूँ सब कुछ । मुझे चाहिये महोत्सर्ग ।[4]

1- जैनेन्द्र कुमार : अनामस्वामी : पृष्ठ - 227

2- जैनेन्द्र कुमार : व्यतीत : पृष्ठ - 123

3- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : पृष्ठ - 97

4- जैनेन्द्र कुमार : सुनीता : पृष्ठ - 160

प्रणय - व्यापार में मनोविश्लेषणवादियों ने एक रहस्य का वर्णन किया है कि कुछ लोगों के प्रेम - निवेदन में एक असामान्यता पाई जाती है । कुछ व्यक्ति कुमारी तथा अपनी पत्नी के प्रेम के भावों से आन्दोलित हो ही नहीं सकते । वे ऐसी पत्नियों को प्रेम करते हैं जो दूसरे की हो । प्रेमी तथा प्रेमिका के बीच एक तीसरा व्यक्ति होना ही चाहिये जिसको आहत कर चोट पहुँचाकर, जिसके अधिकारों को छीनकर तृप्ति लाभ हो । फ्रायड के शब्दों में प्रणय - व्यापार की सफलता के लिये ऐसे व्यक्तियों को एक आहत तृतीय पक्ष की अनिवार्य आवश्यकता होती है । तभी वे काम - प्रेरित हो सकते हैं । "सुनीता" में हम इस प्रकार की स्थिति प्राप्त करते हैं । हरिप्रसन्न जब चला जाता है तो उसके पति का वितृष्ण भाव सुनीता की तरफ झुक जाते हैं । हरिप्रसन्न की असफलता में ही श्रीकान्त की विजय है । जब उनके प्रेमाधार सिर्फ ऐ सुनीता रह जाती है । सुनीता के प्रति उसके मनावेग लौटता है । यह मालूम होकर कि हरिप्रसन्न चला गया है वह वेग से बढ़कर दोनों हाथों में सुनीता को उठा लेता है तथा वहीं आलिंगन में उसे जकड़ लेना चाहता है । सुनीता आश्चर्य चकित रह जाती है । वह कहती है - "मैं तो सदा तुम्हारी हूँ । फिर छिः छिः मेरे लिये प्रेम का यह आवेग कैसा ? और ऐसी धीरज क्यों खोते हो ? मुझे तनिक संभलने भी तो दो ।[1] किन्तु मन की ग्लानि भी छिपी है, जो सुनीता की विमलता, उसकी आभा को परिलक्षित कर समाप्त हो जाती है । वहां वह अपने पति के आदेश को भी पूर्ण करती है तथा अपने वैवाहिक - जीवन में एक नवीन ताजगी प्राप्त करती है ।

जैनेन्द्र जी वास्तविक अर्थ में हिन्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं । उन्होने हिन्दी साहित्य की निर्जीव औपन्यासिकता में (जिसमें या तो किसान तथा जमींदारों के बीच संघर्ष दिखाने वाले निर्जीव कठपुतलों का खेल

---

1 - जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ - 242

दिया जाता था या काव्य जगत के अवास्तविक जीवों के स्वर्गीय प्रेम का स्वांग भरा जाता था । सप्राण और अन्त संघर्ष पात्रों की सजीवता भर दी ।[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में मनोविज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में अचेतन मन के रहस्यमय स्थलों के अन्वेषण तथा विश्लेषण सूक्ष्म रूप से अभिव्यक्त हुए हैं । उन पर फ्रायड तथा गेस्टाल्टवादी मनोविज्ञान (सम्पूर्णतावादी मनोविज्ञान) का विस्तृत प्रभाव पड़ा है ।

एडलर और युंग का प्रभाव :-

फ्रायड के मन की अचेतन क्रिया प्रणाली पर बल दिया था जिसकी वजह से साहित्य - सर्जक तथा पाठक का समस्त क्रिया - कलाप नियंन्त्रित होता था । युंग ने फ्रायड की काम - वासना सम्बन्धी धारणा को ललकारा तथा एडलर ने मानव के बाहरी सामाजिक वातावरण पर बल दिया, अर्थात एडलर ने व्यक्तित्व के चेतन भाग अहम् पर बल देकर मनोविश्लेषण सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । एडलर फ्रायड के विपरीत व्यक्ति की सामाजिकता पर अधिक जोर देता है उनके अनुसार हर एक मानव में सामाजिकता पाई जाती है । जब व्यक्ति में सामाजिक गुणों का विकास उचित मात्र में नहीं हो पाता तो उसका व्यक्तित्व असाधारण हो जाता है । इस तर्क से शैक्षिक समाजशास्त्र एवम् बाल मनोविज्ञान पर बड़ा असर पड़ा । एडलर के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार, "हीनता और उच्चता की भावनाएं वे सामान्य स्थितियां हैं जो मानव व्यवहार को अधिकृत और अनुशासित करती हैं ।[2]

1- इलाचन्द्र जोशी : विवेचना, पृष्ठ - 121 (द्रष्टव्य - आधुनिक हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान)

2- एडलर : द साइंस आफ लिविंग : पृष्ठ - 65

एडलर ने इदम् तथा परम् अहम् की जगह पर अपना अध्ययन - क्षेत्र सिर्फ अहम् को बनाया । अन्ना फ्रायड ने भी एडलर की धारणा का सैद्धांतिक रूप से समर्थन किया । एडलर ने जीवन - शैली के अलावा सामाजिक रूचि एवम् क्रिया की मात्रा दो ऐसे तत्व तौर बतलाये जो कि मनुष्य के व्यक्तित्व पर असर डालते हैं । सच में एडलर के सिद्धान्त, फ्रायड से कहीं ज्यादा आशावादी तथा तर्कसम्मत हैं ।

एडलर के अनुसार, "मानसिक विकृतियों का कारण यह है कि अपने को अत्यन्त श्रेष्ठ और सबकी श्रद्धा का पात्र बनाने की जिस जीवन - शैली का निर्माण मनुष्य के अन्दर हुआ है, उसमें सामाजिक और वैयक्तिक आदर्शो का सामंजस्य संभव नहीं हो सकता । इस जीवन शैली का निर्माण सभी में होता है क्योंकि सभी हीनता की भावना से पीड़ित होते हैं ।

एडलर ने फ्रायड द्वारा प्रतिपादित अचेतन, दमन तथा कामशक्ति को कोई विशेष महत्व नहीं दिया । उन्होने मानव की मूल वासना को काम वासना न स्वीकार कर विजय की वासना स्वीकार किया है । मानव में अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है । यह प्रभुत्व - कामना हमारे जीवन का प्रमुख तत्व है ।

एडलर फ्रायड के साथी थे, परन्तु बाद में वे उनसे अलग हो गये, क्योंकि फ्रायड के काम - भावना के सिद्धान्त से वे सहमत नहीं थे । इनके अनुसार व्यक्ति का व्यवहार काम - शक्ति से प्रेरित नहीं होता । जीवन के लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति के लिये व्यक्ति अपनी एक अलग ही जीवन - शैली अपना लेता है । बाल्यावस्था में ही बालक के अपने को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करता है । उसे पता चलता है कि वयस्कों की अपेक्षा वह हीन है और शरीर तथा बुद्धि से छोटा है, अतः वह अपनी इस हीनता की क्षतिपूर्ति का प्रयास करता है । वह इस प्रयास में सफल भी हो सकता है और विफल भी । लड़कियों में वह हीनता - ग्रंथि (Inferiority - Complex) लड़कों

की अपेक्षा अधिक पाई जाती है, क्योंकि वे समझती है कि लड़की के पास शिशन है, उनके पास नहीं । अतः उन्हें शिशन से ईर्ष्या हो जाती है । उनमें यह उत्कट भावना पाई जाती है कि उनमें पौरूष नहीं है, इसे एडलर ने पुंस्पृहा (Masculine - Protest) के नाम से पुकारा है । एडलर के मनोविज्ञान को "व्यष्टि मनोविज्ञान (Individual Psychology) कहा जाता है ।

एडलर के अनुसार चेतन तथा अचेतन की अलग सत्ता नहीं हैं । अचेतन चेतन का वह हिस्सा है जिसके विषय में हम अनभिज्ञ है । बालक जब अपने हीन भाव की क्षतिपूर्ति के लिये प्रयत्न करता है तो वह महान् कार्य कर सकता है । मानसिक व्याधियां काम - वृत्ति के दमन के कारण नहीं होती, हीन - भावना के कारण होती है । इन्हें दर करने के लिए, परामर्श (Counselling) समाजीकरण (Socialization) पुनर्शिक्षण (Re - Education) इत्यादि विधियों का प्रयोग किया जाता है ।

फ्रायड के ही समकालीन कार्ल गस्टवां युग है जिन्होने फ्रायड की मान्यताओं को ललकारा । युग के अनुसार मानसिक शक्ति, शारीरिक शक्ति की ही एक निरन्तरता है और लैंगिक शक्ति इसका एक पक्ष है । युग ने अचेतन मन के दो रूप माने हैं - पहला तो व्यक्तिगत अचेतन तथा दूसरा सामूहिक अचेतन । अचेतन के अध्ययन के लिये युग ने स्वतन्त्र साहचर्य विधि का प्रयोग किया ।

एडलर तथा युग ने मनोविश्लेषण की उस विचारधारा का तीव्र विरोध किया जो प्रथम विश्व - युद्ध से पहले प्रचलित थी । फ्रायड ने काम - वासना (Libido) पर जो अधिक महत्व दिया था, उसे वे अमान्य थे । युग की रूचि काम - वासना में न रहकर अचेतनात्मक प्रक्रिया से थी ।

काम से सम्बन्धित युग की विचार धाराएं 1912 में प्रकाशित उनकी पुस्तक "The Psychology of Unconscious" से प्राप्त होती है। इस पुस्तक में युंग ने कहा कि "काम जीवन की सामान्य शक्ति है। इस तरह "काम" शब्द की युग ने उस वर्ष में नहीं लिया, जिस अर्थ में फ्रायड ने सर्वशक्ति लिया है। युंग के विचार से मानव - व्यवहार न तो फ्रायड के सर्वशक्तिशाली काम - वासना द्वारा ही नियंत्रित होता है, तथा न एडलर की रचनात्मक शक्ति से। युंग ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति में "अपृथकीकृत" जीवन शक्ति (Undifferentiated life Energy) पाई जाती है। तथा यही शक्ति वास्तव में काम - वासना, कलात्मक निर्माण, सर्वश्रेष्ठता, खेल तथा अन्य क्रियाओं की स्त्रोतदा बिनी है। रचनात्मक शक्ति तथा काम वासना का प्रयोग सिर्फ "स्व - रक्षा" एवम् जाति - रक्षा के उद्देश्य से किया जाता है परन्तु जब ये शारीरिक इच्छाएं पूर्ण हो जाती है तो मानव अन्य सामाजिक, धार्मिक तथा निर्माणात्मक आवश्यकताएं पूरी करता है।

फ्रायड ने कहा कि मानव में काम - वासना ही प्रमुख प्रेरक - तत्व होता है। युग ने कहा कि - "मनुष्य में स्व - रक्षा ही प्रमुख प्रेरक तत्व होता है। भोजन ग्रहण करना एक प्राथमिक प्रक्रिया है। मानसिक शक्ति का प्राथमिक कार्यजीवन रक्षा है। किन्तु जब एक बार इस दैहिक आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है तो अतिरिक्त काम - वासना अन्य सामाजिक एवम् आध्यात्मिक कार्यो की तरफ निर्देशित कर दी जाती हैं। जो शक्ति अतिरिक्त काम - वासना शक्ति को इन कार्यो की तरफ निर्देशित करती है, उसे युग ने चिन्ह (Symbols) कहा।[1]

---

1. "Symbols are the manifestation and expression of the excess libido, At the same time they are transitions to new activities, which must be specifically characterised as cultural activities in contrast to the instinctive functions that run their course according to natural la."
— Young: Contributions to Analytical Psychology. P.53

युंग ने कुछ सिद्धान्तों को इस रूप में रखा जो बिलकुल नये थे । युग की महानता रहस्य विद्या (Misticism) के अध्ययन में मिलती है । इसने विभिन्न धर्मो, दर्शनों एवम् धार्मिक गाथाओं का अध्ययन किया तथा इन्हीं के आधार पर सामूहिक चेतन में पाये जाने वाले मूल रूपों की व्याख्या की । इनके विचार से मानसिक चिकित्सा में धार्मिक विश्वासों का बड़ा महत्व है । युग ही सर्वप्रथम व्यक्ति था, जिसने धर्म तथा रहस्य जैसे विषयों का महत्व भी मनोविज्ञान को बतलाया । किसी व्यक्ति के अचेतन मन में निहित मूल रूपों का अध्ययन उसके सामाजिक वातावरण के अध्ययन के बिना है । युग का मानसिक अव्यवस्था सम्बन्धी अध्ययन भी अतिमहत्वपूर्ण है जो मानसिक अव्यवस्था के रोगी है, वे कभी भी युग के सिद्धान्तों को त्रुटिपूर्ण नहीं कह सकते ।

एडलर के विचारों (हीनता ग्रन्थि और क्षतिपूर्ति) और युग के अभिप्रयों (सामूहिक अवचेतन आदि) ने मानव स्वभाव या व्यक्तित्व को दो भिन्न अवस्थाओं में खोजने का प्रयास किया । एक तरफ यौन संवेदन से बर्हिमुख अहं की वृत्ति को समझने का प्रयास किया गया तो दूसरी तरफ अन्तर्मुखी तथा बर्हिमुखी व्यक्तित्व प्रकारों के निरूपण की दिशा से प्रयास किया गया ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में मानसिक उदात्तीकरण के उदाहरण प्रत्यक्ष हैं । इस मनोविकार की व्याख्या मनोविज्ञान हैं एक विशेष अर्थ में की गई है । यह जहां एक सीमित अर्थ में अर्द्धचालित दशा अथवा मानसिक प्रक्रिया का उदाहरण है । वहां दमित मनोग्रन्थियों के माध्यम से प्रेरित अवचेतन के माध्यम से निर्धारित लक्ष्यों के प्रति उन्मुखता का उदाहरण भी है । लेखक अधिकांशतः अपने चरित्रों को उनकी सीमाओं में गौरवान्वित करने हेतु मानसिक उदात्तीकरण जैसी प्रक्रिया अपनाता है । "परख" नामक उपन्यास की कट्टो की प्रेम की स्वाभाविक इच्छा सत्यधन के प्रति है । सत्यधन के समक्ष दुविधा है, उसे भी प्रसाद के कुछ चरित्रों की तरह मानसिक उदात्तीकरण के रूप में देखा जा सकता है । कट्टो सत्यधन को न प्राप्त कर सकी

तो वह तथा कथित शादी के ही मार्ग से दूर चली जाती है तथा बिहारी के प्रेम के साथ विवाह की प्रतिज्ञा से बंध जाती है । "परख" नामक उपन्यास से ही जैनेन्द्र में मनोवैज्ञानिक - युक्तियों - तात्पर्यो का अधिकांशतः सचेतोपयोग परिलक्षित होता है । "परख" नामक उपन्यास में सत्यधन - कट्टो - बिहारी का जो त्रिकोण बनता है, वह कुछ निश्चित मनोवैज्ञानिक मुक्तियों पर केन्द्रित है । सत्यधन तथा कट्टो के मध्य सहज सम्बन्ध नहीं हो पाता तो इसीलिए कि दर की गरिमा बिहारी ने कट्टो के लिए जो आकस्मिक साहस दिखाया उसके पीछे गरिमा सत्यधन सम्बन्ध की चेतना हो सकती है, पर यह अनावश्यक नहीं है । कट्टो के मन में सत्यधन के पलायन का जो परिताप है वह एक सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक परिस्थिति पर छाया हुआ है, "वही कमरा है, वही आला है, वही कट्टो है । फिर भी वही नहीं है । उसी कटोरे में वैसा ही सफेद दूध है पर उसे जादू का फूंक फेर दिया गया है और वह दूध नहीं हलाहल है । इस कमरे की स्मृति, यह सामने का आला जिसमें उस दिन का छः पैसे का दर्पण रखा है और वह कंघा और टिकुली की डिबिया मानो सब उसको चिढ़ाते हुए उससे कह रहे हैं, तुमने इसे धोखा देकर रखा है, हम पराये हैं, पराये हैं । एक दूसरी मनोवैज्ञानिक गांठ धर विचार करें तो देख सकेंगे कि बिहारी का वरण कट्टो का अपने से ही अलगाव है - चिरंतन अलगाव ।

जैनेन्द्र जी यह भलीभांति जानते हैं कि स्वार्थी तथा ईर्ष्या को श्रद्धा में परिवर्तित करने वाला तत्व आकर्षण है परन्तु व्यक्ति की नियति में यह आकर्षक एक रूप होकर घटित नहीं होता ।

यौन जीवन की विफलता "त्यागपत्र" नामक उपन्यास की मृणाल को सुधार चेष्टाओं में लगाती है - यद्यपि यह असफलता अकेला कारण नहीं है, जिसे सांसारिक दृष्टि "पतन" कहेगी, उसे मृणाल "प्रतिष्ठा" के स्तर तक ले जाना चाहती है । वह उदात्तीकरण की मांग नहीं तो और क्या हो सकता

है । श्रद्धा के साथ मृत्यु को प्राप्त करना उसकी दृष्टि में निरर्थक नहीं है । जैनेन्द्र जी मृणाल के आत्मोत्सर्ग को लक्ष्य कर लिखते हैं 'जिनका जीवन कुछ हो, और उठती लौ की भाँति जलता रहा । धुआं उठा तो उठा, पर लौ प्रकाशित रही । त्यागपत्र नामक उपन्यास में संघर्ष के अनेक पहेलुओं से ध्यान हटाने वाली वस्तु है, मृणाल की दैहिक आसक्ति । मृणाल का जिन परिस्थितियों में विकास हुआ उनमें अस्वीकृत की यातना ही । शादी के पश्चात् भी वह स्वीकृति न प्राप्त कर सकी । बल्कि इस बार अस्वीकृति की यातना और भी बढ़ी थी । शीला के भाई से प्रेम का जो हल्का प्रसंग घटित होता है वह भी ज्यादा यातना तथा परिवार के लोगों में अपने लिए घृणा की वजह बन जाता है । उसकी मानसिक बनावट को हर समय प्रभावित कर रही थी । उधर कट्टो को ध्यान में रखते हुए बिहारी के पिता ने सही सम्य पर यह सीधे पकड़ने वाला प्रश्न पूछा था, "क्या तुम उस लड़की से प्रेम करते हो । "उन्होने यह व्यंग्य भी उचित ही किया था कि आधिपत्य की आकांक्षा ही तो प्रेम के मूल में निवास नहीं कर रही है । जैनेन्द्र जी की इस युक्ति को सतर्कता से परखने की आवश्यकता है जो अहं की ग्रन्थि को एक पूरे मनो-वैज्ञानिक अभिप्राय के रूप में सामने रखती है । अहं को सुरक्षित रखने के लिए सत्यधन ने कट्टो से शादी नहीं किया, बल्कि एक कवच अपने लिये सुरक्षित रखा है । इसी प्रकार कट्टो बिहारी को वरण करके भी विधिवत दाम्पत्य से भी वंचित रहती है, तो वह सहज त्याग नहीं, बल्कि त्याग की ग्रन्थि है । उचित रहती है, तो यह सहज त्याग नहीं बल्कि त्याग की ग्रंथि है । उचित सम्य आने पर वह सत्यधन पर अतिरिक्त उपकार करना चाहती है कहने का तात्पर्य एक तरह से मनोवैज्ञानिक सतह चाहती है । इस परिस्थिति के सृजन में एक मनोवैज्ञानिक केस बनाने की लेखकीय प्रवृत्ति भी सक्रिय है । लेखक ने यह संकेत दिया है कि कट्टो सत्यधन से ऊपर थी । अपनी असामान्यता से सामान्यता और विशेष थी तथा इस प्रसंग में सत्यधन की कुल अमूर्त मानसिक इच्छा होड़ में विजय की ही थी । इस मनोवैज्ञानिक रहस्य की दृष्टि से यह संकेत विचारणीय है ।

उसने देखा कैसे एक शहरी लड़की उसे निरूत्तर कर सकती है जब वे दोनों अकेले हैं, संसार का कोई नियम जब उनमें अन्तर डालने को उपस्थित नहीं है, तब कई बातों में वह लड़की ही उससे ऊपर है । वह सत्य ने देखा और उस पर विजय पाने की इच्छा हो आई ।

पुनः सत्यधन के लिए यह संकेत है :

"वह चौंका । देखा बात बढ़ रही है । तो यह बात है । मेरा तो अधिकार कुछ है नहीं, अपने अधिकार की सर्तकता से रक्षा भी करनी आरंभ कर दी । पर यह बात में कहां तक झुकता जाये ?

ये संकेत उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक परिस्थिति को समझने में मदद दे सकते हैं । पुरूष तथा स्त्री का निसर्ग द्वन्द्व भी इस मनोवैज्ञानिक परिस्थिति को निर्धारित करता है । निसर्ग द्वन्द्व में जीत - हार का मनोविज्ञान भी निहित है । मृणाल की दशा एक सामान्य दशा की है जिसके अहं ने बार - बार अपमानित होकर सिर्फ यह ज्ञानार्जित किया कि जीवन की यातनाएं सिर्फ सहने के लिये है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में पात्रों के मनः विस्थापन के कई उदाहरण प्राप्त होंगे । एक चरित्र स्वाभाविक संवेग की अभिव्यक्ति को असंभव प्राप्त कर उसके लिये एक दूसरी दिशा खोज लेता है । यही मानसिक विस्थापन की प्रक्रिया है । "विवर्त" नामक उपन्यास के जितेन में भुवनमोहिनी को न प्राप्त कर जो कुंठा पैदा होती है वही उसे क्रान्तिकारी, उग्र या हिंस्त्र क्रान्तिकारी निर्मित करती है जिसमें मानवता अशेष रही । इसी तरह जैनेन्द्र जी के अधिकांशतः सभी उपन्यास अचेतन की अनेक प्रतिक्रियाओं को उपलब्ध अथवा उद्घाटित करते हैं । हरिप्रसन्न में स्त्री पर्क की लालसा दमित रह गई है, वही सुनीता का साहचर्य प्राप्त कर प्रखर हो गई है । कोई उपरिसत्ता ही हरिप्रसन्न की नियति को संचालित करती है । "सुनीता" नामक उपन्यास में अनेक मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों लक्ष्य की गई है । प्रथम ग्रन्थित श्रीकान्त की मानसिक बनावट में ही है ।

वह अपनी पत्नी के प्रति दैनिक साहचर्य में वासक्ति खोता जा रहा है । यह आसक्ति दुबारा तब लौटती है जब सुनीता के जीवन के हरिप्रसन्न का प्रवेश होता है । अकारण नहीं कि फिर हरिप्रसन्न के मन की आसक्ति सुनीता को कठिन तृतीय व्यक्ति की आवश्यकता कहा गया है । खुद सुनीता श्रीकान्त के प्रोत्साहन से तथा आतंकवादी हरिप्रसन्न के प्रति निरीह मनत्व से जिस दिशा में अग्रसर होती है वह अचेतन के स्तर पर चलने वाली,दिशा अपराध - बोध की दिशा है । सत्या के सुनीता के प्रति सहानुभूतिशील व्यवहार का आधार भी एक मनोवैज्ञानिक तर्क है, जिसे सत्या का सुनीता के प्रति एकात्मभाव कहा जाता है । हरिप्रसन्न का व्यर्थताबोध कहीं न कहीं अहंकार ग्रन्थि का प्रश्न है । जैनेन्द्र जी की टिप्पणी है - हरिप्रसन्न का चित्र मानो एक प्रकार की व्यर्थता के बोध के नीचे संकुचित ही रहता है । संकुचन में से ही अहंकार का उदय से, भय की भीति है । मानों कुछ उसके भीतर से व्यंग्य करता हुआ उठता है - क्यों तू आतंकित है ? तू जमी है ? अरे तू तो अधम है । सभी जानते हैं कि अहंकार और भय और काम मनुष्य की मूल वृत्तियां हैं और अनेक दशाओं में ही मिलकर व्यक्ति व्यवहार अथवा संस्कार को कठिन बना देती है ।

"कल्याणी नामक उपन्यास में चेतन - अचेतन का संघर्ष कम नहीं है । कल्याणी में प्रेम वातनादायी तत्व है तथा यातना भी प्रेमाभिव्यक्ति है । कल्याणी की आध्यात्मिक चिंताएं उनके अहं की सृष्टि है, जो पति के लिये समस्या बनती है । कल्याणी गर्भवती होकर भी संतान को पैदा करने से डरती है, यद्यपि उसके पोषण के लिए वह कुल जीवन सतर्क रही है । वह "सफलता का भय" नामक ग्रन्थि का ही प्रक्षेप है । इससे ज्यादा इस उपन्यास में कोई मनोवैज्ञानिक तनाव हो भी तो लेखक ने अनावश्यक खींचतान में उसे सरलीकृत कर रहा है ।

"सुखदा" नामक उपन्यास में कुछ विशेष मनोवैज्ञानिक समस्याएं उभरती हैं । सुखदा के आरम्भिक विकास में ही असाधारण की गांठ थीं । इसी गांठ को परिस्थितियों ने जटिलतर बनाया । लेकिन परिस्थितियों में अभाव भी थे जिन्हें भावनात्मक तृप्ति भर नहीं सकती थी । सुखदा में तृप्ति नहीं भी थी । अहं की मांग ने ही उसे क्रान्तिकारियों का सम्पर्क दिया, जिनमें लाल सरीखे आक्रामक रहस्यमय व्यक्तित्व का सम्पर्क भी सम्मिलित था । इस स्थितियों के बावजूद उस पर पति का निर्वाध स्नेह था, जिसके मनोवैज्ञानिक कारणों का अनुमान किया जा सकता था । जैनेन्द्र जी संभवतः पति की निरीह अपूर्णता को प्रकाशित करना चाहते हैं ।

"विवर्त" नामक उपन्यास में जितेन की क्रान्तिकारिता के मूल में प्रेम की विफल कुंठा है । मोहिनी के जीवन में दुबारा प्रवेश कर जितेन जैसी क्षतिपूर्ति चाहता है । उसका कारण कोई असहत ग्रन्थि ही हो सकती है ।

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "व्यतीत" नामक उपन्यास के जयन्त में अन्नी के प्रति (जो है तो दूर की बहन ही) आसक्ति है पर वह अचेतन स्तर पर ही । वह अन्य स्त्रियों से अलग रहता है, सिर्फ इसलिये कि उसके अचेतन मन पर अन्नी का पूरा नियंत्रण रहता है । अपात्रता का बोध उसे है, यह उसकी अचेतन ग्रन्थि का ही परिचायक है । जैनेन्द्र जी के यहां "न्यरोटिक" अथवा "परख" पात्रों की कमी नहीं है । अनामस्वामी नामक उपन्यास का शंकर उपाध्याय एक तरफ आदर्श जीती है, युवकों में नया प्राण संचार करने में लगा है, दूसरी तरफ प्रथम पत्नी को मारकर, वसुन्धरा की हत्या भी करता है । वसुन्धरा उसकी अपूर्णता उसके विभाजित व्यक्तित्व को संपूर्ण विस्थता में प्रत्यक्ष कर जाती है ।

"जयवर्धन" नामक उपन्यास की इला पहले के चरित्रों में कल्याणी जैसे चरित्र का विकास है, इस धारणा से यह सहमति कठिन होगी । इला के व्यक्तित्व में जो मूर्तता है वह कल्याणी में नहीं के बराबर है । प्रीमियर

तथा जयवर्धन का साम्य भी एक अर्द्धसंभावना है । डायरी के स्तर पर चलने वाले इस उपन्यास में मुक्त आसंग विचार प्रवाह की शैली अपनाई गई है । जो मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की अपनी प्रिय युक्ति है । "जयवर्धन" की बुनावट में मनोवैज्ञानिक समस्याओं से अधिक राजनीतिक समस्याओं का योग है । "मुक्तिबोध" नामक उपन्यास का आत्म संवाद शिल्प भी मनोवैज्ञानिक उपन्यास के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है । यहां भी लेखक ने पहले जैसी मनोवैज्ञानिक युक्तियों की चिन्ता नहीं की है । अनुमान किया जाता है कि मनोवैज्ञानिक युक्तियों का आतंक कुछ आगे चलकर घटा है ।

इसमें सन्देह नहीं कि जैनेन्द्र जी के कथा संसार के अधिसंख्या पात्रों में अवरोध या दमन, कुंठा तथा मनोविकृति, असाधारणता और हीनग्रंथि जैसी प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं । इस दृष्टि से जैनेन्द्र जी का अध्ययन करते हुए उन्हें गेस्टाल्टवादी उपन्यासकार की संज्ञा दी गई है । साथ ही यह कहा गया है कि "यह अभियान केवल अर्थवाद के रूप अहं । चेतन अहं और अचेतन का संघर्ष ही जैनेन्द्र जी के वहां घर और बाहर का संघर्ष है । उदाहरण के लिये सुनीता का हरिप्रसन्न के लिये झुकाव, मृणाल (त्यागपत्र) का एक विवश परिस्थिति में कोयले वाले के प्रति सम्बन्ध कल्याणी का पति से कठिन (यद्यपि अकारण) दरी देश सेवारत प्रीमियर के लिए चाह पर बदले में सुखी निराशा, सुखदा का लाल के समक्ष कातर समर्पण, विवर्त नामक उपन्यास में मोहिनी की जितेन के प्रति हीन पराजय, व्यतीत नामक उपन्यास की अनिता का जयन्त से एक अपनी स्थिति में दुराव और फिर विवश समर्पण जैसी स्थितियों का हवाला दिया जाता है ।

जैनेन्द्र के औपन्यासिक पात्रों की मनोदशाओं का अवलोकर करते हुए यह कहना तर्कसंगत है कि जैनेन्द्र जी के उपन्यासों पर एडलर तथा युंग जैसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा रहा है ।

अन्तः क्रियाएं एवम् अन्तर्द्वन्द्व :-

मनुष्य के अन्तर्जगत की सक्रियता को उसके वाह्य क्रिया - कलापों से ही पूर्णरूपेण समझ लेना संभव नहीं है । उसके आन्तरिक स्वरूप को विविध साधनों से विश्वसनीय रूप से समझना अत्यन्त आवश्यक है । कार्य और व्यवहार द्वारा व्यक्ति के प्रत्यक्ष रूप को देखा और परखा जा सकता है । परन्तु उसके अन्तर्जगत का स्वरूप इतना रहस्यपूर्ण होता है कि वहां तक पहुँचने के लिये मनोविश्लेषण का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है । व्यक्ति के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है । कार्य तो प्रत्यक्ष हो जाता है परन्तु अधिकांश स्थितियों में कारण परोक्ष ही रह जाता है और वह मनुष्य के अन्तर्जगत में संघर्ष करता रहता है ।

अब यह प्रश्न उठता है कि वे कौन से कारण हैं जो व्यक्ति के अन्तर्जगत में संघर्ष पैदा करते हैं और उसके अचेतन को क्रियाशील बनाए रखते हैं ? सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैक्डगल स्वीकार करते हैं कि मनुष्य के अन्तर्जगत में कुछ मूल प्रवृत्तियां निवास करती है । इनकी संख्या उन्होने चौदह बताई हैं । इन मूल प्रवृत्तियों के अन्तर्गत ही प्रणात्मक शक्तियां निहित होती है । जो मनुष्य को किसी न किसी कारणवश कार्य करने के लिए उत्तेजित करती रहती हैं । कर्क पैट्रिक तथा एडवर्थ प्रभृति मनोवैज्ञानिक ने भी मूल प्रवृत्तियों का विभाजन किया है, परन्तु मैकडगल का विभाजन अधिक युक्तिसंगत तथा वैज्ञानिक प्रतीत होता है । उनके अनुसार संवेगों और मूल प्रवृत्तियों का निश्चित युग्म मनुष्य के अन्तर्जगत की केन्द्रीय प्ररणात्मक शक्ति है और प्रत्येक कार्य का सम्बन्ध - सूत्र उससे जड़ा होता है ।

मैक्डगल की इस मान्यता को मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार नहीं किया है । उसका मत है कि सभ्यता के समानान्तर इनका विकास होता रहा है । कतिपय प्रमुख मनोविश्लेषण विचारकों ने मैक्डगल

की स्थापना को अस्वीकृत करते हुए चेतन प्राणी की समस्त क्रियाओं की उद्गम शक्ति के रूप में एक ही प्रवृत्ति को स्वीकृति प्रदान की है । मनुष्य के अन्तर्जगत के दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिक परीक्षणों तथा साहित्य को अत्यधिक प्रभावित करने वाले विचारक फ्रायड ने इस मूल प्रवृत्ति को कामशक्ति की संज्ञा दी है । युंग ने मानव शक्ति (Libido) के नाम से अभिव्यक्त किया है । शोपनहावर इसे जीने की इच्छा (desire to live) मानते हैं । बर्गसन ने इसे प्राणशक्ति (Elanvital) के रूप में स्वीकृति दी है । इन विद्वानों का विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति में जीवित रहने की इच्छा विद्यमान रहती है । इनके विचारानुसार मूल - प्रवृत्तियां एक दूसरे से सम्बन्धित ही नहीं होती, वरन् एक ही शक्ति की पृथक शाखाएं हैं । यह स्पष्ट है कि जब किसी मूल प्रवृत्ति में अन्तर उपस्थित होता है, तो उसमें निर्बलता और प्रभाव न्यूनता के लक्षण आ जाते हैं, परन्तु वह स्पष्ट नहीं होती ।

मनुष्य के अन्तर्जगत में एक केन्द्रीय प्रेरणात्मक शक्ति होती है जिसका सम्बन्ध प्रत्येक कार्य से जुड़ा होता है । इस प्रेरणात्मक शक्ति के वर्णन द्वारा मनुष्य के अन्तर्जगत के अव्यक्त तथा रहस्यपूर्ण अंश को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है । अतः प्रेरणा उस शक्ति को कहते हैं जो व्यक्ति की किसी कार्य - विशेष के लिये प्रेरित करती है और उसे गतिशील बनाती है । अन्तः प्रेरणाके अभाव में कोई भी कार्य पूर्णता की ओर अग्रसर नहीं होता, केवल समझ लेने, विचार कर लेने या देख लेने से कोई भी प्रयत्न अन्तः प्रेरणा से परिचालित नहीं माना जा सकता, उसमें आवश्यकता पूर्ति की क्रियाशीलता तथा उद्योगशीलता की अनिवार्यतः होनी चाहिये ।[1]

1- "A cognitive ate, whether sensery perception, image or ideas, is not precisely a motive untill it serves as a stimuleting force to our appetitive power."

— James K. Foyee : Man and his nature. P 63-71

प्रत्येक मनुष्य का दृष्टिकोण आचरण तथा क्रियाशीलता अन्तः प्रेरणा द्वारा ही परिचालित होती है । यदि मनुष्य के कार्यकारण की यथोचित व्याख्या करनी है तो अन्तः प्रेरणा के वास्तविक रूप को ग्रहण करने पर ही की जा सकती है । व्यावहार - सम्बन्धी क्रियाओं का विश्लेषण करने के लिये उनसे वाह्य रूप तक सीमित रहने पर आन्तरिक विश्लेषण नहीं हो सकता । उस आन्तरित स्थिति को जानना अत्यन्त अनिवार्य है जिसकी प्रेरणा से व्यक्ति विविध कार्यो को सम्पादित करता है ।

अब यह जानना आवश्यक हो जाता है कि अन्तः प्रेरणाओं का वर्णन किस प्रकार किया जाये । इसके लिये यह आवश्यक है कि उनका वर्णन वांच्तिय सन्तुलन युक्त हो । मनुष्य के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य के पीछे जो प्रेरणात्मक शक्ति होती है, उसका वर्णन सांकेतिक रूप से होना चाहिये । मनुष्य अपने अन्तर्जगत के परस्पर - विरोधी प्रतीत होने वाले कार्यो की युक्ति - युक्तता को अन्तः प्रेरणाओं के वर्णन द्वारा समर्थन प्रदान कर सकता है । इनके वर्णन द्वारा मनुष्य की विचित्रताओं और उसकी व्यवहारगत असंगतियों को समझा जा सकता है ।

वाह्य कार्य तथा आचरण द्वारा व्यक्तित्व की जो व्याख्या होती है उसमें स्वाभाविक रूप से व्यक्तित्व - विश्लेषण नहीं हो पाता । जब इन कार्यो की प्रेरक शक्तियों का चित्रण होता है तब इनका औचित्य बोध होता है । ऐसी स्थिति में ही उनकी विविधता को एकरूपता दी जा सकती है तथा उन्हें परस्पर संतृप्त किया जा सकता है । यह देखा जाता है कि एक ही मनुष्य के कार्य और व्यवहार विभिन्न स्थितियों में सर्वथा भिन्न होते जाते हैं तथा विभिन्न प्रकृति के लोगों के कार्य परिस्थिति विशेष में एक ही जैसे होते हैं । इस भिन्नता के पीछे भी अन्तः क्रियाओं की उद्दाम प्रेरक शक्ति ही निहित होती है । उसी से प्रेरित होकर मनुष्य के व्यक्तित्व की अनेक रूपता प्रकाश में आती है ।

मनुष्य के अन्तर्जगत को निरन्तर प्रेरित करने वाली मुख्य अन्तः प्रेरणा पर विश्लेषण को अपनी दृष्टि स्थिर रखनी चाहिये और उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि अन्तर्जगत के विश्लेषण में कहीं अनौचित्य और अन्तर्विरोध न आने पाए । यदि कोई मनुष्य अपनी मूलप्रकृति के विरूद्ध आचरण करता है तो उसकी सकारण व्याख्या करते हुए उसकी प्रेरक - शक्ति का उल्लेख अवश्य करना चाहिये । वातावरण तथा परिस्थितियों की परि-वर्तनशीलता को सतर्कता से देखते हुए मनुष्य के अन्तर्जगत की रहस्यपूर्ण ग्रन्थियों को अन्तः क्रियाओं की सकारण व्याख्या द्वारा स्वाभाविक रूप से सुलझाया जा सकता है ।

मनुष्य अनिश्चय के कारण द्वन्द्व में पड़ा रहता है । किसी निश्चित मार्ग या कार्य - पद्धति को अपनाकर अपने उद्देश्य को पूरा करने में उसे उलझन होती है तथा वह निरन्तर उद्विग्न रहता है । मनुष्य के अपने अन्तर्जगत को इस स्थिति के कारण विरोधी वृत्तियों का आभास होने लगता है । अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण करने से उसकी समस्त विरोधी वृत्तियों का स्वयमेव प्रकटीकरण हो जाता है । अन्तर्द्वन्द्व के कारण मनुष्य जब अपने सही कर्तव्य - पथ का बोझ प्राप्त करने से असमर्थ हो जाता है तब उसके अन्तर्जगत में संघर्ष और विरोध की मात्रा बढ़ जाती है । अनिश्चय की मनोदशा व्यक्ति को पीड़ित प्रताड़ित करती रहती है । अपने कार्य और क्षमता पर उसे आस्था नहीं रहती । उसके आत्मबल और इच्छा शक्ति ब्रह्म का अभाव दृष्टिगत होता है । मनुष्य की इस मनःस्थिति के विश्लेषण द्वारा उसकी क्रिया - प्रतिक्रिया की सकारण व्याख्या की जा सकती है ।

कभी - कभी देखा जाता है कि अपनी मूल को स्वीकार न करने वाले मनोव्यथा में कनयम पात्र आत्मपीड़न का मार्ग अपना लेते हैं । कभी - कभी आत्माभिमान भी अन्तर्द्वन्द्व का स्त्रता बन जाता है । निरन्तर आत्मपीड़न और आत्मवेचना की स्थिति मनुष्य के अन्तर्जगत को समस्या प्रधान बना देती

मनुष्य के अन्तर्जगत को निरन्तर प्रेरित करने वाली मुख्य अन्तः प्रेरणा पर विश्लेषण को अपनी दृष्टि स्थिर रखनी चाहिये और उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि अन्तर्जगत के विश्लेषण में कहीं अनौचित्य और अन्तर्विरोध न आने पाए । यदि कोई मनुष्य अपनी मूलप्रकृति के विरूद्ध आचरण करता है तो उसकी सकारण व्याख्या करते हुए उसकी प्रेरक - शक्ति का उल्लेख अवश्य करना चाहिये । वातावरण तथा परिस्थितियों की परि-वर्तनशीलता को सतर्कता से देखते हुए मनुष्य के अन्तर्जगत की रहस्यपूर्ण ग्रन्थियों को अन्तः क्रियाओं की सकारण व्याख्या द्वारा स्वाभाविक रूप से सुलझाया जा सकता है ।

मनुष्य अनिश्चय के कारण द्वन्द्व में पड़ा रहता है । किसी निश्चित मार्ग या कार्य - पद्धति को अपनाकर अपने उद्देश्य को पूरा करने में उसे उलझन होती है तथा वह निरन्तर उद्विग्न रहता है । मनुष्य के अपने अन्तर्जगत को इस स्थिति के कारण विरोधी वृत्तियों का आभास होने लगता है । अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण करने से उसकी समस्त विरोधी वृत्तियों का स्वयमेव प्रकटीकरण हो जाता है । अन्तर्द्वन्द्व के कारण मनुष्य जब अपने सही कर्तव्य - पथ का बोझ प्राप्त करने से असमर्थ हो जाता है तब उसके अन्तर्जगत में संघर्ष और विरोध की मात्रा बढ़ जाती है । अनिश्चय की मनोदशा व्यक्ति को पीड़ित प्रताड़ित करती रहती है । अपने कार्य और क्षमता पर उसे आस्था नहीं रहती । उसके आत्मबल और इच्छा शक्ति ब्रह्म का अभाव दृष्टिगत होता है । मनुष्य की इस मनःस्थिति के विश्लेषण द्वारा उसकी क्रिया - प्रतिक्रिया की सकारण व्याख्या की जा सकती है ।

कभी - कभी देखा जाता है कि अपनी मूल को स्वीकार न करने वाले मनोव्यथा में कनयम पात्र आत्मपीड़न का मार्ग अपना लेते हैं । कभी - कभी आत्माभिमान भी अन्तर्द्वन्द्व का स्त्रता बन जाता है । निरन्तर आत्मपीड़न और आत्मवेचना की स्थिति मनुष्य के अन्तर्जगत को समस्या प्रधान बना देती

है । अन्तर्द्वन्द्व की यह व्यथा ऐसे मनुष्यों के मन में उत्पन्न होती है जो समुचित विचार - सारणी को अपनाकर वस्तुस्थिति को ठीक - ठीक समझ नहीं पाते । एक साधन अथवा कार्य - पद्धति पर उनका विश्वास दृढ़ नहीं हो पाता । निराशा, असफलता, वचना, भावुकता आदि के कारण अन्तर्द्वन्द्व अधिक गहर रूप धारण करने लगता है । मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर अन्तर्द्वन्द्व की प्रतिच्छाया व्यक्त होने लगती है । जिन व्यक्तियों में आत्म-शक्ति और इच्छाशक्ति की प्रबलता होती है, वे अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित नहीं होते ।

जैनेन्द्र जी के प्रायः सभी उपन्यास मनोविश्लेषिकी हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में जैनेन्द्र जी ने बाहरी क्रिया - कलापों को परित्याग कर व्यक्ति की अन्तःक्रियाओं तथा मानसिक क्रियाओं को स्पष्ट वाणी दी है । अतः जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में मानव मन की अतल गहराइयों, अन्तर्जगत की जटिलताओं, घात प्रतिघातों तथा जीवन की अनेक रहस्या का वर्णन है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का ध्येय क्रियाशील मानव से अधिक विचारशील हो जाता है । पात्रों के शरीर से अधिक उनके मानस की अधिक प्रतिष्ठा होने लगती है । उनके रूप से अधिक आन्तरिक रूप की छान - बीन होने लगती है ।[1]

उनके औपन्यासिक - पात्र सामाजिक जीवन से असम्पृक्त हो आंतरिक संघर्ष ये सुक्त हैं । "त्यागपत्र" में जैनेन्द्र जी ने मृणाल एवम् प्रमोद के चरित्र की मानसिक कुण्ठाओं, निराशाओं, तथा आन्तरिक घात - प्रतिघातों की अभिव्यक्ति दी है ।

"बुआ बोली - मरना क्या होता है, क्यों रे । तू जानता है ?"

"जानता हूँ ।"

1- डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : पृष्ठ - 116

"भला क्या होता है ।"

"मरकर आदमी - मर जाता है ।"

"बुआ हंस पड़ी । फिर चुप हो रही, फिर बोली :"

"मैं मर जाऊँ तो तू क्या करेगा ?"[1]

उपर्युक्त मक्थन में मृणाल की मन की दशा खुलकर प्रस्तुत हुई है । वह न तो अपने प्रेम को स्पष्ट ढंग से व्यक्त कर पाती है ओर न तो उसे भुला ही पाती है । परिणाम स्वरूप अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है । मृणाल पति द्वारा परिव्यक्त किये जाने पर सामाजिक मान्यताओं को तोड़ते हुए एक सौन्दर्य के लोभी वणिक के साथ गृहस्थी बसा लेती है । पर पुरूष को समर्पित होकर भी मृणाल पति के प्रति एक निष्ठ बनी रहती है । तथा मानसिक यातनाओं के कुण्ड में तिल - तिल करके जलती रहती है । कथानायक प्रमोद भी आन्तरिक द्वन्द्व से ग्रसित है । एक अहेतुक वास मुझे दाबे हुए था । वह न रोने देता था, न कुछ करने देता था, नतीजा यह हुआ कि मैं बुआ की बिदा के समय देखते - देखते एकाएक झल्ला आया कि भागकर बुआ वाली कोठरी में अपने को बन्द करके खड़ा हो गया मानो आशा थी कि कोई करिश्मा होगा, भूचाल आएगा, कुछ न कुछ होगा और आखिर में सब ठीक हो जायेगा । वहां खड़े - खड़े चाहता था कि सांस रोक लूँ, बेजान हो जाऊँ । एकदम रही ही नहीं ।[2]

यही आन्तरिक संत्रास प्रमोद को अन्त तक दबाये रहता है । उसकी बाहरी चेतना यंत्र - चालित सी परिलक्षित होती है । वह अनेक बार स्वयं को मृणाल की मदद के लिये तैयार करता है । परन्तु मृणाल का अहं उसे ऐसा करने से मना कर देता है एवम् अन्दर ही अन्दर घुटता रहता है । प्रमोद द्वारा जजी से त्यागपत्र उसी आत्मसंघर्ष का फल है ।

1- जैनेन्द्र : त्यागपत्र : पृष्ठ - 18

2- जैनेन्द्र : त्यागपत्र : पृष्ठ - 18

जैनेन्द्र जी के पात्रों का चित्रण मानसिक धरातल पर ही हुआ है । पात्रों की आन्तरिकता के आधार पर उनके आत्म - चिन्तन तथा विश्लेषण के माध्यम से उसके व्यक्तित्व की कुण्ठाओं और विकृतियों का प्रकटीकरण होता है । सुखदा कहती है - मैं नहीं समझती, उस क्षण ने क्या चाहती थी । शायद मैं जीतना चाहती थी । क्या कहीं हार का भार भीतर था कि जीत की चाह ऊपर इतनी आवश्यक हो गयी थी ? वह सब कुछ मुझे नहीं मालूम ?[1] उसकी मनोग्रन्थियों, कुण्ठाओं तथा अन्तर्जगत के संघर्ष को मुखर करता है । मुक्तिबोध नामक उपन्यास में सहाय अपने पुत्र वीरेश्वर की समस्या से हमेशा थके रहते हैं "कहते हो बात कुछ नहीं है । समझते होगें कि रात अंधेरे जो छत पर जाकर तुम चार रोज से देर - देर तक घूमते रहा करते हो, सो उसका मुझे कुछ पता नहीं रहता .... अब लड़के के बारे में सोंच करने से क्या होगा । जब हम उसके बारे में कुछ नहीं कर सकते । तुम उसको लेकर कब तक परेशान हुए जाओगे ।[2] इस तरह सहाय की रात में जागकर घूमना एवम् कुछ न कुछ लिखना उसके अन्तर्जगत के क्रिया - प्रतिक्रिया का प्रतीक है ।

इसी तरह "अनन्तर" नामक उपन्यास में कथा नायक प्रसाद अपने बड़े बेटे के मधुपर्व के उपलक्ष से कश्मीर यात्रा के लिये रवाना करके लौटते समय अपने पारिवारिक लोगों से अनेक आत्म - चिन्तन में लीन हो जाते हैं । उनकी उस क्षण की मन की दशा उनके आन्तरिक द्वन्द्व की परिचायक है । ट्रेन चली गई ओर प्लेटफार्म से लौटते हुए मेरे मन में घुमड़ता हुआ प्रश्न उठा अब मानो कहीं कुछ भीतर से समाप्त हो गया तो और प्रश्न मुझ अकेले के लिये आवश्यक हो आया ।[3]

1- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ - 82

2- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ - 5

3- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ - 5

जैनेन्द्र जी के उपन्यास व्यक्तिवादी चिन्तन की परिणति है । उन्होने वैयक्तिक चेतना के स्तर पर आन्तरिक विरोधों, एवम् मनुष्य की कुण्ठाओं को व्यक्त किया है । "अनामस्वामी" में कुमार अपने "स्व" को प्रतिष्ठित रखने के लिए रानी वसुन्धरा तथा शंकर उपाध्याय के परस्पर सम्बन्धों की कल्पना करते हैं । उपाध्याय की अस्वीकृति पर आन्तरिक द्वन्द्व से पीड़ित होकर मूर्च्छित हो जाते हैं ।

जैनेन्द्र जी ने व्यक्ति को मूलतः व्यक्ति स्वीकार कर उसकी मान्यताओं को प्रकट किया है । उन्होने अपने औपन्यासिक पात्रों के अन्तर्जगत के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का प्रयत्न किया है । शची रानी गुर्ट के शब्दों में - "उन्होने पात्रों के परिवेश और सामाजिक सम्बन्धों की कहानी न कहकर कुण्ठाग्रस्त और किसी एक वृत्ति या मूड के वशीभूत आत्मकेन्द्रित लोगों के खण्ड - चित्र उभारे हैं ।[1] जैनेन्द्र जी अपने औपन्यासिक पात्रों की संवेदनाओं विकृतियों एवम् अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण में पर्याप्त सफलता हासिल हुई है ।

एक ही समय में दो या अधिक विरोधी इच्छाएं एक साथ उत्पन्न होने तथा उनकी अभिपूर्ति संभव न होने की वजह से जो मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, वही तनावपूर्ण स्थिति द्वन्द्व की होती है । पर यह द्वन्द्व की स्थिति तभी द्वन्द्व के रूप में उपस्थित होती है जब किसी आवश्यकता, आकांक्षा की पूर्ति या सन्तुष्टि नहीं हो पाती है । यह द्वन्द्व दो स्तरों पर सम्भव होता है - वाह्य और आन्तरिक । व्यक्ति में समाहित ग्रन्थियों तथा बाहरी वातावरण का दबाव मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व का कारण बन जाता है ।

अन्तर्द्वन्द्व मानसिक तनाव की वह दशा है जो दो परस्पर विरोधी इच्छाओं के पैदा होने से, जिसकी पूर्ति एक ही साथ संभव नहीं है । डा0 पदम अग्रवाल के शब्दों में - "अन्तर्द्वन्द्व परिवार, यौन और संस्कृति से संबंधित

1. गुर्ट : डॉ० शचीरानी : वैचारिकी : जैनेन्द्र की वैचारिकी मनोवैज्ञानिक अतिवाद : पृष्ठ - 210

होता है । पारिवारिक अन्तर्द्वन्द्वों का कारण बाल्यावस्था में असुरक्षा पतर योग कठोर व्यवहार, दूसरे भाई बहनों का जन्म तथा अत्यधिक निर्भरता होते हैं । यौन सम्बन्धी द्वन्द्वों के कारण अविवाहित रहना, वैधव्य परित्याग, समाज द्वारा अस्वीकृत यौन सम्बन्ध इत्यादि और सांस्कृतिक अन्तर्द्वन्द्वों का कारण धार्मिक हठवादिता, अन्धविश्वास, जातीयता अत्यधिक प्रतिस्पर्द्धा इत्यादि होते हैं । फ्रायड ने काम सम्बन्धी द्वन्द्व के विध्वंसात्मक प्रभाव पर विशेषतः ध्यान आकर्षित किया है ।[1]

जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यास साहित्य में असाधारण परिस्थिति में पड़े असाधारण मनुष्य की मानसिक क्रियाओं - प्रतिक्रियाओं तथा अन्तर्द्वन्द्वों को प्रकट किये हैं । मनुष्य मन में जगने वाले द्वन्द्व का बौद्धिक विश्लेषण जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की निजता है । इस द्वन्द्वात्मक को परिभाषित करते हुए जैनेन्द्र जी ने कहा है - "जिसका परिणाम, तनाव हो, दो तत्व परस्पर इस तरह अनुबद्ध हो कि उनमें विवाह और आकर्षण हो, तो द्वन्द्व की अवस्था मानिए । द्वन्द्व से कोई प्राणी मुक्त नहीं है । हर एक का भीतर विभक्त है, उसमें दो पन हैं, इच्छा उसके आगे जाती है । इसलिये किसी को भी फिर चाहे वह कृतिकार हो, अपने में द्वन्द्व लाने या बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है । द्वन्द्व जो विद्यमान हैं उसकी पीड़ा अपनाने की ही आवश्यकता है ।[2]

जैनेन्द्र जी के उपन्यास के पात्र विशेषकर नारी पात्र इस द्वन्द्वात्मकता से भरपूर हैं । "सुनीता" उपन्यास की सुनीता, "कल्याणी" उपन्यास की कल्याणी, सुखदा उपन्यास की सुखदा, विवर्त उपन्यास की भुवनमोहिनी व्यतीत उपन्यास की अनिता, जयवर्धन उपन्यास की इला एवम् अनामस्वामी उपन्यास की अनिता, जयवर्धन उपन्यास की इला एवम् अनामस्वामी उपन्यास की रानी वसुन्धरा इत्यादि द्वन्द्वात्मकता की साक्षात् प्रतिमा है ।

सर्वप्रथम जैनेन्द्र जी ने "सुनीता" में घर और "बाहर" के द्वन्द्व को उभारा है । सुनीता का पति श्रीकान्त अपने मित्र हरिप्रसन्न नारी अवहेलना

1. डॉ० पद्मा अग्रवाल · मानविकी पारिभाषिक कोश, पृष्ठ· 74
2. जैनेन्द्र : समय और हम, पृष्ठ 627·28

की ग्रन्थि खोलकर उसे सद्‌गृहस्थ बनाना चाहता है । इसके लिये वह अपनी पत्नी सुनीता को माध्यम बनाना चाहता है । सुनीता के लिये पति की आभा है कि वह उसके मित्र हरिप्रसन्न को राग - पाश में बांधकर उसके अन्दर छिपी हुई हानि ग्रन्थि को खोलने में मदद करें परन्तु सुनीता का परम्परागत संस्कार तथा पति के प्रेम के जाल में बंधा हुआ मन घर में आये बाहर के प्रति ।[1] घुटन का अनुभव करता है । इसी दुविधा से पीड़ित ज्यादा परेशानी अनुभव करती है । वह घर और बाहर के द्वन्द्व में उलझी हुई एक रात निर्जन वन में हरिप्रसन्न में छलकती काम - वासना को परिलक्षित कर वह निर्वस्त्र होकर उसके सामने आत्म - समर्पण कर देती है । सुनीता का द्वन्द्वात्मक साहस देखकर हरिप्रसन्न उसे उसके घर पहुँचाकर पलायन कर जाता है ।

कल्याणी उपन्यास की कल्याणी भी अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त है । उसका द्वन्द्व उसके पत्नीत्व तथा कैरिअरिज्म के मध्यम हैं । उसका पति डा0 असरानी उससे आदर्श पत्नी बनने एवम् डाक्टरी की कमाई द्वारा आर्थिक सहयोग की मदद करने की आशा रखता है, किन्तु रोगियों के साथ उसके सरल व्यवहार एवम् स्वच्छन्दतापूर्वक लोगों से मिलने जुलने को सहन नहीं कर पाता तथा पत्नी के प्रति शंकित बना रहता है एवम् उसके साथ बड़ा अनुशासन करता है । इस तरह पत्नीत्व तथा कैरिअरिज्म के द्वन्द्व में उलझी वह पति से कहती है - "दोनों में से एक कोई मुझे धुनकर दे दो । पातिव्रत्य या डाक्टरी । मैं पति में से कोई एक मुझे परायण हो जाऊँ या डाक्टरी की कमाई करके दूँ । दोनों साथ होना कठिन है । पैर दो नावों पर रहेंगे तो हालत डगमग रहेगी ।[2] पत्नीत्व और कैरिअरिज्म की इसी द्वन्द्वात्मक चेतना से ग्रस्त कल्याणी विविध यातनाओं को सहन करती हुई एक दिन मृत्यु को प्राप्त हो जाती है ।

1- डा0 मनमोहन सहगल - उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन पृष्ठ - 57

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 40

"सुखदा उपन्यास की नायिका सुखदा पत्नीत्व तथा प्रेयसीत्व की द्वन्द्वात्मक मानसिकता से आक्रान्त है । सम्पन्न परिवार को लड़की सुखदा का विवाह कम वेतन पाने वाले कान्त से हो जाता है । जिसके कारण उसके मन में रूगणता पैदा हो जाती है तथा उसकी जीवन सन्तापमय नहीं हो पाता है । गिरस्ती चलती थी, बच्चे को प्रेम से पालती थी, पर मन को सन्तोष न था । उस सन्तोष को लेकर कभी - कभी झींक लेती थी ।"[1] अतः जब उनके पति के घर में उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है, तो मानसिक सन्तुष्टि के लिए अन्य मार्ग का अन्वेषण करने लगती है । सुखदा पति की आर्थिक स्थिति निस्साहंसी अन्तमुर्खता तथा अपनी अनुचित स्वतन्त्रता के प्रति कान्त के यौन इत्यादि से खिन्न रहती है । पतिग्रह - अभाव सुखदा को लाल के प्रति आकृष्ट करते हैं तथा वह समय - समय पर पति तिरस्कृत करने लगती है । प्रेमी के आकर्षण से आकर्षित वह पति से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहती है, परन्तु उसके परम्परागत संस्कार उसे ऐसा करने में बाध्य होते हैं । फलस्वरूप सुखदा पत्नीत्व तथा प्रेयसीत्व के द्वन्द्व में उलझी रहती है । "सुनीता" में "बाहर" तथा प्रवेश "घर" में होता है, जबकि "सुखदा" में "घर" की प्रवेश "घर" में चारदीवारी से निकलकर स्वयं सुखदा "बाहर" आती है और अपने व्यवहार से मानसिक द्वन्द्व का कारण स्थापित करती है ।[2]

"जयवर्धन" उपन्यास की इला के चरित्र में प्रेम तथा विवाह का द्वन्द्व दर्शनीय है । वह जय की विवाहिता कहीं पर समर्पित होकर उसके साथ है । वह जय से प्रेम करते हुए उसकी परिणति विवाह में चाहती है । वह अपने सम्बन्धों के यथार्थ को लक्ष्य कर कहती है - "ऐसी ही हालत में तो हूँ कि अधिकार पूर्वक अपने पर कब्जा मान लूँ या मान लूँ । मुझे मेरी

1- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ - 12

2- डा0 मनमोहन सहगल : उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन पृष्ठ - 68

स्वतन्त्रता नहीं चाहिये पर कहा है वह कि जिसके ताले में उस स्वतन्त्रता को बन्द कर दूँ .... वह सह सकते हैं, मैं अपनी स्वतन्त्रता सचमुच सह नहीं सकता ।[1] इससे जाहिर है कि इला को अपनी स्वतन्त्रता पसन्द नहीं, वह इस स्वतन्त्रता पर बन्धन चाहती है । लेकिन इच्छा सिर्फ इच्छा ही बनी रह जाती है । इस तरह अतृप्ति तथा अधूरेपन में जीवित इला के अपने द्वन्द्व हैं ।

"अनामस्वामी" की रानी वसुन्धरा में भी अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन होते हैं । वह नपुंसक कुमार को पत्नी एवम् शंकर उपाध्याय के पहले प्रेयसी है । कुमार उसके नारीत्व निरर्थक देखना पसन्द नहीं करते हैं । इसीलिये उसे शंकर उपाध्याय से नियोग द्वारा पुत्र प्राप्ति की आज्ञा देते हैं, परन्तु शंकर उपाध्याय अपने अहं एवम् प्रेम भंग की वजह से उसे स्वीकार नहीं करता है । इस तरह वह पति की नपुंसकता एवम् पर्ववा दत्त उपाध्याय के साहचर्य में नारीत्व की अकृतार्थता के फलस्वरूप द्वन्द्व में उलझी रहती है ।

इस तरह मानसिक उतार चढ़ाव तथा अन्तर्द्वन्द्व की रंगीनी प्रायः जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में आदि से अन्त तक फैली हुयी है । यही मानसिक द्वन्द्व उसके पात्रों की प्राग्धारा है । सुनीता, कल्याणी, सुखदा इत्यादि सभी पात्र मानसिक द्वन्द्व से गुजरते हैं एवम् उसी में उनके चरित्र सम्बन्धी कई तत्व सामने आते हैं । जैनेन्द्र जी ने मन:ग्रन्थियों का चित्रण विशेषोत्साह से प्रकट किया है । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों का ध्येय अन्तर्मन की गुत्थियों को सुलझाना तथा मनः संघर्ष को किसी निष्कर्ष की ओर ले जाना है ।

1- जैनेन्द्र : जयवर्धन , पृ०ठ - 75

कथाकार जैनेन्द्र के साहित्य में राजनीतिक एवं आर्थिक चिन्तन

राजनीतिक चिन्तन :-

राजनीति ने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है । राजनीति यहां भी अन्य राष्ट्रों की तरह किसी महान शिखर को न प्राप्त कर गर्त की ओर जा रही है । गांधी जी की राजनीति तो उनके साथ दफन हो चुकी है । भ्रष्टाचार, उत्क्रोच, श्रम के प्रति अनास्था, नैतिक तथा चारित्रिक पतन इत्यादि मूल्य मानवता का खोल ओढ़कर सम्मोहक व मायावी रूप में प्रतिष्ठित हो चके हैं । राज्य करने की नीति अनीति क्या होती, उसके लिए किसके पास समय है ? चुनावों में दल - बदल का जादू और दलों का चुनाव हेतु जोड़ तोड़ राष्ट्र स्तर पर नंगा नांच करने लगा । हत्या की राजनीति चल पड़ी । बुद्धिजीवियों को राजनीति की चाबुक से हांका जाने लगा है । कला, साहित्य संगीत इत्यादि सभी राजनीति के चलाये चलते हैं, सांस्कृतिक उत्थान राजनीति के चक्कर में धराशायी होने लगा है ।

राजनीति अपनी वास्तविकता से हटकर निहित स्वार्थो को सिद्धि का षडयन्त्र मात्र रह गई है । फलस्वरूप चारो तरफ दंगे, आन्दोलन, घेराव, बन्द भाषा - जाति व प्रान्त भेद इत्यादि पैदा हो चुके हैं । जैनेन्द्र जी गांधी - युग के हैं । उनकी उनमें गहरी आस्था है । उन्होने सामान्य वस्त्रों में उस महात्मा को देखा था जो कुटिया में रहकर बिना सैन्य - बल के इस देश के जन - मानस में छाया रहता था । उनके लिए राजनीति, धर्म, सहित्य वर्ग इत्यादि अलग -अलग महत्व नहीं रखते थे । वह अपनी नीति पर, अपने विश्वास पर, तथा अपनी जगह पर अडिग बना रहा ।

जैनेन्द्र जी ने महसूस किया कि शक्ति की धारणा साधनामूलक होकर सिर्फ गणनात्मक रह गई है । संकट सिर पर खड़ा है उस संकट का विश्लेषण करते हुए उन्होने स्पष्ट शब्दों में कहा, "आदमी का मूल्य घटते -

घटते शून्य हो गया है । शून्य से भी कम ग्रहण रूप से हो गया है । जबकि यंत्र का मूल्य बढ़ता जा रहा है । यंत्र पाकर आदमी अपने को धनवान गिनता है । और धन की ओर बढ़ने के लिये यंत्र को इकट्ठा करता है, जबकि उसी के लिये आदमी भारी पड़ जाता है । नौकर और मजदूर के रूप में वह उन्हें कितनी संख्या में भरती कर लेगा, क्योंकि तब वह आदमी से अंक बन जाता है ।[1] अभी तो असली श्रेय और सेवा का सिक्का नहीं चल रहा, प्रतिष्ठा व प्रभाव के बल पर कार्य चलाया जा रहा है ।[2] पर आज अंधे हैं तो वही कि उस सत्ता की रक्षा के लिये आदमी के अस्तित्व को माना जाए । आदमी यहां इसलिये है कि वह मरे और सत्ता जिये ।[3] यह सब इस कोशिश में है कि केन्द्र के पास से पास लोग सिंचें और सटे रहे । फैलकर रहने से जो केन्द्र से दूर जा पड़ता है, वह घाटे में रहता है ।[4] विचार और व्यक्ति तात्कालिक शक्ति की अपेक्षा से ही वहां विचारणीय बनते हैं । वह दलबद्ध प्रवृत्ति है । दलों में वह अपना हिसाब बिठाएगी और उनके बीच जय - पराजय की उक्तियां चलेंगी ।[5]

जैनेन्द्र जी राजनीति को मानव धर्म नीति स्वीकार करते हैं । वे जोर देते हैं कि राजनीतिक जीवन को मानवीय हो । वह राजनीति नहीं है, जो कि मनुष्य को मतान्ध बना दे । राजनीति मानव के लिये है मानव राजनीति के लिये नहीं है । वे आज की स्थिति से चिन्तित हैं बारम्बार प्रयास करते हैं कि भारत महात्मा गांधी की नीति पर लौट आये । नीति की सार्थकता को समझे । लेकिन गांधी के विनोवा हैं कि पांव - पांव चलेंगे और गांधी के ही नेहरू हैं कि समझ न पायेंगे कि प्लेन से उड़कर वक्त को फिजूल जाया

1- जैनेन्द्र : केन्द्र और क्रान्ति परिप्रेक्ष्य : पृष्ठ - 28

2- जैनेन्द्र : युग समस्यायें, साहित्यिक परिप्रेक्ष्य : पृष्ठ - 71

3- जैनेन्द्र : जड़ की बात, सोंच विचार : पृष्ठ - 90

4- जैनेन्द्र : स्वत्व, सम्पत्ति और सत्ता, परिप्रेक्ष्य : पृष्ठ - 177

5- जैनेन्द्र : पूर्वोदय : पृष्ठ - 179

जाने से क्यों न बचाया जाये । एक राज्य से मुंह मोड़ेगा, दूसरा राज्य को बन्धे पर लिये चलेगा । बहुत पास है, लेकिन फिर भी यह दोनों प्राणी परस्पर बहुत दूर हैं ।[1] वे लगातार प्रयत्नशील हैं कि नीति जीवन की हो, शोषण की नहीं । उनके निष्कर्षात्मक आग्रह विचारणीय है :-

"राजनीति निरंकुश नहीं हो पाएगी । उसको नागरिक जीवन की मान - मर्यादाओं को शिरोधार्य करना होगा । जनतंत्र का वर्तमान और भविष्य अहिंसा के साथ है ।[2]

"सारे जन-समूह को शक्ति सम्पन्न बनाना ही जनतंत्र है । वह दर्शन जब सबको सुलभ होगा, तभी सच्चा जनतंत्र होगा ।[3]

"जनता में तो समस्त भूखण्ड अविभूत और अन्ततः प्रान्त विभाजन में नहीं, बल्कि प्रान्तहीनता में जनता की सच्ची सेवा और प्रतिष्ठा है ।"[4]

"......... लोक राज है, वह तंत्रग्रस्त नहीं, बल्कि तंत्रयुक्त भी है । वह प्रशासन का नहीं, बल्कि अनुशासन का राज्य है । उसका मतलब व्यवस्था हीन राज्य नहीं, बल्कि व्यवस्था अन्तर्व्यवस्था है, लदी हुई व्यवस्था नहीं है ।"[5]

"स्पष्ट ही जनतंत्र का भविष्य अहिंसा के साथ है । लोक मानस में लौकिक मूल्य के रूप में जहां तक अहिंसा की प्रतिष्ठा है उसी हद तक जनतंत्र सफल हो सकता है । यदि साधन शुद्धि का कुछ भी ध्यान नहीं है और सफलता ही एक साध्य है तो जनतंत्र इस पद्धति से स्वयं अपना अन्त बुला लेने वाला है ।"[6]

1- जैनेन्द्र : राजनीतिक, दार्शनिक, साहित्यिक इतस्ततः : पृष्ठ - 272

2- जैनेन्द्र : समस्याओं की एक समस्या हिंसा वृति : पृष्ठ - 95

3- जैनेन्द्र : युग समस्याएं व साहित्यिक परिप्रेक्ष्य : पृष्ठ - 471

4- जैनेन्द्र : प्रान्त निर्माण परिप्रेक्ष्य : पृष्ठ - 127

5- जैनेन्द्र : राज्य सत्ता और नीति सत्ता, परिप्रेक्ष्य : पृष्ठ - 124

6- जैनेन्द्र : भारतीय जनतंत्र, पूर्वोदय : पृष्ठ - 249-250

जैनेन्द्र : जी गांधी की तरह सत्य प्रेम - अहिंसा नीति को राजनीति में देखना चाहते हैं । साधन की पवित्रता पर बल देते हैं । शक्ति के विकेन्द्रीकरण को महत्व देते हैं । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधाराओं का विशेष प्रभाव पड़ा हुआ है ।

"राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिये मनुष्य को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह बखूबी करना होगा । शासन का विधान नैतिकतावादी होना चाहिये । राजनैतिक अधिकार का माप नागरिक का दायित्व भाव है । औसत नागरिक की नैतिक भूमिका के अनुकूल ही शासन - विधान की ऊँचाई होगी । नागरिक प्रभुत्त रहा तो जनतन्त्र काम न देगा । नागरिक को जिम्मेदार बनाया जायेगा तो विधान का अति केन्द्रीकरण विसरता जायेगा । इससे शासन - विधान को लेकर राजनीतिक विवाद की धूम रखना समय मापन का ही एक उपाय है ।[1]

जयवर्धन नामक उपन्यास में भी जैनेन्द्र जी का विचार है कि राजनीतिक मानवीय गुणों से सम्पन्न होनी चाहिये । उसमें कूटनीति का सहारा नहीं लेना चाहिये । "कूटनीति का भरोसा छोड़े । समझे कि यह दुनियां महाब्रह्माण्ड में कण से भी तुच्छ है । इस निरहंकारता को अपने सारे मन के भीतर रमाकर वे राजनीति को चलाना सीखें, तब वह मानव नीति होगी । उसी में से मानव हित का अभ्युदय सिद्ध होगा । अन्यथा दर्प किसी का टिका नहीं है, और उनको बताओ कि जयवर्धन राजकीय हो न भी हो, वह सदा मानवीय है ।[2]

(क) राष्ट्रीय पुनर्जागरण का प्रभाव :-

जब कोई देश एक शक्ति के हाथ से छुटकर दूसरी शक्ति के अधिक चतुर और राजनीति - कुशल हाथों में पहुँचता है तो उससे देश की राजनीति

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 60

2- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ - 16

मात्र में पहुँचता है तो उससे देश की राजनीति मात्र में ही परिवर्तन नहीं होता है, वरन् एक बार तो सारा समाज ही प्रभावित हो जाता है । सारे जन - जीवन, समाज, राजनीति, संस्कृति और साहित्य के मापक मानमूल्य बदलने लगते हैं । ऐसे अनेक परिवर्तन भारतीय राजनीति में आए हैं । ऐसे और प्रत्येक परिवर्तन एक नये मोड़, नई दिशा का मार्गदर्शक सिद्ध हुआ है । मुसलमानों से प्रभावित भारतवर्ष का जो नया रूप बना था, उस पर सभी दृष्टियों से प्रत्येक क्षेत्र में अंग्रेजी प्रभाव पड़ा । अंग्रेजों से पूर्व फ्रांसीसी, पुर्तगाली और हूणों ने यहां अपने पैर जमाने की चेष्टा की थी, किन्तु अंग्रेजी फैलते गये । जहांगीर के समय में बम्बई कलकत्ता और मद्रास में विदेशी केवल व्यापार हेतु आये थे, किन्तु भारतीय राजनीति में कमजोरी से अधिक चातुर्य और अवसर वादिता के कारण यहां के शासक बन गए । देशी राजा आपस में द्वेष रखते हों, किन्तु अंग्रेजों को पराधीनता उन्हें खलने लगी थी । ईसाई धर्म प्रचार ने इसमें आहुति का काम किया । साधारण जनता को अंग्रेजों का शासन रहन - सहन और सुधारवादी नीति केवल भ्रष्टाचार और धर्म - भ्रष्ट करने का एक कौशलपूर्ण ढंग मात्र प्रतीत हुई । धीरे - धीरे इस भाव को विकसित करने का कार्य किया जाने लगा और एक समय आया जब 1857 की सशस्त्र क्रांति के रूप में इन असन्तोष को व्यक्त किया गया । यह क्रान्ति केवल राजाओं और नवाबों की क्रान्ति न थी वरन् उसमें कुछ अवसरवादियों को छोड़कर सारे समाज का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संयोग था, जिसने एक बार तो अंग्रेजों की दो कौड़ी भुला दी, किन्तु दमन नीति के कारण अन्त में वे इसमें विजयी हुए और भारत ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर इंग्लैण्ड की सामाज्ञी विक्टोरिया के अधिक शक्तिशाली पंजे में चला गया । इस परिवर्तन ने सारे भारतीय जीवन और विचार - क्षेत्र को प्रभावित करना प्रारम्भ किया । इसका फल यह हुआ कि हम पश्चिम के रंग में रंगने लगे तथा देश का धन विदेशी कोषों को भरने लगा ।

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "कल्याणी" नामक उपन्यास में पुनर्जागरण का प्रभाव परिलक्षित होता है । पाल एक क्रान्तिकारी है जो देश का प्रभाव परिलक्षित होता, हित के लिये अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे हैं । उनके नाम वारंट कटा है, जो इस समय फरार है । इसका एक उद्धरण द्रष्टव्य है :-

"पाल ने हंसकर धीमे से कहा - आप जानते होंगे ही कि मैं इस वक्त फरार हूँ ।

मैने अविश्वास के स्वर में कहा - क्या फरार ? क्या मतलब ? उसने कहा - मेरे नाम वारंट है । मैं एब्सकोंड कर रहा हूँ । आप नहीं जानते ? तो पाल महाशय इस काम में है और भगुआ है ।[1]

क्रान्तिकारी अपने कर्तव्यों का निर्वाह भलीभांति करते हैं । क्रान्तिकारी देशहित के लिये अपने जान की परवाह नहीं करते हैं । राष्ट्रीय पुनर्जागरण के लिये आन्दोलन को निरर्थक नहीं समझते हैं । इसका एक उद्धरण द्रष्टव्य है - "पाल के ऊपर किन्तु बहुत उत्तरदायित्व था । उसकी जान की बात नहीं । पर उसने कहा - बाहर आन्दोलन को देखना - भालना भी है । उसका ख्याल था कि क्रान्तिकारी आन्दोलन राष्ट्रीय जागरण में कभी ख्याल अनावश्यक नहीं है । वह राष्ट्र जागरण की पहली स्टेज हो सो नहीं । उसकी सतत् आवश्यकता है । असल में वह युत्र का अगला मोर्चा है । हम लोग फारवर्ड्स हैं ।[2]

कल्याणी नामक उपन्यास में एक राष्ट्र सेवी प्रीमियर है, जिनके राष्ट्रीय सेवाओं का गुणगान किया गया है । उन पर राष्ट्रीय पुनर्जागरण पर विरोध का प्रभाव पड़ा हुआ है । "एक उदाहरण दृष्टव्य है - "अभिनन्दन कृतज्ञता के भावों से मुझे भारी और भीगा मालूम हुआ । पर उसमें प्रीमियर

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : 120

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ -

की राष्ट्रीयता सेवाओं का ही उल्लेख था । राष्ट्र के वह कर्मठ सपूत हैं । भारत का अतीत ही नहीं, उनके कारण भारत का वर्तमान भी महान् है । देश का भावी इतिहास उन्हें याद करेगा । उप पर काव्य बनेंगे, गीत गाए जाएंगें । हम लोग संकीर्ण स्वार्थो में रह रहे हैं । अपने सब तज राष्ट्र - हित का वरण किया है । आपका आदर्श हमें स्फूर्त और प्रकाश दे । इत्यादि ।[1]

राष्ट्रीय पुनर्जागरण के लिये देशवासियों के लिये हिन्दी का ज्ञान होना अत्यावश्यक है । इसका एक उदाहरण "व्यतीत" नामक उपन्यास में देखा जा सकता है - "हां - हां - हां, बिल्कुल जरूरी है । क्यों जयन्त जरूरी है कि नहीं ? राष्ट्रभाषा है .... एक दम जरूरी है .... और जयन्त तुम सहायता कर दोगे .... सत्तो, यह तो घर के ही आदमी हैं । कुछ मुश्किल हो, इनसे पूछती रहा करो ।[2]

यद्यपि जैनेन्द्र जी के सुखदा, अनामस्वामी मुक्तिबोध, जयवर्धन उपन्यास स्वतन्त्रता के पश्चात् लिखे गये हैं । फिर इन पर राष्ट्रीय पुनर्जागरण का प्रभाव प्राप्त होता है । इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है - "देश में लहर आई है .... सुनता हूँ दासता के बन्धन टूटेंगे । दासता असल में क्या है ? आत्म - विकास पर बाधा हो जाए, वही दासता बन्धन रूप है ।"[3] स्वतंत्र बने देश दूसरे को परतन्त्र बनायेंगे । वह देश की स्वतंत्रता नहीं होगी । मुट्ठी भर की अहंतन्त्रता होगी । वैसा चाह स्वातंत्र्य के अनाधिकार का प्रमाण है । प्रकृत अधिकार कर्तव्य पालन का पल है । इससे स्वतंत्रता के शोर के पीछे व्यक्ति की आत्मतंत्रता की साधना कितनी है, यही देखने की बात है ।"[4]

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ - 163

2- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ - 32

3- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 59

3- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 59

देश में आजादी का शंखवाद बज चुका है । राष्ट्र गुलामी की जंजीरों से छुटकारा पाना चाहता है । क्रान्तिकारी लोग उत्साह पूर्वक अपना उत्तरदायित्व निभा रहे हैं । क्रान्तिकारियों के दो पल बन चुके हैं - गरम दल तथा नरम दल, गरम दल समझौता नहीं चाहता है । "समूचा राष्ट्र प्रतीक्षा में है । गरम लहू के लोग और बजबार कह रहे हैं कि दुश्मन में बातचीत कैसी ? उसके प्रति व्यवहार मात्र असह्य है उसमें समझौते की मनोवृत्ति है ।[1]

"जयवर्धन" नामक उपन्यास में राष्ट्रीय पुनर्जागरण का प्रभाव पड़ा हुआ है - "अपनी पर राष्ट्र नीति के पीछे भारत को पिछलग्गू बनाने की कोशिश आपका ऐसा षड़यन्त्र है कि मैं फिर आपको आगाह करता हूँ .... जय कुछ हो, देश के लिये अनिवार्य है । और आप हमारे देश को अन्त में उपहास जनक बना देना चाहते हैं । याद रखिए यह स्वाधीन चेतना का देश है ।[2]

उपर्युक्त उल्लेखों के माध्यम से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जैनेन्द्र जी के कथा - साहित्य पर राष्ट्रीय पुनर्जागरण का प्रभाव पड़ा हुआ है ।

(ख) गांधीवादी चेतना :-

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के गांधीवादी चेतना का काफी विकास पाया जाता है जो उसमें भी वैयक्तिकता अधिक व राजनीतिक चेतना आंशिक रूप में पाई जाती है । "कल्याणी" उपन्यास पर गांधीवादी दर्शन की प्रभावान्विती स्पष्ट परिलक्षित होती है । नायिका कल्याणी भी समर्थक दिखाई पड़ती है - "जो सूखा है, हृदय के रस से हरा - भरा नहीं है । वह गांधी का मार्ग नहीं

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ - 62

2- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ - 249

गांधी की तपस्या मुस्कराती है । निज की ओर ही वह दुहुर्ष है । शेष सब ओर वह स्निग्ध है । प्रीति की मुस्कराहट जहां नहीं, वैसी कर्म की तपस्या गांधी की नहीं ।[1]

गांधीवादी विचारों से प्रभावित होकर ही अपने पूर्व प्रेमी एवम् वर्तमान प्रीमियर का मंन्त्रित्व की सत्ता संभालना उसे रूचिकर नहीं लगता । "त्यागपत्र" की मृणाल के चरित्र में भी गांधीवादी विचारधारा विशेष रूप से सत्य, अहिंसा तथा आत्मपीड़न के दर्शन में होते हैं । तदन्तर "जयवर्धन" अनन्तर अनामस्वामी में उनकी गांधीवादी चेतना विकसित होती गयी है । इन सभी उपन्यासों में गांधी जी के निःशस्त्र क्रान्तिकारी का दर्शन का चित्रण पाया जाता है । जैनेन्द्र जी गांधीवादी के दर्शन के समर्थक होते हुये भी आग्रहशील गांधीवादी विचारधारा के समानान्तर दर्शन से प्रेरित होकर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं - "जैनेन्द्र की दार्शनिकता का निजत्व अत्यन्त प्रौढ़ एवं सुष्ठ है, जो औपन्यासिक धरातल, मनोवैज्ञानिक स्पर्श पीकर अपना उत्कर्ष प्राप्त करता है । वे मूलतः जैन हैं, गांधी के प्रभावों से भी सम्पन्न हैं । तो विश्व दर्शन के परिप्रेक्ष्य में भी उनका वैयक्तिक चिन्तन सर्वोपरि है । तभी जैनेन्द्र के इस दार्शनिक चिन्तन की परिणति उनके औपन्यासिक शिल्प के स्तर पर डा0 कुलश्रेष्ठ ने "कचवाद" नाम से आधारित की है । यथा[2] :

कथा × चरित्र + वातावरण × दर्शन
- -

जैनेन्द्र के उपन्यास : अभिव्यक्ति

उपन्यास : $\dfrac{\text{क} \times \text{च} + \text{वा} \times \text{द}}{\text{अ}}$

उपन्यास : कचवाद

- -

1. जैनेन्द्र कुमार : कल्याणी : पृष्ठ संख्या : 147

2. डा0 सत्येन्द्रनाथ कुलश्रेष्ठ : सुखदा उपन्यास की विवेचना : पृष्ठ : 187

निष्कर्ष रूप में माना जाता है कि जैनेन्द्र जी की दार्शनिक विचारधारा परम्परागत दार्शनिकता से भिन्न उनके "स्व" चिन्तन से सम्बोधित विचारधारा है, और उनका औपन्यासिक वृतित्व उनके दार्शनिक चिन्तन की प्रयोगशाला है ।

अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला है और सब सत्य की पुकार अहंकार[1] राजनीति के बारे में कल्याणी पर गांधी जी की विचार भावनाओं का असर पड़ा हुआ है । कल्याणी, "भारती तपोवन" की स्थापना गांधी जी के आदर्शो पर ही करने की इच्छा करती है तथा "भारती तपोवन" से वह भारत के अतीत को पुनर्जीवित करती है कामना करती है । कल्याण की दृष्टि में भारत का अतीत जीवन गौरवपूर्ण था - "मैं जानती हूँ गांधी की प्रेरणा । तपोमय था हमारा अतीत तपोमय है हमारी संस्कृति । वही हमारा संदेश, वैसा ही होगा । भारत का भविष्य यदि वह भारतीय होगा ।[2]

जैनेन्द्र जी के उपन्यास "सुखदा" तथा "विवर्त" में क्रांतिकारी भावनाओं को प्रकट कर कथ्य में अहिंसा मिलती है । "विवर्त" में भी हिंसावृत्ति का खण्डन करते हुए नायक जितेन के अपराधी व्यक्तित्व का, ग्रन्थि से उद्‌भूत उसके विभाव का परिष्कार अहिंसात्मक रीति से किया गया है ।[3] जितेन का पुलिस को आत्म समर्पण करना गांधीवादी हृदय परिवर्तन का ही उदाहरण है, जो आकस्मिक ढंग से होता है । वस्तुतः भुवन मोहिनी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की यह नारी लीला है । "सुखदा" के अधिकांश कथानक में हिंसा के सूक्ष्म रूप अहम्मन्यता का सुखदा के माध्यम से बारीक विवेचन करते हुए जैनेन्द्र ने हिंसा के स्थूल पक्ष की ओर भी गौण रूप से ध्यान दिया है । इसलिये उसने हरीश, लाल, प्रभात आदि क्रान्तिकारी पात्रों की उद्‌भावना की । यद्यपि इन क्रान्तिकारियों की सृष्टि उपन्यास के मूल कथानक की दृष्टि से अनिवार्य और आवश्यक नहीं था लेकिन

1- आलोचना : उपन्यास : विशेषांक अंक 13 : पृष्ठ संख्या - 115

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 100

3- रघुनाथ शरण झालानी : जैनेन्द्र और उनके उपन्यास : पृष्ठ संख्या - 90

अहिंसावादी उपन्यासकार कथा के माध्यम से हिंसा का साधन लेकर चलने वाली क्रान्ति के सम्बन्ध से अपने विचार प्रकट करने के लोभ का संचरण नही कर सका ।"[1]

जैनेन्द्र जी गांधी वादी विचारधारा से निष्ठा रखते है, वहम को समाप्त करना ही उनका लक्ष्य है और इस हेतु सिर्फ एक साधन आत्म पीड़न से ही स्वीकार करते है । "सुखदा उपन्यास की नायिका सुखदा अपनी कहानी कहते हुए आत्म ग्लानि तथा आत्मपीड़न को महसूस करती है । डॉ नगेन्द्र ने सुखदा की इसी समस्या को प्रस्तुत करते हुए कहा है - "जैनेन्द्र के कला के लिए कहा एक विशिष्ट प्रेष्य अर्थ की माध्यम है । यही प्रेष्म अर्थ से यह का उत्संग इस उत्सर्ग की विधि है आत्मपीड़न सुखदा के जीवन की भी मुल समस्या यही अहंकार है जिसमें उत्सर्ग के लिए यह अपने को पीड़ा की अग्नि में डाल देती है ।"[2] आत्मपीड़ा सिफ सुखदा में ही नही अन्य पात्र जैसे कान्त, हरिदा तथा लाल में भी प्राप्त होता है । गृहस्थ कान्त, सन्यासी क्रान्तिकारी हरिदा, समाजवादी क्रांति कारी लाल सभी के जीवन की एक ही साधना है सभी पीड़ा में ही छुटकारा ढूढ़ते है परन्तु उन्हें मुक्ति प्राप्त नही होती, इसके बदले में कुंठा ही प्राप्त होती है । ' ' जैनेन्द्र जी के पात्रों की मूल समस्या है तथा जैनेन्द्र जी उस समस्या का हल आत्मपीड़न में देखने की कोशिश करते है । जयर्वधन में ी गांधी जी के सिद्वान्त को स्पष्ट करते हुए कहा है कि - 'हिंसा को बधिक हिंसा से हराने की सोंचना और उसे औचित्य बढ़ाने का साधन देना ही है । हिंसा की हार नही होगी जो अहिंसा से होगी । घृणा को व क्रोध को प्यार से और नम्रता से ही जीता जायेगा ।'[3]

जैनेन्द्र जी गांधीवादी आस्था के उपन्यसकार कहे गये थे । "कल्याणी" का तपोवन भी उन्ही आदर्शो का स्मरण कराता है ।'[4]

---

1. रघुनाथ शरण छालानी : जैनेन्द्र और उनके उपन्यसकार : पृष्ठ 90
2. डॉ0 नन्ददुलारे बाजपेई : अनुभूति : पृष्ठ 129
3. जैनेन्द्र - जयवर्धन पृष्ठ सं0 42
4. जैनेन्द्र - कल्याणी , 153

जैनेन्द्र जी गांधीवादी विचारधारा के पोषक है । उनके उपन्यासों पर गांधीवादी चेतना का विशेष प्रभाव पड़ा हुआ है । "सत्ता के अनेक उपयोग है । क्या उसे उपयुक्त छोडने की सलाह आप देगे? राज्य एक शक्ति है। गांधी ने भी उसका उपयोग किया है।" शक्ति नही, शक्ति के उदय में बांधा है । शक्ति है वह तो नकरात्मक, खानी व शक्ति उसके सहयोग या उपयोग का प्रश्न नही है । शक्ति एक है वह जनशक्ति, लोक शक्ति, प्रेम शक्ति राज्य उसी के नाम और बल पर छत्र दण्ड धारी के रूप में खड़ा होता है । यह केवल माया है, दम्भ है ।"2 गांधी जी का विचार था कि शासन आदेश कम दे और व्यवस्था अधिक करें । नीति में संघर्ष नही चतुराई की आवश्यकता है । शासन को हुकूमत कम और व्यवस्था अधिक होना होगा । तलवार की जगह कलम तभी आई है । लेकिन सिर्फ कलम से क्या होगा । वह तलवार का काम भी कर सकती है । कम तिलवार का नाम नीति का इस तरह तो कलम के साथ आडम्बर और कूटता आती है पहले और चलता था, अब चतुराई पीछे तलवार का बन्दोबस्त काफी करके चलती है । इसी का फल लड़ाई है । लड़ाई भी साफ नही मैली लड़ाई है । इससे आदमी शरीर से मरते नही बुद्धि से भी बिगडते है ।"3

गांधी जी का विचार है कि राजनीति में स्वार्थपरता की भावना नही आनी चाहिए । इससे देश में हित की बजाय अहित होगा । कल्याणी नामक उपन्यास का एक अंश प्रस्तुत है : खिल्लहाट से बोली आप नही जानते, आप नही जानते । वह प्रीमियर से मतलब साधना चाहते है । काग्रेस मंत्रित्व अवसर साधने के लिए है इससे ही मेरे स्नेह परिचय का लाभा उठाया जायेगा । क्या ऐसे हिन्दुस्तान स्वंतत्र होगा? क्या इसी का नाम व्यापार है? भलाई है? सुधार है?"4

राजनीति में मानवतावाद होनी चाहिए राजनीति ऐसी नही जो मनुष्य को नतान्हा बना दे । गांधी जी राजनीति में स्वराज्य की भावना लाना चाहते थे । राजनीति में परमाई की भावना रखनी चाहिए । काग्रेसी सरकारो पर आप भरोसा न रखिए ।

---

1. जैनेन्द्र जयवर्धन पृ0सं043
2. जैनेन्द्र - जयवर्धन पृ0 सं0 44
3. जैनेन्द्र अनामस्वामीपृ0सं060
4. जैनेन्द्र - कल्याणी - पृष्ठ -151

स्वराज अभी दूर है । बीच में जाने अभी क्या-क्या झेलना है । मंत्रित्व को आप ओहदा न समझे । जाने सब कब उलट पलट जाये । कल हम जेलों में थे और सब साथी थे । आज कुछ लोग बजीर है और और कुछ अब भी जेल में है । लेकिन वह माया का खेल है और कुछ अब भी जेल में है ।"[1]

राजनीति ऐसी नही होनी चाहिए जो कि बर्बर हो । राज्य काफी अपना कुछ उत्तरदायित्व है तो समाज की ओर से, यानि समाज में सीधे वह कुशलता और क्षमता आनी चाहिए कि असामाजिक और हिंसक तत्व पहले तो उपजे नही और हो भी तो सक्रिय और उग्र न हो सकें राज की पलिस के भरोसे ही यदि नागरिक जन सुरक्षा अनुभव करेगा वह संयम नही है । संस्कृति संयम का फल है । दमन हिंसा भाव का नियंत्रण है ।"[2]

उपर्युक्त विवरणों से वह द्रृष्टकृत है कि जैनेन्द्र के कथा साहित्य पर गांधी वादी चेतना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा हुआ है ।

ग. गांधीवाद की परिणतियाँ :

जैनेन्द्र जी का जीवन दर्शन गांधीवादी जीवन दर्शन से दो तिहाई समानता रखता हुआ एक तिहाई भिन्न है । गांधीवादी विचारधारा का जैनेन्द्र के कथा साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा हुआ है । महात्मा गांधी की भांति अहिंसा सत्य, तथा मानव प्रेम का प्रभाव लक्षित होता है और जैनेन्द्र तथा गांधी के जीवन दर्शन के थोडी सी भिन्नता भी देखी जा सकती है क्योकि गांधी जी परम सत्य को सर्वोपरि मानकर उसे ही लक्ष्य का पर्यायवाची कहते है, पर जैनेन्द्र के लिए वह बहम है ।

जैनेन्द्र जी के राजनैतिक जीवन के बाहर वर्षो में (सन् 1920-1932) काग्रेस एंव क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ अत्यन्त कर्मठ थी एवं दोनो को उन्होने समीप से परखा । काग्रेस के कर्मठ सेनानी के रूप में जैनेन्द्र जी गांधीयुग की देन है एंव गांधीवाद का उन्होने अध्ययन भी किया है ।

---

2. जैनेन्द्र कल्याणी पृष्ठ सं0 163

3. जैनेन्द्र कल्याणी पृष्ठ सं0 120

जैनेन्द्र जी पर गांधीवाद का व्यापक प्रभाव है । सन् 1921 से 1932 तक उन्होने राजनीति में सक्रिय साझेदारी निभायी । जैनेन्द्र जी ने अहिंसा को जो शीर्ष स्थान दिया है, उसकी वजह से उनके एंव गांधी जी के चिन्तन में ज्यादा समानता दिखाई पड़ती है । वे अहिंसा को ही जीवन का श्रेय मानते है एंव हिंसा को हमेशा तिरस्करणीय । परिवर्तन या क्रान्ति उन्हे मनुष्य के मन की चाहिए । जैनेन्द्र जी ने जनतंत्र का भविष्य अहिंसा में देखा है -"जनतंत्र का वर्तमान और भविष्य अहिंसा के साथ है और हर वाद विवाद रखने की आवयकता है । कि समस्याओ की समस्या है - हिंसा[1] वही नही जैनेन्द्र जी की धारणा अहिंसा की साधना व्यक्ति को विश्व और जिवात्मा को परमात्मा बनाइगी । वह अहिंसा क्रिया का मात्र विशेषण नही बल्कि ध्रुव सिद्वान्त है यानि अखिल खण्ड का नियम है । वे आगे कहते है - व्यक्ति की जाति की राष्ट्र की इतिहास की सिद्धी अहिंसा में है । दूसरा कुछ हो सकता है वह मेरी समझ में नही बैठता है [2] इस तरह जैनेन्द्र जी ने अहिंसा की सत्ता को माना है एंव हिंसा को त्याच्य । क्रान्ति रक्त पात में न मानकर मनुष्य के मन में मानी है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में गांधी वाद का समावेश तो है ही क्रान्तिकारी राजैतिक वातावरण का घटोटाप भी कम नही उन्होने व्यक्ति को मूलतः व्यक्ति मान कर उसकी मान्यताओं को प्रगति किया है । एंव इसी स्वरूप में उसकी राजनैतिक चेतना को विस्तार से प्राप्त हुआ है । अन्य शब्दों में यह कहा जाता है कि सामाजिक राजनीति से सम्बन्धित घटनायें तथा राजनैतिक उद्देश्यों के ध्येय से उपन्यासो का सृजन करने पर भी उनके मुख्य प्रात्रों के चरित्र चित्रण में गांधी वादी जीवन दर्शन आरोपित है । इन पात्रों की सार्थकता के लिये क्रान्तिकारी पात्रों की अवतारणना भी की गयी है अतः संघर्ष की उकने साहित्य की मूल शक्ति है जो उनके अत्यधिक चिन्तन के कारण उपन्यास के राजनैतिक रूप को ठके है एक आलोचक का मत है - जैनेन्द्र ने अपनी रचनाओं में राजनीति को न केवल अपेक्षित रूप में ग्रहण किया है उनके चरित्र राजनैतिक हलचरों से उतना प्रभावित नही होती जितना उनके विषय में सोचते है ।

---

1. जैनेन्द्र कुमार : वत्ताबिहार : पृष्ठ सं0 97

2. जैनेन्द्र कुमार : अनाम स्वामी : पृष्ठ सं0 66-68

उन आदर्शों के पात्र भी समय की परिस्थितियों द्वारा शोधित होने वाले आदर्श नहीं हैं ।[1] जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों में गांधीवाद के आध्यात्मिक रूप एवम् क्रान्तिकारियों के क्रियाकलापों का विशद वर्णन हुआ है ।

सुनीता में हरिप्रसन्न नामक पात्र के लिये क्रान्तिकारियों के क्रियाकलापों का परिचय प्रस्तुत किया गया है । हरिप्रसन्न क्रांतिकारी होते हुये भी न तो कोई ऐतिहासिक पात्र है एवम् न क्रान्तिकारियों के अन्य गुणों से ही मुक्त व्यक्तित्व । "सुखदा में उपन्यास की नायिका सुखदा के पारिवारिक जीवन को केन्द्र बिन्दु बनाकर क्रांतिकारियों के विचारों व क्रियाकलापों को दर्शाया गया है । "विवर्त" से भी भारतीय क्रांतिकारियों एवं क्रान्ति की कथा वर्णित है । कल्याणी की कथा 1935-1936 की कांग्रेस मिनिस्ट्री की पृष्ठभूमि लेकर चलती है । "मुक्तिबोध" में मिनिस्ट्री को लेकर कथावस्तु का ताना - बाना बुना गया है ।

राजनैतिक दृष्टि से एक व्यापक अर्थनीति की आवश्यकता है जिसके द्वारा ही हमारा राजनैतिक जीवन सफलतापूर्वक चल सकता है एवम् स्वतन्त्रता आन्दोलन को सफलता प्राप्त हो सकती है । सुखदा उपन्यास का पात्र लाल का कथन है - मानव प्रेम उससे नीचे रह जाता है - वह पैसे के बल पर खरीदा जाता है और बेंचा जाता है । दादा का सरकार जिसको विदेशी कहकर हम हटाना चाहते हैं, इस पैसों को ढालने - छापने और चलाने की ताकत का नाम है । राजनीतिक ऊपर से है अर्थनीति भीतर से है ।[2] इतना ही नहीं भारतीय खोखली मान्यताएं देश की स्वतन्त्रता में बाधक प्रतीत हो रही हैं । लाल उन्हीं का जिक्र करता हुआ कहता है - "देश को हम आजाद चाहते हैं । उसमें जकडन से वह न होगा । भावुकता पर बुनियाद बांधकर हम जन आन्दोलन नहीं खड़ा कर सकते । आत्म त्याग आदि की बातें ठीक हैं लेकिन उनसे शेर की मांद में पहुँचकर आराम से मरा जा सकता है । उन दादों

1- आलोचना : अंक - 13 : पृष्ठ संख्या - 41

2- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ संख्या - 156

को उखाड़ा नहीं जा सकता । ...... यह शेर साम्राज्यवाद है । पेट में वह पूँजीवाद है । इनको आर्थिक कार्यक्रम चाहिये । राजनीतिक पहला कदम है, असली काम आर्थिक है ।[1] इस तरह जैनेन्द्र जी के साहित्य पर गांधी जी की राजनीतिक चेतना का विशेष प्रभाव पड़ा हुआ है । राजनीति नीति की धुरी से अपदस्थ होकर निहित स्वार्थों की सिद्धि का षडयन्त्र मात्र रह गई है । फलस्वरूप चतुर्दिक घेराव, आन्दोलन, दंगे, बन्द, भाषा - जाति तथा प्रान्त भेद इत्यादि खड़े हो गये हैं । जैनेन्द्र जी गांधी युग के हैं । उनकी उनमें गहरी आस्था है । उन्होने सामान्य कपड़ों में उस महात्मा को देखा था जो कुटिया में रहकर बिना सत्ता पोज के इस देश की आत्मा बना निर्द्वन्द्व घूमता था । वह राजनीति में था, वह धर्म में था । उसे लिये राजनीति, धर्म, साहित्य, वर्ग आदि अलग - अलग माने नहीं रखते हैं ।

जैनेन्द्र जी के साहित्य पर गांधी जी के सत्याग्रह का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है । जैनेन्द्र जी ने सत्य को जीवन में केन्द्र माना है । सत्याग्रह के प्रति वे अत्यन्त निष्ठावान लेखक थे । उनका सम्पूर्ण साहित्य चाहे वह कथा वाङमय हो या विचार वाङमय की खोज में रत दिखाई पड़ता है । वे जानते हैं कि गांधी जी सत्याग्रह पर इसलिये जोर दिये हैं कि उससे होने वाले परिवर्तन न केवल स्थायी महत्व के होते हैं अपितु उनसे समाज का मंगल अहर्निश द्रुतगति से होता जाता है । बिना सत्याग्रह के आत्मोत्सर्ग मयी कार्य सम्भव नहीं है । समाजोत्थान के लिये यह मार्ग धार्मिक अनुष्ठान जैसा मांगलिक तथा पुनीत है । जैनेन्द्र की धारणा है कि सत्याग्रह में आत्मा तथा प्रेम का बल होगा । त्यागपत्र की नायिका मृणाल के निरन्तर हासोन्मुख होने में भी आत्मा का तप है, जो उसे पतित से पावन बना ले जाता है । सत्याग्रह का प्रयोग जिस संदर्भ व स्तर पर किया जाए । वह मानव के लिये लाभप्रद है, क्योंकि उसमें शक्ति अन्दर से आती है । आत्मा के प्रकाश से वह कार्य

1- जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृष्ठ संख्या - 98

करता है । साथ ही साथ अहंमूलक अभिव्यंजनाएं भी स्वतः नष्ट हो जाती हैं । वे भी सत्य से अलुप्त होकर उसकी शक्ति से बंध जाया करतीं हैं - आत्मा के प्रकाश से वह कार्य करता है ।

जैनेन्द्र जी स्वयं ही प्रश्न उठाते हैं कि सत्य जब अखण्ड और विभाजित नहीं है, तब वहां आग्रह का अवकाश कहां रहता है ? उनका उत्तर है : .... इसी का निराकरण करने के लिये शर्त लगाई गई - सविनय । जहां विना भाव नहीं है, वहां सत्याग्रह हो नहीं सकता । अविनय यानी हिंसा को वहां सत्याग्रह का व्यवहार है तो जान अथवा अजान में छल है ।[1] इस प्रकार उनके विचारों में विनयात्मक सत्याग्रह के माध्यम से पूर्णता की तरफ बढ़ा जाता है ।

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की जैनेन्द्र जी के साहित्य पर अमिट छाप है, जैनेन्द्र जी का विचार है कि "समन्वय में मेल और समझौता है, तब सत्य के आग्रह में से असहयोग और शान्त युद्ध भी निकल सकता है ।[2] सहयोग सत्याग्रह के आधार पर टिका हुआ है । आग्रह से आगे असहयोग है । वह दूसरे को यह महसूस कराने हेतु सविनय सत्याग्रह पर ध्यान दिया जाये, असहयोग शुरू कर देता है । असहयोग भेद तथा अभेद को समाप्त कर सबको एक धरातल पर ले आता है । सन् 1920-21 के असहयोग आन्दोलन का जोर जब जरा मद्धिम हुआ, तभी राष्ट्र वृद्धि - भेद भी दीखा ।[3]

राजनीतिक चिन्तन में जैनेन्द्र जी के "अनामस्वामी" नामक उपन्यास में गांधीवादी परिणतियां दिखाई पड़ती हैं । एक स्थल दृष्टव्य हैं - "यों सेवक होना तो बुरी बात नहीं । ईश्वर के हम चाकर हैं, ऐसा शब्द प्रयोग

1- गांधी और हमारी राष्ट्रीय : पूर्वोदय : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 122

2-

3- राजनैतिक शब्द : सोंच विचार : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 194

महात्माओं की वाणी में मिलता है । अपने को प्रभु का दास मानकर व्यक्ति उन्नत होता है । सेवा तो हक है । बल्कि वही हक है । इसलिये दासता की जंजीर तोड़ने का जो कोलाहल गूँज उठा है, वह क्या है ? उसके भीतर मिथ्या कितना और सत्य कितना है ? स्वातंत्र्य की पुकार में चाह का भाव अधिक है कि कर्तव्य का ? चाह बुरी है, वह है तृष्णा ।[1]

गांधी जी राजनीति के सविनय को मान्यता देते हैं - और नरम कहते हैं कि संघर्ष में हत्या है । दमन को बुलावा देना दोनों और आदमी के भीतर की नृशंसता को नयोतना है । मार्ग वैधानिक हो ही सकता है । कानून अवज्ञा उच्छखंलता उपजाएगी । उन्नति नियमितता में से होगी अवज्ञा सविनय कभी रहती नहीं, इससे अवज्ञा - आन्दोलन अनिष्ट है ..... सो क्या होगा ? सब कहीं यही सवाल है, क्या होगा ?[2]

जैनेन्द्र जी के "जयवर्धन" नामक उपन्यास में गांधीवादी परिणतियां प्राप्त होती हैं - "राज पर हमला उपकार यह है कि उसे अपने राजपन को भूलने दिया जाए । उसमें से लाभ लेना उसके दंभ को बढ़ावा देना है, नहीं मुझसे वह नहीं हो सकता । यह भ्रम है कि राज से लाभ होता है । अर्थलाभ चाहने वाले भ्रम में रह सकते हैं, आत्मलाभ जिन्हें इष्ट है वे भ्रम नहीं पाल सकते । उन्हें स्वयं राज के भ्रम को तोड़ना है ।[3]

राजनीति में गांधी जी के अहिंसावादी दृष्टिकोण को देखा जा सकता है - बोले, सुनो, राज कुछ है तो दमन का यंत्र है । अहिंसा में तुम कहते हो दमन है, निषेध है, उस अर्थ में तो राज्य अहिंसा में साधन हो सकता है । .... मत समझो मैं तुमसे असहमत हूँ । अपने विकाल में ही

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 59

2- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 62

3- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ संख्या - 44

मनुष्य ने राज्य संस्था का निर्माण किया और विकास की दिशा अहिंसा है ..... फिर भी राज्य का तंत्र और यंत्र हिंसा का कारण बनता है, अन्यथा प्राण मूल प्रेम है । उसे हर हाल अदम्य रखना अहिंसा है ।[1]

उपर्युक्त विवेचनों से ज्ञात होता है कि जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा हुआ है ।

आर्थिक चिन्तन :

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत को आर्थिक स्थिति संभालने में काफी प्रयास करना पड़ा है किन्तु आज तक वह आर्थिक विपन्नता से छुटकारा नहीं पा सका है । प्रकृति, प्रकोप, वृद्ध की विवशता ने उसे ठीक से संभलने नहीं दिया । जैनेन्द्र जी की दृष्टि में भारत आज भी संक्रान्ति युग से गुजर रहा है । औद्योगीकरण ने शोषण चक्र को और बढ़ावा दिया है । शहर का विकास हुआ । ग्रामों में बसा भारत जो धरती से लगकर परिश्रम करता हुआ जीवित है, वह भारत दरिद्र, भूखा, अशिक्षित, आत्महीन देश के विकास से अनजान का रह गया । शहर गांवों के श्रम तथाधन के बल पर सभ्य, सम्पन्न शिक्षित तथा भद्र होने लगा । वह राष्ट्र नीति का निर्धारण कर्ता भी लगभग बन गया । इस तरह उनकी प्रत्यक्ष दृष्टि बतलाती है कि भारत की सम्पन्नता शहरों के कुछ भाग तक मिटी है, देहात तो निपट कंगाल पड़ा है । गरीबी तेजी से बढ़ने लगी । नीति अस्त - व्यस्त हो गई । परिणाम यह हुआ कि यहां अनेक "वाद" उठ खड़े हुए । तंत्र का प्रसार, वाह्य शक्तियों ने अपने राजनीतिक स्वार्थो की सम्पूर्ति हेतु असहयोग, लूटमार, घेराव, आन्दोलनों, हत्या को राजनीति इत्यादि के माध्यम से तीव्र कर दिया । योजना का रथ चरमराने लगा । हिंसा की आग विकास को ही स्वाहा करने लगी । इसमें राजतंत्र ने भी जो नहीं करना था, वह किया । राजनीति को व्यवसाय स्वीकार कर लिया गया ।

1- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ संख्या - 109

स्वतन्त्र व्यवसाय ने जहां पूंजीवाद को जन्म दिया और पूंजी पर व्यक्ति का अधिकार बना वहां राज्य ने उसमें हस्तक्षेप शुरू कर दिया । राज्य व देश के विकास के नाम पर उसने कई व्यवसाय अपने हाथ में ले लिये । कारण कुछ व्यक्तियों के पास जमा पूँजी के एकाधिकार को समाज करना था । जैनेन्द्र जी इस सन्दर्भ में कहते हैं कि "एकोनामिक्स" और "पालिटिक्स" अर्थ प्रकरण और राज प्रकरण ये दो रहेंगे ही नहीं । ईस्ट इण्डिया कम्पनी में से जैसे यहां की ब्रिटिश सरकार बन खड़ी हुई उसी तरह आज की सरकारें, प्रतिस्पर्द्धा के चक्र में, व्यावसायिक स्वार्थ - संघ का रूप लिए बिना नहीं रह सकती । "नेशनेलाइजेशन" अन्दरूनी समस्या के लिये अच्छा जान पड़ता हो, लेकिन पूंजीवाद के विष की समाप्ति वहां नहीं हो जाती । हो सकता है कि इस तरह नये रोग "स्टेट के पोटलिज्म (राजकीय पूंजीवाद) को जन्म मिल रहा हो ।[1]

दृष्टि में राजकीय पूंजीवाद देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहायक नहीं हो सकता । पूंजी का एक जगह एकत्र होना, फिर वह चाहे व्यक्ति हो अथवा राज्य, उन बुराइयों से बच नहीं पाता, जो पूंजीवाद के अन्तर्गत दिखाई पड़ता है ।

"जन शक्ति हमारे पास काफी अतिरिक्त है । कच्चा माल भी भारत के पास कम नहीं है । तो इसी को पूंजी में क्यों परिणत नहीं किया जा सकता ।[2] पूंजीपतियों और राजनीतिज्ञों से श्रमिक छुटकारा पा जाए । घर तथा कुटीर उद्योग का विकास । लोक मान्य मूल्य के तौर पर यज्ञ की भावना की प्रतिष्ठा ।[3]

1- भारत में साम्यवाद भविष्य, सोंचविचार, पृष्ठ संख्या - 295

2- समय, समस्या और सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या - 214

3- बाजार दर्शन, सोच विचार, जैनेन्द्र, पृष्ठ संख्या - 83

"संचय की तृष्णा और वैभव की चाह में व्यक्ति की निर्जलता ही प्रमाणित होती है । निर्बल ही धन की ओर झुकता है । वह अबलाता है । वह मनुष्य पर धन की और चेतन पर जड़ की विजय है ।"[1] पैसा मनुष्य को संकीर्णता के घेरे में जकड़ लेता है । प्रत्येक को अपने स्वत्व की जरूरत है । सामाजिक संस्थाओं का रूप बदला जा रहा है । वे अपने कर्तव्यों पर अडिग नहीं हैं । किन्तु मैं पैसे के चलन के बारे में सोचता हूँ जिसमें बढ़कर स्नेह - सम्बन्धों को अपने अधीन कर लिया है और परिवार को छिन्न-भिन्न, बेटी - बेटी नहीं है । जितनी स्वयं है । इस बात को यों ऊँची तात्विक आध्यात्मिक भाषा दी जा सकती है, पर क्या वास्तव में वह स्वार्थिक नहीं है ? लगता है यही हो रहा है । प्रत्येक को प्रथम अपना स्वत्व चाहिये । वहीं साध्य शेष साधन । अगर स्वयं है तो परिवार क्यों है, क्या है ? इस तर्क पर हमारी सब संस्थाओं का रूप बदलता जाता है वे अपने कर्तव्य पर नहीं रहती, अधिकार पर आ जाती हैं । समाज की तमाम संस्थाएं इस प्रकार अर्थाश्रित, अर्थहेतुक बन जाती हैं, बीच में से उनके स्नेह की स्निग्धता खो जाती है ।[2]

पैसा संवर्धन के लिये है । संवर्धन यानी जीवन - संवर्धन । धन का व्यय जहां संवर्धनोन्मुख नहीं है, वहां वह असामाजिक है, अतः पाप है । विलासोन्मुख व्यय से सम्पत्ति नहीं दीनता बढ़ती है ।[3] आर्थिक सम्पन्नता पर लोक संवा की विविध प्रवृत्तियों में भी वह भाग ले सकेगी । उधर उनकी बहुत भावना है ।[4]

1- बाजार दर्शन : सोंच विचार : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 85

2- अनामस्वामी : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 259

3- व्यवसाय का सत्य : सोंच विचार : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 146

4- कल्याणी : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 185

जैनेन्द्र जी की धारणा है कि परामर्श की प्रेरणा से आर्थिक विकास पर विचार कर कार्य किया जाए तो वर्तमान का विकट आर्थिक संकट दूर हो सकता है । वे ग्राम केन्द्रित आर्थिक विकास की योजनाओं को लाभप्रद स्वीकार करते हैं । सहानुभूति, प्रेम, परस्पर सौहार्द, मुदिता इत्यादि मानवीय गुणों से आदान प्रदान का बाजार चले तो शोषण - प्रवृत्ति अर्थलोलुपता तथा मुनाफे के लिये कालेज - बाजार की जरूरत अपने आप टल जाए । फिर व्यक्ति के मनुष्यता लाभ का सौदा हो, अमनुष्यता को कहीं स्थान - अवकाश न रहे । .... कीमत असल को छोड़ गई और नकल पर जा चढ़ी है । .... पैसे का बचाना ।[1] आदमी की अपेक्षा कहीं उत्तम है । इस तरह की भावना सामाजिकों में से दूर हो जायेगी । जब तक आर्थिक मूल्यों को सामाजिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक मूल्यों के साथ नहीं देखा जाएगा तब मनुष्य आदमी को सड़क पर पड़ा मरने देगा और उसके पास पड़े पैसे को उठाकर आगे बढ़ जायेगा । अर्थ की अपेक्षा नैतिक मूल्यों को संस्थापित करने के लिये आज संघर्ष की अत्यन्त जरूरत है ।

जैनेन्द्र जी ने अपनी विचारधारा "कल्याणी" नामक उपन्यास में व्यक्त की है - "निस्संशय वह कमाती है तो खर्च कर सकती है । कौन हाथ रोकने वाला है ? लेकिन वह जाहिर करके कि मैं कामना नहीं चाहती जो कमाई बढ़ाई जाती है, वह भी क्या कमाई है ? क्या वह लूट नहीं है ? सद्भाव दिखा कर पहले परिचय खींचा जाये, साख बनाई जाये, फिर उस परिचय और साख में से पैसे खींचें जायें - यह क्या है ? यह अतीत नहीं है ? दुष्कर्म नहीं है ?[2]

1- जड़ की बात : सोंच विचार : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 91

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 58

जैनेन्द्र जी के विचार अनामस्वामी नामक उपन्यास से दृष्टव्य हैं - "सुनो तुम अभी यह जानते कि जिसे धन दौलत कहते हैं, वह बोझ है । अभी तुम उसे धन दौलत ही जानते हो । इसी से छोड़ने की बात करते हो ।[1] धन यदि मल हो तो उसे छोड़ने की बात क्या तुम किसी से पूछने बैठोगे ? और तब मैं ही क्या सलाह दूँगा कि नहीं छोड़ो ? मैं यही कहता हूँ कि तुम जहां हो वहां धन, धन है, विष्ठा नहीं है । इसी से कहता हूँ, तुम्हारे लिए उसे छोड़ने की बात व्यर्थ है । भूषण ही किसी से मिटा नहीं है । तुम तो खुद ही जानते हो कि वह उपयोगी होता है । वह छूटता है, भूषण नहीं छूटता । भले भाई, धन का मूल्य तुम्हारे मन से ज्ञात रखते हुए वह तुमसे कैसे छूटेगा । इससे उपयोगिता के दायरे में ही उसका विचार करना उचित होगा । उसकी अनुपयोगिता की बात मेरे लिए छोड़ दो । मैं हूँ इतना अज्ञानी कि उसकी अनुपयोगिता की बात समझ सकूँ ।[2]

जैनेन्द्र जी की मान्यता है कि लोक - कल्याण की प्रेरणा से अगर कार्य किया जाये तो वर्तमान का आर्थिक संकट निश्चय ही दूर हो जायेगा । अगर मानवीय गुणों से युक्त पैसों का बाजार चले तो शोषण वृत्ति तथा काले धन्धे अपने आप समाप्त हो जायें । आर्थिक मूल्यों को सामाजिक, मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ देखना चाहिये । धन किसी के महत्व को नहीं बढ़ा सकता है, उसका महत्व उसके देने में है । धन किसी का गौरव नहीं है । हो तो वह लांछन हो सकता है । गौरव तो है उसके देने से । मैं लज्जित नहीं हूँ कि मैने उन्हें मौका दिया कि वह दूसरे को कमीना समझे तो मैं क्या कर सकता हूँ ?[3]

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 18

2- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 19

3- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 189

जैनेन्द्र जी ने जयवर्धन नामक उपन्यास में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है - "अर्थ - रचना भी उस धरती से उगकर ऐसी स्निग्ध हो सकेगी कि शोषण का साधन न बने परस्पर स्वास्थ्य को ही पुष्ट करे ।"[1]

लाल मध्यवर्ग की पूँजीवादी युग में घुलती जिन्दगी को लक्ष्य कर कहता है - "आत्मनीति और धर्मनीति को बाद में देखा जाएगा, अर्थ को पहले देखना होगा ।"[2]

ग्रामोदय :

जैनेन्द्र जी महात्मा गांधी की तरह ग्रामोदय के पक्ष में थे । भारत गांवों से निर्मित है । वह गांवों में निवास करता है । भारत का विकास मात्र शहर के विकास से सम्भव नहीं है । वे विकेन्द्रीकरण के पक्ष में हैं । बिना गांव को सम्पन्न किये देश समृद्धशाली नहीं बन सकता है । वर्तमान काल में गांव से प्राप्त रकम को शहर के विकास में लगाया जा रहा है । विदेश से आने वाले का आकर्षण दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई इतयादि जैसे बड़े महानगर नहीं हैं । वे तो मात्र यह देखने आते हैं कि झोपड़ी में निवास कर, आधा पेट खाकर, यहां का श्रमिक किसान कैसे सुख की नींद सोता रहता है ? परिश्चमोत्तर देश भारत के आत्म - सन्तुष्टि की शक्ति पर मुग्ध है तथा भारत पश्चिम में सुख की खोज के लिये भटक रहा है । जैनेन्द्र जी के लिये चिन्तनीय विषय है ।

जैनेन्द्र जी को उस दिन की प्रतीक्षा है जब मानव जाति का निस्तार संगठित शक्ति के त्रास से सम्भव हो सकेगा । श्रमोत्सव - चतुर्दिक मनाया जा रहा होगा । प्रत्येक मनुष्य लगन तथा निष्ठा से परिश्रम करेगा, अपने

1- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ संख्या - 256

2- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ संख्या - 111

प्रति ईमानदार होगा । दूसरे के लिये उसमें उत्सर्ग की उदात्त व अनामिल भावना होगी । "जबकि उपज और खपत, और श्रम तथा पूंजी के बीच इतना फासला न होगा कि बीच में बढ़ाव के लिये किसी तीसरी बुद्धि या शक्ति की जरूरत हो । जब आर्थिक समस्या न्यूनतम हो जायेगी और मनुष्य की समस्या नैतिक और आध्यात्मिक ही हुआ करेगी । जब आर्थिक अभाव नहीं, बल्कि आर्थिक सद्‌भाव मनुष्य को चलाया करेगा ।"[1]

जैनेन्द्र जी ग्रामोदय के लिये ग्रामोद्योग के विकास पर बहुत जोर देते हैं । प्रत्येक गांव अपनी सीमा में अपनी आवश्यकतानुसार उन्नति करे तब शोषण नहीं रह सकता । तब कोई भूखा भी नहीं मर सकता । ...... सताएं टूटेगीं और बिखरेंगी तो इसी तरह से कि हर एक श्रमी बने और श्रम का मालिक बने । इसी तरह से हर श्रमिक स्वयं में सत्तावान और स्वाधीन चेता होगा ।[2] तब धन संचय न हो सकेगा । अतः श्रम का ह्रास भी न होगा । तब अभाव प्रमादी तथा श्रम से कतराने वालों के पास ही रहेगा । सारा वर्तमान के संकट से उभर जाएगा । "योगक्षेम वहाम्यहम्" के सार पर विचारते हुए तब मानव स्व कर्तव्य पर अग्रोन्मुख हो सकेगा ।

सेवाग्राम "ग्रामोदय" का जैनेन्द्र की दृष्टि में साकार उद्धरण है । गांव - गांव जागेगा तो सम्पूर्ण भारत उस आलोक से आभासित हो उठेगा - अन्दर - बाहर का अन्धकार आता रहेगा । प्रेम पारस्पर्य की ओर मानव - मानव बढ़ेगा तो निश्चित ऊपर से आया, प्रत्यक्ष मैं हौवा सा दीखने वाला संकट स्वतः ही जाता रहेगा । उनकी दृष्टि से ग्रामोदय से ही अनायास बढ़ आया भौतिक और बौद्धिकता का भर हट सकता है । मानव पुनः सहज तथा स्वाभाविक होकर जीवित रह सकता है । एकदम मुक्त होकर ।

1- ब्लैक आउट : सोंच विचार : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या : 168

2- खादी और उसके फलितार्थ : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 102

अपनी रोटी मुझे पसीने के बल कमानी चाहिये और ऐसा बोलने पर पढ़ाना या और सेवा कर्म करना चाहिये ।[1]

कल्याणी नामक उपन्यास में ग्रामोदय का ही एक रूप गांधी सेवा संघ है । "जो सूखा है हृदय के रस से हरा - भूरा नहीं है, वह गांधी का नहीं है, वह गांधी का नहीं है । गांधी की तपस्या मुस्कराती है । निज की ओर ही वह दुखी है, शेष सब ओर वह स्निग्ध है । प्रीति की मुस्कराहट जहां नहीं वैसी कर्म की तपस्या गांधी की नहीं । गांधी - सेवा - संघ में क्या स्नेह को सुख दिया जायेगा ? यह तो गांधी को गांधीवाद में भून देना होगा । इससे बड़ी अकृतज्ञता - गांधी की हत्या और क्या हो सकती है ।[2]

जैनेन्द्र जी का मानना है कि भारत गांवों में बसता है । उसकी आत्मा गांवों में है । "तपोमय था हमारा अतीत, तपोमय है हमारी संस्कृति । वही हमारा सन्देश, वैसा ही होगा भारत का भविष्य, यदि वह भारतीय होगा ।[3]

जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित जयवर्धन नामक उपन्यास से उनका विचार है कि "भारत देहात में है, उन गांवों में बसा है । भारत के गांव आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, उसमें न कोई उत्साह है और न रौनक । गांवों के विकास से ही भारत का विकास सम्भव है ।" भारत देहात में, उन गांवों में जो धरती से लगे - बिछे फैले पड़े हैं कि दीखते तक नहीं । उन्हें गिनना मुश्किल है मानो बिना जिए वे जीते हैं । वहां वेग नहीं, जागृति नहीं, उन्नति नहीं । एक अवसाद है । विरसता है ।[4]

1- सुनीता : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 65

2- कल्याणी : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 201

3- कल्याणी : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या : 200-201

4- जयवर्धन : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 9

किसान भारत के गांवों में बसता है । किसानों के संकट कालीन स्थिति में सरकार को आर्थिक मदद करनी चाहिये । तरूणोत्थान के तरूणों की किसानों के एक दल से मुठभेड़ हुई है । चोटें आई हैं और कुछ घर जला दिये गये हैं । फसल सारी जलते - जलते इसलिये रह गई कि हवा उल्टी थी, उसे समय पर काबू में लग न सका । सरकार को चाहिये कि किसानों के क्षति की यथोचित भरपाई करे । जमीन ट्रस्ट के अधीन है तरूणोत्थान की है, पर ट्रस्ट के अध्यक्ष कुमार साहब कृषकों की क्षतिपूर्ति में सचेष्ट हैं ।[1]

जैनेन्द्र जी का विचार है कि किसानों का जमीन पर हक है । जमीन का दुरूपयोग किसान कभी नहीं कर सकते हैं । वे उनमें अनाज पैदा करके गांवों का विकास कर सकते हैं । जमीन का सदुपयोग यह है कि वह उपज दे । दूसरी प्रवृत्तियां बाद में है । किसान और चीजों से अनजान रहकर धन - धान्य उपजाए जाता है, यह क्या कम क्रान्ति है ?[2]

नगरीकरण और आधुनिक बोध :

जैनेन्द्र जी के उपन्यास नगरीय जीवन से सम्बन्धित है । कल्याणी, डा0 असरानी (कल्याणी) भुवन मोहिनी, जितेन, इला, जय, नाथ, अनिता, चन्द्री आदि पात्र आधुनिक सभ्यता तथा आधुनिक विचारों से जुड़े हुए हैं । वर्तमान कालीन नगरों में आधुनिक मशीनीकरण का युग आ गया है । वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में तीव्रगति से मशीनीकरण हुआ । आधुनिक शहरीकरण की पृष्ठभूमि में वही औद्योगीकरण है । जहां विस्तृत कल कारखानों की स्थापना हुई, वहां उनमें काम करने वालों के लिये आवास का प्रबन्ध भी अनिवार्य हो गया । अतः विशाल बस्तियों का निर्माण किया

1- अनामस्वामी : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 261

2- अनामस्वामी : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 262

गया जो कालान्तर में विभिन्न नगरों की भांति विकसित हुई है । जमशेदपुर, दुर्गापुर, टाटानगर, डालमिया नगर आदि का विकास औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप ही हुआ है । साथ ही विभिन्न उद्योगों की स्थापना के लिये नगरों ने महानगरों का रूप भी ग्रहण किया है । बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, अहमदाबाद आदि के विस्तार में औद्योगीकरण ही मूल कारण रहा है ।

भारतीय नगरीकरण में आधुनिकता परिलक्षित होती है । इस पर पाश्चात्य देश का प्रभाव पड़ा हुआ है । जैनेन्द्र के उपन्यासों के नगरीय जीवन में धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक बदलाव आये हैं और इन पर आधुनिकता की छाप पड़ी हुई है ।

आधुनिक युग में पैसे पर अधिक जोर दिया जाता है । "पैसे कमाना सरल है । पैसे वालों में काबलियत नहीं होती है, काबलियत पैसे में रहने की है । पैसे कमाने के अनेक धन्धे हैं, इन्श्योरेन्स, एर्जेशियां इत्यादि । पैसे के लिये ज्यादे करना - धरना नहीं हुआ करता । ठाठ से रहना काफी है । फिर सब अपने आप होता जाता है । जो पैसे में रहते हैं, समझते हैं, वे काबिल होते हैं, नहीं काबलियत यह कि सिर्फ पैसे में रहना जानते हैं । सोसायटी में रहो तो सो काम है । इन्श्योरेन्स, एजेन्सियां, स्टाक शेयर ...... मि0 पुरी का कहना है कि पैसा तो बहाता है, लेने वाला चाहिये ।[1]

"पैसे और गहने सुरक्षित ढंग से रखने के लिये बैंक तथा लाकर के प्रबन्ध किये गये हैं । जेवर जाकन में थे, रूपये बैंक में ।[2]

व्यतीत की सुमिता पाश्चात्य प्रभाव पाया जाता है "सुमिता ऊँची घराने की थी, स्वच्छन्द थी । पढ़ लिख गई थी । निषेध को निषिद्ध मानती थी । पर पैसे की प्रचुरता और पढ़ाई की अधिकाई कुछ करे थी जो वह

1- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ संख्या - 18

2- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ संख्या - 108

नारी ही ।[1]

नगरों में पूंजीवाद को बढ़ावा मिल रहा है । पूंजीवादी लोगों के पास कार, बंगला, टेलीफोन, टेलीविजन, फ्रिज आदि उपयोगी वस्तुएं सुलभ हैं । मिल, कारखाने उन्हीं के नियंत्रण में हैं ।

"मुक्तिबोध" नामक उपन्यास में कुंवर उद्योगपति है । उसके कई मिलें हैं और वह पुनः नयी मिल खड़ी करने की योजना बना रहा है । उसके विरूद्ध सरकारी जांच चल रही है ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव दिखाई पड़ते हैं "शायद आपके मन में विवाह की पवित्रता की बात है । लेकिन गृहस्थ का आधार आर्थिक है । पवित्रता की धारणा बासी हो चुकी । सोसायटी अब परिमिसिव होना सीख रही है । और आप सोचिए कि दो की आय से एक इस्टेबलिजमेंट क्या अधिक ठीक नहीं चलेगा ? "बी आर फ्रेन्डसा" एण्ड आफ कोर्स बी केन शेयर ।[2]

आधुनिकता का एक उदाहरण और दृष्टव्य है । "यूनिवर्सिटी की ओर से एक छात्रमण्डल अमेरिका जायेगा । केवल एयर - फोर्स छात्र को देना है, आतिथ्य स्टेट यूनिवर्सिटीज का होगा । यात्रा एक महीने के भीतर पूरी हो जायेगी ।[3]

वैानिक और आर्थिक प्रणालियां कुछ इस तरह की हैं कि समाज अपने परम्परावादी दृष्टिकोण पर नहीं टिक पा रहा है । समाज योजना की वैज्ञानिक और आर्थिक प्रणालियां कुछ इस प्रकार की अनिवार्यताएं उत्पन्न कर रहीं हैं और मनुष्य की परम्परा से दृढ़ बनी आस्था उसका सामना नहीं ले पाती है ।[4]

1- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ संख्या - 38

2- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 206

3- जैनन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 207

4- जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ संख्या - 40

यह कहना अमान्य नहीं होगा कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में नगरीकरण और आधुनिकता पाई जाती है ।

श्रमिक वर्ग :

भारत में श्रमिक वर्ग ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था की उपज है । अंग्रेजी सत्ता के कारण पुराने उद्योग धन्धे नष्ट हो गये । अतः कारीगरों को भी भूमि पर निर्भर रहना पड़ा । व्यक्तिगत आधार देने के कारण भूमि का क्रय - विक्रय हो सकता था । अतः कर्ज के बोझ से भूमि जमींदारों तथा महाजनों के हाथ में जाने लगी । फलतः किसान, खेतिहर, श्रमिक तथा औद्योगिक श्रमिक बनने के लिये बाध्य हुए । श्रमिक वर्ग की सामाजिक दुर्व्यवस्था का मुख्य कारण है, उनका अशिक्षित तथा निर्धन होना । सुनीता नामक उपन्यास में रामदयाल अशिक्षित है जिसका मूल कारण अर्थाभाव । जिसकी वजह से वह एक नौकर है । "आगे से सुनीता ने कहा, "ओ रामदयाल (नौकर) इधर ले आ, इधर ।"

और रामदयाल अपने सिर पर सामान लेकर उधर बढ़ता चला गया ।[1]

"सुखदा" उपन्यास में गंगा सिंह नामक व्यक्ति 20/- रूपये प्रति माह पर सुखदा के यहां नौकर का काम करता है । जो बाद में एक माह पर सुखदा क्रान्तिकारी बन जाता है । "कल्याणी" नामक उपन्यास में दरबान ड्राइवर, बेहरा श्रमिक वर्ग के अन्तर्गत आते हैं । इनकी भाषा गंवारू है । इनका सामाजिक स्तर निम्न कोटि का है । ये निर्धन तथा आज्ञाकारी है ।

इन्हीं दिनों की बात है कि परी दरवेस पहने एक दरबान आया सलाम किया और मेरे सामने एक बड़ा सा लिफाफा रख दिया । मैंने कहा

1- जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ संख्या - 40

क्या है ? बोला मेमसाब ने दिया है । कुछ कहा है ? "जी नहीं ।" अच्छा । "सलाम करके वह चला गया ।[1]

"शाम को उनके ड्राइवर ने आकर सलाम किया । बोला मेमसाहब ने भेजा है ।"[2]

इस तरह जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में श्रमिक वर्ग है ।

आर्थिक वैषम्य :

अर्थ मानव जीवन का एक अंग बन गया है । उसकी मूल प्रवृत्तियों में अर्थ का विशेष महत्व है । मानव संस्कृति के इतिहास में धर्म, विज्ञान, कला, साहित्य विशेष गरिमा प्राप्त है किन्तु देखा जाये तो इन सबके मन में मानव की आर्थिक संतुष्टि के ही बीज मिलते हैं । यहां तक कि मानव की अविकसित या अल्प विकसित जातियों में भी अर्थ की महत्ता तथा अपना प्रभुत्व जमाए हुए है । अर्थ का लोभ मानव में संस्कारगत है । समाज में अर्थ की अपमानता के कारण विभिन्न प्रकार की विकृतियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

नैतिक मूल्यों पर कुठाराघात होगा । जैनेन्द्र की दृष्टि में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों ही उपयुक्त नहीं है । एकदम नहीं । मैं कोई इज्म नहीं रखता पास । सब खटराग है और आदमी के आज को कल में हिलगा देता है । नहीं, कोई आदर्श न रहेगा, सब परिचालन अन्दर से आयेगा । ऊपर के रोज से संचालित होता रहेगा तो आदमी नहीं रहेगा । सोशलिज्म यांत्रिक सभ्यता का मंत्र है, जिसका जादू खत्म हो रहा है । मंत्र से काम नहीं चलने वाला, न यंत्र से । अर्थ और काम की क्षमताओं से हमें निर्भय

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 147

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 148

रहना सीखना होगा । सोशलिस्ट अपने भय से कैपटिलिज्म का भूत खड़ा करता है । मोरलिस्ट अमयांद व्यभिचार का सब डर छोड़ देने होंगे [1] जयवर्धन नामक उपन्यास से एक अंश दृष्टव्य है - साम्यवादी समाजवादी प्रयोग हो चुके । उनको जड़ से समग्र दर्शन कब था ? हमें चाहिये ऐसी अर्थरचना और समाज रचना जिसमें संभावनाएं किसी की न हो बल्कि जुड़ती जाएं ।[2]

जबकि जैनेन्द्र जी धनिक निर्धन के दो वर्ग नहीं मानते हैं । शासक और शासित एक है, अलग नहीं । ऐसे वर्ग - निग्रह की पद्धति वाला दर्शन अधूरा और ओछा दीखने लगता है ।[3] वे जानते हैं कि शोषक वही नहीं है जो धनिक है । हम भी तो धनिक की जगह होना चाहते हैं । राजनीतिक क्रान्ति स्थानान्तर कर सकती है, भावनान्तर तो गहरे दर्शन में से ही प्राप्त हो सकता है । अधिकतर दर्शन में से राजनीतिक परिणाम ही निष्पन्न होते हैं ।[4] त्यागपत्र मुक्ति से नव - सृजन की स्फूर्ति पैदा होती है बलात् व दबाव से नहीं । इसलिये उनकी दृष्टि में पूंजीवाद व समाजवाद संगठित हिंसा के ही फल हैं । वे नैतिक क्रान्ति को इनके सामने रखते हुये कहना चाहते हैं कि बल और अनुशासन हृदय से आये, ऊपर से नहीं ।

जैनेन्द्र जी के विचार आर्थिक वैषम्यता की दृष्टिकोण से त्यागपत्र नामक उपन्यास में मिलते हैं । विचित्र मुहल्ला था । वहां दिन शायद ही कभी होता हो । दिन में रात होती थी और रात में क्या होता होगा, पता नहीं । सटी - सटी कोठरियां थीं । वे कोठरियां ही दुकानें थीं और रात में वे ही ख्वाजमाह । किसी पर सस्ती - बिसाइत की चीजें हैं तो किसी पर बासी साग - भाजी और पक्के फल रक्खे हैं । कहीं नाई है, कहीं हाथ की

1- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 218

2- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ संख्या - 160-161

3- समाज - दर्शन : परिप्रेक्ष्य : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 16

4- समाज - दर्शन : परिप्रेक्ष्य : जैनेन्द्र : पृष्ठ संख्या - 16

मशीन लिये दर्जी बैठा अमरीक़न तर्ज के कपड़े सी रहा है । यहां आसमान भी एक गली बन गया जाता है और काल की गिनती रातों के हिसाब से होती है ।[1]

यहां पर भी पूंजीवाद का ही प्रभाव दिखाई पड़ता है - "मास्टरनी अच्छा पढ़ाती है ।

यहां कहीं स्कूल में भी पढ़ती होंगी ।

'हां पढ़ाती हैं । हम क्या देते हैं, वे ही आठ दस दे देते हैं । कोई आठ दस में भला क्या होता है । पर चलो गरीब है, सहारा ही सही ।[2]

जयवर्धन नामक उपन्यास में एक अंश द्रष्टव्य है - साम्यवादी समाजवादी प्रयोग हो चुके । उनको जड़ में समग्र दर्शन कब था । हमें चाहिये समाज रचना जिसमें संभावनाएं किसी की न घटे बल्कि जड़ती जाये ।[3]

समाजवाद से समाज का हित नहीं होता है, यह विचार जैनेन्द्र जी का है । "यूनिवर्सिटियों की ओर से एक छात्र मण्डल अमेरिका जायेगा । केवल एयरफोर छात्र को देना है, अतिथ्यि स्टेट यूनिवर्सिटीज का होगा । यात्रा एक महीने के भीतर पूरी हो जायेगी । मेरा नाम चुन लिया गया है । अनुमति कृपया तार से भेजें ।[4]

"कल्याणी" नामक उपन्यास में आर्थिक वैषम्यता की स्थिति दिखाई पड़ती है - "जिनके पास इलाज के लिये पैसा है, उनका सवाल नहीं है । पैसा जिनके पास नहीं है, सवाल उन्हीं का है ।[5] हाथों में सोने की चूड़ियां

1- जैनेन्द्र : त्यागपत्र : पृष्ठ संख्या -

2- जैनेन्द्र : त्यागपत्र : पृष्ठ संख्या -

3- जैनेन्द्र : जयवर्धन : पृष्ठ संख्या - 160-161

4- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 207

5- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 371

बढ़ गयी हैं और ईयरिंग बहुत कीमती फल के कानों में दीखते हैं । क्या यह यथार्थ नहीं है ।[1]

एक तरफ लोग अच्छे - अच्छे बंगलों में रहते हैं । उनके पास कीमती कीमती वस्तुएं हैं तथा टेलीफोन, कार आदि साधन उन्हें उपलब्ध हैं, अच्छे लिबास में रहना, अपना एक अलग समाज बनाना जिसे सुसभ्य तथा सुशिक्षित समाज से जाना जाता है । दूसरी तरफ दीन, निर्धन, असहाय लोग हैं । यह पूंजीवादी व्यवस्था का उपज है । पूंजीवाद शोषक है, गरीब शोषित । शोषक पैसों को हजम कर जाते हैं । एक तरफ लोग भेंट में कीमती उपहार भेंट कर देते हैं और दूसरी ओर लोग पैसे के अभाव में अपने मानव मूल्य को नहीं समझ पा रहे हैं । "अगले दिन हमारे यहां काफी उपहार लेकर एक आदमी आया ।[2] बात उनकी झूठ न थी । नक्शे में व्यौरे पूरे थे । पांच साल से ढाई लाख रूपया अलग बचा लेने की उनकी स्कीम थी । उसके गणित में त्रुटि न थी । एक लाख में यहां दिल्ली में खासी एक कोठी हो सकती है । बाकी में आगे गाड़ी चलती रहेगी । बात अच्छे इन्वेस्टमेन्ट की है । वह सब मालूम है ।[3]

"व्यतीत" नामक उपन्यास में आर्थिक वैषम्य का सटीक उदाहरण मिलता है - "मैने कहा, क्या कह रही हो, अनिता ? मेरी यही जगह है । सहारा देकर उठाओगी भी तो टिकाओगी कैसे । तुम लोग ऊँचे रहो और नीचों को अपनी किस्मत पर छोड़ दो । मिस्टर पुरी सही हैं । समाज में व्यवस्था तो रहनी चाहिये । मर्यादाए मिट जायेगीं तो तुम्ही सोचो, कैसे चलेगा । पैसे के ऊँच - नीच से यही लाभ है । देखो मैं पचहत्तर पाता हूँ, मालिक

1- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 57।

2- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 59

3- जैनेन्द्र : कल्याणी : पृष्ठ संख्या - 184

अपने ऊपर ढाई हजार खर्च करते हैं ।[1] भेद के लिये सहारा पैसे का न हो तो भेद रहे कैसे । नहीं अनिता, तुम्हें मेरे पास नहीं आना होगा । सुनती हो मिसेज पुरी के योग्य तुम्ही नहीं तो कौन होगा ?[2]

अनामस्वामी में एक उद्धरण अवलोकनीय है - "तुमको वह अशान्ति कैसे मिलेगी जो सार्थक हो और छुटकारा दे .... जब तक पैसा है । पैसे से मिलने वाली भी एक सुख - शान्ति हो तो है जो तुम्हारे पास है, मुझे दुर्लभ है ।[3]

"विवर्त" नामक उपन्यास में जितेन कहना है - वह दुनिया जहां पैसा पुजता है अब ज्यादा देर नहीं रह पाएगी ।[4] "अनन्तर" नामक उपन्यास में कहा गया है कि "पैसा समाज के शरीर का प्रवाही रक्त है ।[5] अर्थात् आज के अर्थ प्रधान युग में अर्थाभाव की स्थिति में मानव की कोई पूँछ नहीं है ।

"सुखदा" उपन्यास का कान्त यह मानता है कि "पैसे से ही समाज में श्रेणियां बनी हैं । हम ऊपर की श्रेणी की तरफ देखते हैं ।[6]

आधुनिकता :

सामंतवाद का विरोध करना, पूँजीवादी प्रभावों को विनष्ट कर सही किस्म के समाजवाद की स्थापना करना और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के प्रति विद्रोह करना हमारे यहां आधुनिकता की अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसके माध्यम

1- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ संख्या - 17

2- जैनेन्द्र : व्यतीत : पृष्ठ संख्या - 18

3- जैनेन्द्र : अनामस्वामी : पृष्ठ संख्या - 98

4- जैनेन्द्र : विवर्त : पृष्ठ संख्या - 20

5- जैनेन्द्र : अनन्तर : पृष्ठ संख्या - 101

6- जैनेन्द्र : सुखदा : पृष्ठ संख्या - 11

से सामाजिक एवम् आर्थिक क्रान्ति हो सकती है और नई सामाजिक व्यवस्था तथा व्यक्ति के आचरण की मर्यादा का विकास हो सकता है । आधुनिकता को सही सन्दर्भो में विकसित करने के लिये चिरंतन जागरूकता आवश्यक है । कन्धे पर ट्रांजिस्टर लटकाए पात्रों, हिप्पियों, भूखी पीढ़ी या बीट जनरेशन या नारी को पूरे समाज की पत्नी प्रेमिका या भोग्या बना देने से हमारे यहां किसी आधुनिकता को स्पष्ट नहीं किया जा सकता । भारत के परम्परागत समाज का आधुनिक समाज में संक्रमण हो रहा है । फलतः भारतीय चेतना का भी रूपान्तर हो रहा है, इसे गहराई से समझकर भारत की सही आधुनिकता का समझा जा सकता है ।

आज समाज की स्थिति ऐसी है कि अराजकता और हिंसा जैसे सबसे बड़े मूल्य बन गए हैं । भ्रष्टाचार, चारित्रिक संकट, विश्वासहीनता एवम् मूल्यों के विघटन ने मनुष्य को एक ऐसे बिन्दु पर ला खड़ा किया है, जहां वह अपने अर्थ को खोता हुआ पाता है । पाप की भावनाएं बढ़ गई हैं, पर उन्हें बहुत महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता । चार्ल्स फ्रैंकले ने एक स्थान पर लिखा है कि इन परिस्थितियों के प्रति मनुष्य ही उत्तरदायी है । वह आर्थिक विषमताओं से संघर्ष कर रहा है । क्योंकि वह उसकी अन्तिम नियति नहीं है । हमारी अनिच्छा के बावजूद हमें इन स्थितियों का भागीदार बना दिया जाता है ।[1] यही कारण है कि यूरोप में राष्ट्रीयता और देशभक्ति आधुनिकता के तत्व नहीं समझे जाते, जबकि हमारे यहां स्थिति दूसरी है । भारत अर्द्धविकसित राष्ट्र में लगभग नब्बे प्रतिशत जनता में आरम्भिक स्वरूप विकसित होना भी अभी शेष है ।

1- चार्ल्स फ्रेकेल : द केस फार मार्डन मैन ।

सन् 1953 में जैनेन्द्र के विवर्स और व्ययतीत उपन्यास प्रकाशित था विवर्स में जितेन, भवनमोहिनी और नरेश के माध्यम से मध्यवर्गीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं का प्रकाश डाला गया है । परिणाम स्वरूप क्रान्ति की ओर उन्मुख होता है । माहिनी बैरिस्टर नरेश से विवाह कर लेती है, किन्तु उसके मन में जितने के प्रति प्रेम बना रखता है ।जितेन ट्रेन गिराता है और माहिनी के के यहाँ आश्रय लेता है । वह मोहिनी के आभूषण चुरा लेता है और उसे कैदकर पचास हजार रूपया मागता है । अन्त में अपने दल का उत्तरदायित्व मोहिनी पर छोड़कर पुलिस के आगे आत्म समर्पण कर देता है । नरेश जितेन के साथ उदातारता पूर्वक व्यवहार करता है और उसका केस भी लड़ता है ।

मोहिनी के माध्यम से प्रेम और विवाह की आम समस्याओं का उठाया गया है । विवाह के बाद भी वह जितेन से कहती है "मै सब कुछ हूँ तुम्हारी और उसका यह समर्पण भाव जितेन की ग्रान्ड खोल देता है । नरेश उदार मन का पति है जिसके आगे "हर कृतकता ओछी है । जितेन 'प्रखुद अहम का व्यक्ति है जो साम्यवादी विचारों से प्रभावित है और क्रान्ति द्वारा समाज को सान्यवादी विचारों से प्रभावित है और क्रान्ति द्वारा समाज को जगाना चाहता है । वह कहता है कि "वह दुनिया जहाँ पैसा प्रवता है और सभ्यता का छल फैला हुआ है, अब ज्यादा देर नही रह पाएगी ।

"व्यतीत" नामक उपन्यास में भी जैनेन्द्र के अन्य उपन्यसों की तरह मध्यवर्गीय समाज की प्रेम, विवाह और अर्द्ध सम्बन्धी समस्याओं का निरूपण हुआ है । जयन्त अनीता से विवाह करने में असमर्थ होकर भी अनीता को भुल नही पाता । वह पिचहत्तर रूपये की साम्पादकी करता है । समाज में वर्ग भेद का आधार आर्थिक है । अनिता उच्च वर्गीय युवती है । जो मिस्टर पूरी से विवाह करके भी जयन्त की ग्रन्थि को देखकर कहती है - "मुझको समूची को जिस विधि चाहे ले सकते हो । मै पूरी तरह तुम्हारे सुभोते के लिए है ।' किन्तु अन्तर्मन में बनी अनीता के इस आत्म समर्पण से जयन्त गैरिक वस्त्र धारण कर लेता है । जयन्त जो नमिता

(सम्पादक की पुत्री) और चन्द्री(विवाहिता पत्नी) को अस्वीकार कर मरने के लिए युद्धभूति में जाकर अपनी साधारणता दिखाता है । वह अनीता के समर्पण से सहज हो जाता है । उसकी यह सहजता श्री पलावनवादी व्यक्ति की प्रतीक है । जयन्त प्रेम में ही शोषित नही आर्थिक दृष्टि से भी तत्रस्त है । वह वह कर्ता है आनन्द का विधान आर्थिक है । जीवन का विधान और समाधान आर्थिक है । पैसा चल रहा है । इसलिये जीवन चल रहा है । समाज में स्तर होते है और होने चाहिए । सुचारू आदमी की आमदनी के बराबर होती है या कहना चाहिए खर्च के बराबर सामज में व्यवस्था रहनी चाहिए मर्यादाए मिट जायेगी तो कैसे चलेगा "। व्यतीत उपन्यास भी प्रेम विदाह और आर्थिक समस्याओं से सम्बन्धित जैनेन्द्र के पर्ववती उपन्यासों से कही भिन्न नही है । इस तरह जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में आधुनिकता प्राप्त होती है ।

सप्तम अध्याय

जैनेन्द्र के कथा - साहित्य में भाषा का स्वरूप

दार्शनिक पुट होने की वजह से सामान्यतः भाषा में नीरसता पाई जाती है । परन्तु जैनेन्द्र जी की भाषा दार्शनिक होते हुए भी सरस है । उनकी भाषा में प्रवाह तथा लालित्य अधिक मात्रा में पाये जाते है । जैनेन्द्र जी के उपन्यास की भाषा में सूक्ष्य भाव के चित्रण को ही ऊँचा स्थान दिया है, सिर्फ अर्थ का वहन करना ही उन्होने गद्य का लक्ष्य स्वीकार नही किया । उनका कथन है - "कहानी - उपन्यास में भाषा सिर्फ अर्थ देकर सार्थक नही हो सकती । भाव को भी उसे युगगृत चित्रित और जाग्रत करते जाना होगा ।"[1]

जैनेन्द्र जी के मन के अनुसार भाषा का स्वंय अपने लिए कोई अस्तित्व नही है, भाषा तो सिर्फ भावाभिव्यवित के लिए होती है । क्योकि भाव को सूक्ष्म है, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति में भाषा को भी इतना साक्ष्य बनाना होगा कि वह अतीत सूक्ष्य तथा पकड़ में न आ सकने वाले भावों को भी चित्रित कर सकें। जैनेन्द्र जी ने इस सम्बन्ध में भाषा की कसौटी निर्धारित करते हुए कहा है - "आवश्यक है कि गद्य अपने उत्कर्ष मैस्थूल से सूक्ष्य के आकंलन की ओर बढ़े । कारण जीवन की यही गति है । आलम्बन तो सदा ही स्थूल होगा, अन्यथा हो ही नही सकता । किन्तु आकंलन उत्तरोत्तर सूक्ष्य का हो, इसी ने भाषा का विकास समाया है ।"[2]

जैनेन्द्र जी की भाषा ने स्थूल से सूक्ष्य की ओर विकास किया है । उदाहरण के लिए हरिप्रसन्न के मन पर सुनीता ने कमरे से बाहर जाते समय जो प्रभाव डाला, उसका वर्णन इस तरह किया है - "वह कमरे से बाहर तैर

---

1. : जैनेन्द्र : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ0 सं0 156

2. : जैनेन्द्र : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ0 सं0 157

गयी । उसं समय उसकी रेशमी साड़ी की धानी आभा ही खापती हुई झलमल-झलमल हरिप्रसन्न की आंखों में रह गई । और उसके कानों में साडी की तरह पतों को छूकर जाती हुई समीर की सरसराहट भरने लगी । मानो कुछ होले-होले बज रहा हो, कुछ भीना - भीना बैरेस रहा हो और भीतर से उसे भिजो रहा हो ।'[1]

जैनेन्द्र कुमार ने चिन्तन का उनके उपन्यासों की भाषा पर जो असर हुआ है उस पर विचार करते समय जो बात एकाएक ध्यान में आ जाती है, वह है भाषा की सरलता एंव उसकी भावाभिव्यक्ति उन्होने छोटे-छोटे वाक्यों तथा बोलवाल के अत्यन्त सरल शब्दों का प्रयोग करके भाषा में ऐसा प्रवाह ला दिया है कि उसने भाव रम्यता एंव सरलता सब जगह पाई जाती है । व्याकरण के बन्धन तथा अलंकारिता को उन्होने माना नही है । जैनेन्द्र जी का कहना है - "सफलता के लिए हर गद्य को वार्गमता से सरलता और बनावट से सहजता की ओर बढ़ना होता है ।" यही वजह है कि सरलता तथा सहजता उसकी भाषा में जमकर भरी है । उनके उपन्यासों में भाषा की भिव्यक्ति स्पष्ट रूप से हुई है । डॉ0 देवराज उपाध्याय के मतानुसार "छोटे छोटे वाक्यों में साधारण से साधारण शब्दो के द्वारा गूढ़ातिमूढ भावों को अभिव्यक्ति करने की शक्ति हिन्दी को जिन साहित्यकारों ने प्रदान की है, उनमें जैनेन्द्र का नाम सबसे ऊपर है ।"[2] डॉ0 रामरतन भटनागर ने कहा है - "भाषा पय्रोग के क्षेत्र में जैनेन्द्र नई लीक डालते हुए चलते है । उन्हें आर्विप्रयोगो से अधिक सहारा नही मिला है । व्याकर की कड़ियों को उन्होने जगह-जगह तोड़ा है । अप्रचलित और असामान्य प्रयोग भी बहुत है । उकनी भाषा अनगढ़ है । वह सीधे उनके मन को कागज पर उतारती है ।"[1]

---

1. : जैनेन्द्र : सुनीता : पृष्ठ : 67
2. : डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ स069

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की भाषा भी सन्दर्भ तथा परिस्थितियों के प्रतिकूल नही पाई जाती है । पाप-पुण्य, घृणा-प्रेम सत्य-असत्य इत्यादि शाश्वत वृत्तियों की व्याख्या करते समय दोनो लेखकों की भाषा में दार्शनिकता का पुट पाया जाता है एंव गम्भीर विचारों का अर्थ द्योतन कराने में उनके उपन्यासों की भाषा पर्याप्त समर्थ पाई जाती है । अधिकांश पात्र अपने आपको दार्शनिक रूप से व्यक्त करते है इसलिए भी भाषा पर दार्शनिक चिन्तन का गहरा रंग बढा हुआ है । पति द्वारा परिव्यक्त मृणाल अपने अनैतिक आचरण का समर्थन करती हुई कहती है - पति को मैने नही छोड़ा उन्होने ही मुझे छोड़ा है । मै स्त्री धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ उसका स्वतन्त्र धर्म में नही मानती । क्या पवित्रता को यह चाहिए कि पति उसे नही चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहें ।'[1]

कृष्ण के प्रति मीरा के आकर्षण का विवचेना करते हुए सुनीता भी ठेठ दार्शनिक भाषा का उपयोग करने लगती है । -"अलोकिक ही कुछ हो सकता है, जो लोकिक का बधिपत्य अस्वीकार कर दे, बुद्धि अतीत जो है, उसे चलने के बुद्धि के पैर और तर्क के स्टेट्स नही काम देदें । इससे में सहमत हूँ । कि लोकिक तो अलोपिक का बहिष्कार ही करें । पर अलोकिक इससे सतत् न हो जायेगा ।"[2]

जैनेन्द्र कुमार की सरत तथा सहज भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत -"अब अभी उधर से निकलता हूँ, मन उदास हो जाता है । कोशिश तो करता हूँ । कि फिर उधर जाऊँ ही क्यों लेकिन बेकार । सब बात यह है कि अगर में इस तरह एक -एक राह सुढ़ता चलूँ तो फिर खुली रखने के लिए दिशा किधर और कौन रख जायेगे । यो सब रूप जायेगा पर रूकना

---

1. :डा0 रामरतन भटनागर जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा पृ0 सं0 240

2. : जैनेन्द्र त्यागपत्र पं0 सं0 64 3: जैनेन्द्र सुनीता पृ0 सं0 78

नाम जिन्दगी का नही है । जिन्दगी नाम चलने का है ।"[1]

जटिल मनोभावों तथा गहन विचारों को प्रकट करने के लिए जैनेन्द्र जी ने कही-कही प्रतीकात्मक शैली को भी अपनाया है । जहाँ विचार जितने ही उनके हुए जान पडें है , वहाँ जैनेन्द्र जी ने किसी प्रत्येक के सहारे इन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया है । इस वजह से उनकी भाषा में कही - कही चित्रमयता का अनुभव होता है । सितार के तारों की झंकार में सुनीता के दृश्य की झंकार इस तरह दिया गया है "सितार के सुर मिलाकर उसने बजाना आरम्भ किया । जाने भीतर क्या रूका था जो सितारें के सूरों में बज उठा । इस सुर में प्रणय भी नही है, अभियोग भी नही है, मात्र एक निवेदन जैसे है । उसमें शिकायत नही है, वह नहीं जानती । वह तो बताये जाते है । उस संगीत के भीतर का प्राण उसकी आत्मा में से निकल कर सितार के तार के सुर के सहारे गूज रहा है । कि इस शून्य की गोद में खो जाये ।"[2]

प्रतीकात्मक भाषा के उपयोग के कारण जैनेन्द्र कुमार ने उपंयासों की भाषा में जहाँ औजस्थिता तथा सामर्थ्य उत्पन्न किया है, वहाँ उन्होने प्रायः अश्लील कही जाने वाली धटनाओं तथा महत्वपूर्ण प्रसंगो के वर्णन में जिस संयम का परिचय दिया है उसमें उनकी भाषा के सन्तुलन की प्रशंसा की जानी चाहिए । उदाहरणार्थ सुनीता के अनावरण प्रसंग को देखें । उन्होने सुनीता द्वारा अपने कपड़े उतारने का वर्णन अवश्य किया है किन्तु उसके अंग प्रत्यंगो की छटा दिखाने से उन्होने अपने आपको बचाया है । इसी संयम के कारण निरावरण प्रंसग का वर्णन करते समय भी उनकी भाषा में नग्नता नही आई । साथ ही हरिप्रसन्न भी

1 -:- जैनेन्द्र : -कल्याणी- पृ0 सं0 5

2. जैनेन्द्र : सुनीता पृ0 सं0 91-92

इतना साहस नही बटोर पाया कि सुनीता को नग्न देख सकें । जैनेन्द्र जी ने उसी प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा है - "और अपने हाथ छुड़ाकर अपने शरीर से चिपकी हुई बाडी को उसने पकड़ दिया वह अन्तिम वस्त्र भी घर होकर नीचे सरक गिरा ।

अरिप्रसन्न ने दोनो हाथों से अपनी आखें ढ़क ली । उसके मूँह से शब्द नही फूट सका । सर्वथा पराभूत वह अपनी पराज्य में गड़ जाने लगा । लज्जा ने उसे जना दिया । मानो काटो तो लडू नही । धरती फट क्यो न गई कि वह गड़ जाता ।"[1]

जैनेन्द्र जी ने संकतात्मक प्रणाली का सहारा लेकर बहुत सी अनकही बात कह डाली है । जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित "खुदा" नामक उपन्यास में मिस्टर लाल द्वारा सुखदा को अपने बाहुवाश में बधि लेने का वर्णन इस तरह व्यक्त किया गया है - "वह क्षण मुझे भूलता नही । जीवन और मृत्यु के बीच का वह क्षण । दोनो मानो एक होकर उस क्षण में पिधल आये थे । इस तरह बाघ के से अपने सख्त पंजों में मेरे बंध को कसें, मेरी आखों को वह ऐसे देख रहे थे जैसे कि नही कुछ पाते हो कि मै हूँ क्या हूँ । समय तब न था, और वह पल निकाल जितना अन्तिम था कि देखते देखते असहय हिंसा ने मुझे अपने में जकड़कर दबोच लिया ।'[2] ----------------------तदनन्तर सर्केतात्मक प्रणाली अपनाते हुए उन्होने चुम्बन प्रति चुम्बन के वर्णन चक्कर में न पढ़कर इस आलिंगन का अन्त किया है । - जब मुझे आगल किया और छिटका कर दूर फेंक दिया, मै नही जानती । मै सोफे में आ गिरी । वह कोच में ही बैठे, कहा "जाओं बच गई तुम ।'[3]

---

1 : जैनेन्द्र : सुनीता पृ0 सं0 237

2. जैनेन्द्र : सुखदा पृ0 सं0 173

3. जैनेन्द्र सुखदा : पृ0 सं0 173

शब्द योजना :

। : **शब्द शक्ति :**

वस्तु -गुम्फन तथा घटनाओं के विवरण में जैनेन्द्र जी सकेतात्मक शैली से काम लेते है । वह घटनाओं को यथाताथ्यिक क्रम से तथा समस्त्त विस्तृति में प्रस्तुत नही करते, अपितु कई बार उनकी तरफ इंगित मात्र करके रख जाते है । परन्तु उनकी यह व्यंजना शैली घटनागत ही है, सामान्य वर्णन की भाषा में उन्होने इस शक्ति का प्रयोग ज्यादा नही किया है । सामान्य भाषा में तो लक्षण शक्ति की ही अधिक छ्टा प्राप्त होती है । शब्दों की लक्षण शक्ति का प्रयोग जैनेन्द्र जी बड़ी सरलता के साथ सुबोध भाषा में करते है ।

उदाहरणार्थ :

"आखिर सब लोग बिखर गये और वे आजाद हो गया कि इस बडी दुनिया में जहाँ चाहे समाऊँ आजादी दूर से जाने क्या थी, पास आई तो बड़ी वीरान, चीज मालूम हुई ।'[1]

'लेकिन यह कहना होगा कि मेरे भीतर तरफ की तिल का आसन खोले कोई राक्षस बैठा था । आज जिन्दगी के इस किनारे आकर कहता हूँ । राक्षस के सिवा और कुछ न था । कपड़े पहन-पहनकर मै बाहर आया पर बाहर चांद ठिठूर आया था । सर्दी अपने ही मारे सिमटती लगती थी ।'[2]

पर जो हो, काज तो मन में ऐसा ही मालूम होता कि वह तब तमाशा था । तन्रव या सत्य उसमें न था । उससे जीवन पनपा नही, उजड़ता ही गया । नेह सरला नही, विहन विकारों की आंच में सूखता गया । इस भाति इतने काल चक्कर ही काटता रहा ।'[3]

---

1. जैनेन्द्र : व्यतीत पृ0 सं0 20.
2. जैनेन्द्र : व्यतीत पृ0 सं0 113
3. सुखदा पृ0 सं0 14

वास्तव में लक्षण शक्ति जैनेन्द्र जी की भाषा शैली का प्राण है । लक्षण के प्रयोग की वजह से ही उनकी भाषा में सजीवता तथा काव्यात्मक प्रवहमानता है । इसका अस्तित्व जैनेन्द्र जी की भाषा के हर पृष्ठ पर दिखाई पड़ता है । कथा साहित्य ही नही अपितु दार्शनिक विवारात्मक लेखों की भाषा भी इसी विशेषता से सुशोभित है ।

2 : गुण :

वैसे तो श्लेम, प्रसाद, समता इत्यादि भारतीय काव्य शास्त्रियों ने शैली के दस गुण गिनाये है परन्तु प्रसाद, माधुर्य, तथा खोज तीन ही गुण मुख्य माने गये है । तीनों गुणों की कसौटी पर जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की भाषा को परखा गया है ।

जहाँ प्रसिद्ध अर्थो की अभिव्यक्ति प्राप्त है, वहाँ प्रसाद गुण माना गया है ।[1] जैनेन्द्र जी के प्रसाद गुण सब जगह प्राप्त होता है । प्रस्तुत उपन्यासों में अर्थ की गुढ़ता या विलष्ठता सर्वथा अवर्ततान है । इसका सिर्फ एक वजह यह है कि जैनेन्द्र जी दुरूह शब्दों के व्यवहार से बचते है । उनकी शैली में शब्दाम्बर नही पाया जाता है । यदि कही भाव को समझाने में यात्विचित कठिनता आती भी है तो वह भाषा की दुर्वोधता की वजह से नही, प्रस्तुत विचारों को गम्भीरता तथा अलाक्षरणता के कारण ही ।

भावमय और रस-गर्भित शैली में माधुर्य गुण की अवस्थिति है ।[2] जैनेन्द्र जी की भाषा पर्याप्त भाव सकुल और रस-विरक्त है । उसमें चित्त को द्रवित करने की शक्ति प्रतिष्ठित है । उदाहरण के लिए एक अवच्छेद सुनीता का उद्घृत है :

---

1. प्रसिद्वार्थ पदत्व मत् सः प्रसादो निगयते - भोजराज ।
   'प्रसादवत, प्रसिद्वार्भम,....... दण्डी ।
2. चितद्रकी भावमम आहदः माधुर्ममुच्यते - विश्वनाथ ।
   मधुर रसवत् - दण्डी । मत् आनन्द मन्द मनो दृवति तन्माधुर्मम ।

"पति में क्या उसे प्राप्त नही है? पर उस मीरा को वह समझाना चाहती है जो पति में सब श्रेय पा लेने के कर्तव्य से छूट गई है । मीरा के लिए दो बूद आंसू डालकर (टालकर) वह पूछना चाहती है, अनी-प्रेममीय, तेने वह कौन-सा प्रेम पाया जिसने मुझे कठिनता दी कि पति के हृदय की पीड़ा को तू बिना पिघले सहले । अरी तू किस भयंकर प्रेम की दुनिया को दिए जा रही हो, जो अपने पति के जी को तोड़ता है और उसको टूटते देखकर भी वह प्रेम-प्रेम ही रहता है । ओ मीरा, तू अपने मन की व्यथा मुझे पाने दे । ने भी आज घोर पिया पाकर अपने ऊपर खेल लेना चाहती है, वह बिधा जो उसने आनन्द की तोल के ही बराबर है, नही तो शेष सबसे भारी है ।"[1]

परन्तु जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में माधुर्य गुण सब जगह बिछारा हुआ है, वह आदि से अन्त तक व्याप्त है ।

समासों की अतियता को खोज कहा गया है ।[2] गाढ़ निबंधन को भी औढ़ की सुष्टि का तत्व माना गया है ।[3] हिन्दी भाषा की अपनी प्रकृति ही ऐसी है कि उसमें समासों के लिए अधिक अवकाश नही है । संस्कृत-निष्ठता के अधिक्य से ही हिन्दी में 'समासो' की अवतारणा हो सकती है । किन्तु जैनेन्द्र जी अधिकाशतः संस्कृत शब्दो के आडम्बर से अपनी शैली को बचाये है । वाक्यों का गाढ़-बन्धत्व उपन्यासों के लिए अधिक वांछनीय नही होती । व्यास शैली ही कथा-साहित्य के लिए अधिक उपयुक्त रहती है । और चूकि व्यास शैली जैनेन्द्र जी की भाषा का एक प्रधान गुण है, वाक्यों में सश्लिष्टता को अधिक महत्व नही दिया गया है । वहाँ भी भाषा में सरलेषगात्मक शैली के दर्शन नही होते है ।

---

1. जैनेन्द्र : सुनीता पृ0 सं0 54।
2. ओज : समाज भूयस्त्वम् भोजराज ।
3. गाढ़बन्धत्व भोज : गमन ।

'सुनीता में निस्सन्देह संस्कृत प्रधान भाषा का प्रयोग यत्र तत्र प्राप्त होता है परन्तु समासों के लिये वहां भी कोई जगह नहीं है । साथ ही वाक्यों में संश्लिष्टता का आविर्भाव भी वहां नहीं हो पाया है ।

3. **वर्णन शैलियाँ :**

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में कभी कभी ऐसा होता है कि उनके पात्रों के मन की पृष्ठभूमि में कहीं कुछ दार्शनिक मान्यताए अन्तर्निहित होती है । उन्हीं का आधार लेकर वे जब कुछ सोचने या कहने लगते है तो पाठक को वह अकस्मात् समझ में नहीं आ पाता । यह रहस्यात्मकता जैनेन्द्र जी की शैली की एक विशेषता है । यथा सुखदा के विचार दार्शनयी जान पडते है जो कि स्पशट है 'बरामदे में पडी पडी इस अनन्त दूर तक बिछे चित्र को देखती रहती है । कहां अनन्त लेकिन अनन्त को क्या मैं जानती हूँ ? क्षितिज हमारा अन्त है । जहाँ मेरी आँखों की सामर्थ्य समाप्त है - यहाँ सब कुछ भी मेरे लिये समाप्त है । पर समाप्ति क्या वहाँ है ? अन्त वहा है ? वहा वह अन्त कहीं भी है ? नहीं है, और चित्र बनता जाता है चित्रपटी तो खुली ही रहती है और वे चित्रकार की लीला नये नये रूप में समक्ष होती है । उसके इस चलचित्र जगत में सभी कुछ के लिए स्थान है । सोचती हूं कि मेरा भी कोई स्थान होगा । काली बूँद को भी कोई जगह होगी । वह बूद अपने आपमें में तो काली ही है, चित्र भी विधाता न जाने इस निरन्तर बनते बिगडते फिर भी सदा वर्तमान, चित्र पर उस बूंद के कालेपन से क्या मतलब सीधा है । वह मतलब मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता होगा ---------- कुछ तो वह होगा, पर आज तो मैं उस कालेपन से बेहद अधिक त्रस्त हूँ ।'[1]

---

1. सुखदा , पृ0 10-11

जिस समय जैनेन्द्र जो पात्रों की मानसिक क्रिया प्रतिक्रियाओं का वर्णन करते है, तो उन्हें विचित्र विचित्र भावों के चित्रण का आश्रय लेना पडता है । यथा 'सुनीता पहले जैसे अज्ञात अथवा अतिशय पूर्वक ज्ञात हो लगी ।'[1]

लेकिन जैसे मोहिनी दूर थी, वह व्यक्ति दूर था, और बीच में ऐसा अनुल्लंछनीय शून्य था, जो सब कुछ उमडता हुआ छोड जाता था, और जिसमें से कुछ भी हाथ न आता था ।[2]

अद्‌भुत वर्णनातीत मनः स्थितियों को शब्दों मे बांधने का यह प्रयत्न आश्चर्यजनक है ।

जैनेन्द्र जी के अनेक पात्र चिन्तनशील है । वे जब तक अनेक विषयों पर गम्भीरता से सोचने लगते है । चित्न भावान्वित शैली के कुछ नमूने इस तरह दृष्टव्य है :

'पूछता हूँ मानव के जीवन की गति क्या अन्धी है ? वह अप्रतिरोध्य हे, पर अनै यह तो मैं नही मानूगा । मानव चलता चलता जाता है और बूंद बूंद दर्द इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है । वही सार है । वहीं जमा हुआ दर्द मानव की मान्समणि है । उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्जवल होगा । नहीं तो चारो ओर गहन वन है ि किसी और मार्ग सूझता नहीं है और मानव क्षुधा-तषा रोग-द्वेष मन-मोह में भटकता फिरता है । यहां जाता है वहां जाता हे । पर असल में वह कही भी नहीं जाता है एक जगह पर अपने ही जुएं में बंधा हुआ कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रहता है ।'[3]

---

1. जैनेन्द्र : सुनीता : पृ0 सं0 15
2. विवर्त : पृ0 सं0 89
3. त्यागपत्र : पृ0 सं0 38

दुनिया में कई दुनिया है और आदमी में कई आदमी । अपने में चेतना में पर्त पर पर्त है । इसलिये जो है वह निश्चित नहीं है, वह एक रूप में नही है । क्या है सो कहा नहीं जा सकता । जो है अनिर्वचनीय है । है तो एक, पर दीखता है, प्रतीत होता है इससे है भिन्न प्रतीत होने से ही जगत है । प्रतीति है माया इससे जगत माया है । माया नमता होने की शर्त है । यही होने काक आनन्द यही उसका हल । अपनी प्रतीतियों में सब परिवर्तन करते है । इससे सदा नए नए प्रपंच पडते है । शायद होना और होते रहना डलना ही है ।'[1]

जैनेन्द्र जी की भाषा में लक्षणा बहुतायत में पायी जाती है, अतः सौन्दर्य तथा काव्यात्मकता उनकी शैली में अधिकांश प्राप्त होते है । निम्न उद्धरणों में सुरूचि एवम् सौन्दर्यता पाई जाती है ।

सामने सिर्फ फैलावट न घर है, न दुकान है, न मुनष्य है न समाज हे अतः केवल रिक्त सामने हे जो दीखता है । इसे दृश्य बन उठा है । वहीं चित्र बन फैला है । बीच में बाधा नहीं, व्यवधान नहीं कुछ ही दूर पर धरती ढल गई है । और ढलती हुई जाने वहा अथाह में पहुंच ई है । पार मैदान में पिछा है मानो प्रतीका में हो । वहां वही भरी से मकानों की बिंदिया भी दीखती है कहीं हरियाली इकट्ठी हो गकयी है, कही रंग मट मैला है । दूर दो एक पतली सफेद लकीरें भी दीखती है । जो नदियों के निशान है । पर दूर होते है सब दृश्य मानो एक धुधंली रेखा में सिमट कर समाप्त हो जाता है । वहीं हमारा क्षितिज है । अथवा -

---

1. जैनेन्द्र : विवर्त : पृ0 सं0 106-107

'वह धागा (जीवन का धागा) किस प्रकार किन रेशों को गूंथकर बना है और वहां कौन बैठा हुआ है उस अनन्त सूत्र को इस विश्व चक्र पर ऐंठकर कातता चला जा रहा है । सच तो यह है कि इस जीवन के सम्बन्ध में हमारा समस्त मन्तव्य समुद्र के तट पर कोडियों से खेलने वाले बालकों के निर्णय की भांति होगा । फिर भी हमें बालकों का मस्तक मिल गया और हृदय भी मिल गया । वे दोनो निष्क्रिय तो रहते नहीं । इसी से जानने के लिये नहीं है, उसे जानने की चेष्टा चली है । इस अपनी कहानी में भी जाने अनजाने मेरा वही प्रयास हो तो क्या विस्मय ।'[1]

'कोई पूछे कि बिजली एकाएक कहां से चमक जाती है । चारो ओर अंधेरा है ऐसा कि मानो एक नकार के नीचे सब कुछ मिट गया हो । तभी कहीं से कौधं आती है । एक बिजली की रेखा जो सब कुछ को चीरती हुई एक साथ चमक उठती है और चमका उठती है । ऐसा ही कुछ विपिन के साथ हुआ । दो गहनताए तो अन्धकार मानो टकराकर एक सीधे प्रकाश को जन्म दे आए ।'[2]

अभिव्यक्तिगत यह सौन्दर्य जैनेन्द्र जी की भाषा शैली का सामान्य गुण है । कहीं कहीं तो ये अभिव्यक्तिया अपने अपूर्व चमत्कार के कारण अमूल्य रत्न बन गई है ।

4. **वाक्य रचना :**

छोटे छोटे वाक्य जैनेन्द्र जी की भाषा शैली की प्रमुख विशेषता है । यदि वाक्य लम्बे भी है तो वे अपने वाक्यांशों में खण्डित है उनमें संश्लिष्टता

---

1. जैनेन्द्र : सुखदा : पृ0 सं0 18
2. विवर्त : पृ0 सं0 128

नहीं है । वाक्य रचना की सरलता व स्वच्छता में जैनेन्द जी की शैली प्रेमचन्द्र की शैली से कम प्रवहमान नहीं है । विशिष्ट दृष्टि से उपन्यास में से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत है । जहां तक बने मोहिनी खुद ही काम करती है । नौकर को अपने और पति के बीच कम ही आने देती है । शुरू में यह पति को पसन्द नहीं आया, पर मोहिनी का यह स्वभाव था । पिता के घर में यही करती आई थी । अपनी माँ को उसने देखा नही था पर उस लीक में जैसे आदि दिन से वह भी यह करने लग गई थी । कर्तव्य था इस तरह नहीं । कर्तव्य तो याद रखता है, इससे भुला भी जा सकता है । नहीं कर्तव्य की बात कुछ नही सहज सिद्ध सी बात थी ।'[1]

---

1. जैनेन्द्र : विवर्त : पृ0 सं0 75

सूक्तियाँ :

सूत्र रूप में बहुत कुछ डालने की प्रवृत्ति जैनेन्द्र जी की भाषा शैली की प्रमुख विशेषता है । फलस्वरूप जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की पमुख अनेक वाक्य सूक्तियों के रूप में अभिव्यक्त हुए है । जैनेन्द्र साहित्य में सूक्ति विधान ' विषय पर राजस्थान विश्व विद्यालय में शोध कार्य ही किया है । जैनेन्द्र जी के उपन्यासो में भरत ही सूक्ति शैली को देखा जा सकता है :

1. जीवन दायित्व को खेल है पग पग पर समझौता है जो मन नही मार सकता, वह जिन्दगी में अभी कुछ नही कमा पाता है 'परख'
2. श्रद्धा के साथ मरना भी सार्थ है । - "त्यागपत्र" ।
3. पत्नीत्व की दासता कहते हो ? हा है वह दासता । लेकिन साधना भी वह है । -"कल्याणी"

4. **शब्द प्रयोग**

शब्द जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में भाषा के शब्द प्रयोग के विषय में एक तरह की असामान्यता महसूस होती हे । इस असामान्यता का अनुभव इसलिये होता है कि जैनेन्द्र जी ने चिर परिचित शंब्दों को नवीन सन्दर्भ मे प्रयुक्त करके उनक माध्यम से नवीन अर्थ व्यजना देने का प्रयास किया है ।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों एवम् अन्तः स्थितियों को लिपिबद्ध करने के आयाम में उन्होने कुछ शब्दों का रूप परिवर्तन भी कर दिया है ।

"बद्धपरिमाण एक ही ढंग से रखने से नई समस्यायें कहा से उठेगी ? नये तले और सदा नवीनता से हीन रहने के ढंग के लिये 'बद्ध परिमाण'

शब्द का प्रयोग किया गया है ।[1]

'अस्वीकरण और अंगीकरण , दोनो की क्षमता -------------।"
अस्वीकृत को लेखक ने पर्याप्त नहीं समझा ।"[1]

'वहां मनुष्यों की असंख्यता के अतिरिक्त और कुछ ------[2] अलग वाक्य में यह कहने के बकदल कि वहा असंख्य मनुष्य थे और उनके अतिरिक्त ------- लेखक ने असंख्य में 'ता' लगाकर भाव वाचक संज्ञा का निर्माण कर दिया हे जो हिन्दी में प्रचलित नहरे हे । राष्ट्रीयकर्ता के लिये राष्ट्र कर्मी चुप्पी के लिये वाक्बद्धता और प्रेम के अभाव के लिये 'प्रेम' जैनेन्द्र जी के ही प्रयोग है ।

मात्र फैक्ट के लिए 'निरी- निरी घटा का प्रयोग किया है । अर्थ स्पष्ट न रह जाये इसलिये लेखक ने स्वयं मात्र फैक्ट आगे दे दिया है ।[3]

'स्थिर के अपभ्रष्ट थिर' से थिरता' भी लेखक की उद्भावना है ।

अपने सम्बन्ध में उन्हें समाधान हीं था ।[4] यहा कुछ कुछ संतुष्टि के अर्थ में 'समाधान' शब्द का प्रयोग है ।

'पर बीता व्यतीत हुआ ।'[5] अतीत के लिए 'व्यतीत' शब्द प्रयुक्त

---

1 जैनेन्द्र : सुनीता : पृ० स० 8

2. जैनेन्द : सुनीता : पृ० सं० 12

3. जैनेन्द्र :सुनीता : पृ० स० 156

4. जैनेन्द्र : कल्याणी : पृ० सं० 12

5. जैनेन्द्र : कल्याणी : पृ० 2

है । अतिरिक्त उपसर्ग का व्यवहार जैनेन्द्र जी की भाषा की विशिष्टता है । व्यतिव्यस्ति ऐसा ही एक उदाहरण है ।

जिन्दी के उपसर्ग ' ' का प्रयोग भी जैनेन्द्र जी की भाषा में अधिक मिलता है । 'अनमिल, अनदिखनी , अनबूझै अनकहनी, अनबोली ऐसे साधारण व्यवहार है ।

यो एक शहर में होकर भी परस्पर दुर्लभता थी ।[1] आपस में मिलने के अवसरा के न्यूनता के लिये 'दुर्लभता' का प्रयोग नया है ।

'मिसेज असरानी के प्रति उसकी स्पृश्यता मुझे समझ न आई ।[2]म जिज्ञासा के भंव के लिये प्रश्न से सप्रश्नता कासृजन जैनेन्द्र जी की अपना प्रयोग है ।

न कुछ आयु में मेने बहुत कुछ पाया है ।[3] इन नाट मंच एज के लिये 'न कुछ आयु' कितने उपयुक्त शब्द है ।

लेकिन मैं देख सकी कि प्रसन्नता नियन की है ।[4] इस प्रकरण में नियम का अथ्र उपचार से लिया गया हे । 'नियम' की इस अर्थच्छाया की देन जैनेन्द्र जी की मौलिक सूझ है ।

"यह जो जन साधारण है जिसकी गिनती नही हे जो एक सा है और इकट्ठा है रोढ वह है ।[5] एक साव और इकृटा जैसे साधरण शब्द लेखन की समर्थ भाषा में कितने सूक्ष्म भावों को प्रकट करने में सूक्ष्म है ।

---

1. जैनेन्द्र : कल्याणी : पृ0 सं0 5
2. जैनेन्द : कल्याणी : पृ0 स0 85
3. जैनेन्द्र सुखदा : पृ0 सं0 13
4. जैनेन्द्र : सुखदा : पृ0 स0 55
5. जैनेन्द्र : सुखदा : पृ0 सं0 101

अब तक वह व्यवधान, कृत संकल्प खंडे हो आये थे ।[1] शायद का भाव दे रहा है । 'सावधान' शब्द ।

'वह भरकर मुझे देखते तो --------।' सुखदा पृ0 ।10

'अन्त में मै अपने आपको उपहास्य लग का आई । सुखदा पृ0 ।10

गौर से देखने के लिये 'टककभर' उन्होने से अनछुआ - अश्लील के लिये उथेडी ओर प्रेमी स्वभाव के व्यक्ति के लिये प्रेम शब्द है । साधारण रंचमात्र के स्थान पर सिर्फ 'रंच' और उपहासवाद क स्थान पर उपहास्य से काम बना लिया गया है ।

'मचलती चाहे जितना भी पर बात ऊपर उनकी ही रखती ओर ऐसे अपने में धन्यवाद प्राप्त करती ।[1] कृतार्थ होने के अर्थ में धन्यवाद प्रापत करने का प्रयोग हुआ है ।

परस्पर से परस्परताओरसाम्यवाद की व्याख्या करते हये उसके लिये 'तनवाद' शब्द का निर्माण लेख का अपना है ।

लेकिन काश कि तुम्हारे मन में प्रेम हो सकता जो न रखने देता ।[3]

भेदभाव न रखता अब इस भाव को प्रकट करने के लिये आवश्यकता नहीं है ।[4] 'बेकार के अर्थ में' प्रयुक्त न करके, यहाँ व्यर्थ शब्द अपने मौलिक भाव

---

1 जैनेन्द्र : सुखदा : पृ0 सं0 ।।

2 जैनेन्द्र : सुखदा पृ0 सं0 ।16

3. जैनेन्दे : विवर्त : पृ0 सं0 ।5

4. जैनेन्द्र : विवर्त : प्र0 सं0 ।00

अर्थहीन में प्रयुक्त किया गया है ।

उसने अपने को छोड दिया है जैसे जो अभाग्य ही हो।[1] किन्तु दुर्भाग्य के लिये 'अभाग्य' को प्रयोग किया गया है ।

में अत्यान्तिक अवधान की आवश्यकता थी ।[1]

यहँ सावधान का विलुप्त कर दिया है । -------- यहीं अनुभव करू मैं कि व्यतीत में हैं । दिन के लिये समय के लिये 'व्यतीत' का हिन्दी में है किन्तु एक व्यक्ति के लिये इसका प्रयोगक लाक्षर्णिक होने के कारण शब्द को एक नई अर्थ दे रहा है ।

'वह रूतबा गिनती वालों के लिये है अनगिनत के लिये नहीं है ।' यह क्रमशः विशिष्ट व्यक्तियों और जन साधारण से तात्पर्य है ।

'मालिक को और उनकी पसन्द की संक्षिप्त भाव से किनारे करके वह बोली ।'[5]

'पर मेरी बात का अन्त होते होते उसका मुंह टूट आया । जैसे चेहने पर उसका बस न रहा । वह अजब तरह से तड मुड आया ।[6]

। यह कोने में और अपने में रहना चाहता था, साधारण और असाधारण ।'[7]

---

1. जैनेन्द्र : विवर्त : पृ0 सं0 163
2. जैनेन्द्र : विवर्त: पृ0 सं0 164
3. व्यतीत : पृ0 सं0 1
4. व्यतीत पृ0 सं0 7
5. व्यतीत : पृ0 सं0 10
6. जैनेन्द्र : व्यतीत : पृ0 31
7. जैनेन्द : व्यतीत : पृ0 139

'कपिला को कभी शान्त और समाज नहीं देखा ।[1]

परन्तु शब्द योजना में यह वैचित्र्य जैनेन्द्र की तरफ से सचेष्ट नहीं है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में शब्द योजना के अन्तर्गत पाये जाने वाले शब्द शक्ति, गुण वर्णन शैलियां वाक्य प्रयोग, सूक्तियाँ शब्द प्रयोग को ध्यान में रखते हुए यह मानना पडेगा कि इनकी शब्द योजना उच्चकोटि की है ।

अन्य भाषाओं के शब्द :

जैनेन्द्र जी अंग्रेजी , ऊर्दू, बंगला इत्यादि हिन्दोतर भाषाओं के शब्दों वाक्यांशों, व वाक्यों का प्रयोग नि्:संकोच किये है । प्रधानतः इनका प्रयोग संवादों में हुआ है । तथा उसका उद्देश्य स्वाभाविक वातावरण की सृष्टि तथा पात्रों को जीवन्त बनाने का रहा है । जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोगक जमकर किया है । स्कीम, पोस्टर, म्यूजियम, सोसायटकी , कम सिप शर्ट शेकहेंड, प्रीमियर जर्नलिस्ट, ट्यूटर म्यूजिक, सिस्टम पेपर, कवर माईल पोस्ट ड्रइव, यूरोपियन मेटर एडिट मैकप, प्लेन, ट्रेन वैजिन आदि शब्द इसी तरह के है जो आपत्तिजनक है तथा विशेषकर जैनेन्द्र जी के साहित्य में क्योंकि जैनेन्द्र जी मन की सूक्ष्म गतियों को हिन्दी में अभिव्यक्त करने में बहुत कुछ सफल है । ये अंग्रेजी के शब्द आवश्यक नही है । इसलिये इनका बहिष्कार उपेक्षित नहीं है ।

नाराज, इज्जत, ख्याल इत्यादि उर्दू (अरबी, फारसी) के वे शब्द जो हिन्दी में काफी प्रचलित है । हिन्दी के बारे में किसी संकुचित

---

1. जैनेन्द : कल्याणी : पृ0 150

दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति को ही अवांछित हो सकता है । सही रूप में हिन्दी के चतुर्मुखी विकास तथा उत्कर्ष के लिये ऐसे शब्द अनावश्यक नहीं पाये जाते है । परन्तु तोहमत, ऐशगाह, इफरात जेर, सरवश मामूल, सदर, मुकाम तफतोश ताकीदत्त्बीह, खातूतन अजिज , मुअत्तल तसदीक आदि ठेठ ऊर्दू के शब्द लेखक के हिन्दोतर भाषा ज्ञान तथा भाषा - प्रियता का परिचय दो देते है । पर सामान्य हिन्दी पाठक के लिये शब्दकोष की आवश्यकता पड जाती है ।

कथाकार जैनेन्द्र के उपन्यासों में भाषा के समग्र रूपों का अध्ययन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि उनके कथा साहित्य में भाषा का स्वरूप अपनी विशिट कोटि में उभरकर सामने आया है ।

शिल्प विधान

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में शिल्प रूपों के प्रयोग की दृष्टि से प्रौढता भो जरूर प्राप्त होती है । किन्तु खुद उनकी अपनी ही रचनाओं में उनका भलीभांति विकास नहीं हो पाया है । उनमें घटनों की संघटनात्मकता पर बहुत कम जोर दिया गया है । मनोविश्लेषणतात्मक दृष्टिकोण से जैनेन्द्र अपने पात्रों की सामान्य गति में ही सूक्ष्म संकेतो की निहित का अन्वेषण करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते है । इसी वजह से उनकी चारित्रिक विशेषताएं संयुक्त होकर उतरती है । चरित्रों की प्रति क्रियात्मक संभावनाओं के निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शन का आश्रय लेकर विकास को प्राप्त होते है । जैनेन्द्र जी के अधिकांश सभी उपन्यासों में दार्शनिक तथा आध्यात्मिक तत्वों का समावेश अधिकता से हुआ है । किन्तु ये सम्पूर्ण तत्व जहां भी समावेशित हुये हे । वहां वे पात्रों के अन्तर की विवृति करते प्रतीत हजोते है । यही वजह है कि जैनेन्द्र के पात्र बाह्य वातावरण तथा परिस्थितियों से अप्रभावित लगते है और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित उनकी प्रतिक्रियायें और व्यवहार भी प्राय: इन्हीं गतियों के अनुरूप होता है । इसी वजह उनके उपन्यासों में चरित्रों की भरमार नहीं परिलक्षित

होती तथा पात्रों की अल्प संख्यता के कारण भी उनके उपन्यासों में वैयक्तिक तत्वों की प्रमुखता रही है।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में कथानक में क्रान्तिकारिता और आतंकवादिता के तत्व भी महत्वपूर्ण आधार रहे है । उनके सभी उपन्यासों के प्रमुख पुरूष पात्र सशस्त्र क्रान्ति में निष्ठा रखते है । बाह्य स्वभाव, रूचि और व्यवहार में एक तरह की कोमलता तथा भीरूता की भावना लेकर भी ये अपने अन्तर में विध्वंसक वृत्ति के लिये होते है । उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्व नारी की प्रेम विषयक क अस्वीकृतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित होता है । इसी कारण जब वह किसी नारी का थोडा भी आश्रय सहानुभूति या प्रेम पाता है । तब टूटकर गिर पडता है और बाह्य यप से भी कोमल बन जाता है ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में कथा का विकास त्रिकोणात्मक सूत्र के आधार पर होता है । एक प्रधान पात्र और एक प्रधान पात्रों को लेकर मुय कथा सूत्र का विकासशील होना जैनेन्द के किसी उपन्यास में नही मिलता । उनके उपन्यासों में प्राय: प्रधान पात्र और प्रधान पात्री के अतिरिक्त एक तीसरा पात्र और भी होता है । जिसका कथा के विकास में उतना ही महत्वपूर्ण योगदान रहता है । यही वजह है कि उनमें कथानक का खिचाव तीन और से रहता हे और इस त्रिकोण के मूल सूत्रों के पारस्परिक संघर्ष से उसे विकासकी दिशायें मिलती है । इस तरह से जैनेन्द्र के उपन्यासों के कथानक के शिल्प रूपों से सम्बन्ध रखने वाली विशेषताओं को साधारणत: दो दृष्टियों से देखा जाता है । एक तो उनके उपन्यासों की सामान्य शिल्पगत विशेषताए और दूसरे असामान्य विशेषताए । ऊपर जिस त्रिकोणात्मक संघर्ष के फलस्वरूप होने वाले कथा विकास की चर्चा की गई है, वह उनके उपन्यासों की एक सामान्य शिल्पगत विशेषता है जो उनके अधिकांश उपन्यासों में समान रूप से विद्यमान है ।

उपन्यासिक रचना प्रक्रिया :

लेखक की रचना के मूल में जो उद्देश्य होता हे उसे वह विभिन्न कोणों से उपस्थित करने का प्रयास करता हे । उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र ने इस मत को स्पष्ट करते हुये कहा है कि विास्तव में कोई रचना रचयिता के मनोभावों का उसके चरित्र का उसके जीवनदर्श का उसके दर्शन का आइना होती है । जिसके हृदय में देश की लगन हे उसके चरित्र घटनावली और परिस्थितियों सभी उसी रंग में रंगी हुयी नजर आयेगी ।[1] शरतचन्द्र ने भी उपन्यास लेखन में मुंशी प्रेम चन्द्र की तरह अनुभव किया है और कहा है -"सबसे रचना वही है जिसे पढने से लगे कि ग्रंथकार अपने अन्तर में से सब कुछ को बाहर फूल की भांति खिला रहा है । देखा नही मेरी सारी पुस्तकों के नायक नायिकाओं को लोग समझते है । कि शायद यही ग्रन्थकार का अपना जीवन हे, अपनी बात हे ।[2] जैनेन्द्र जी लेखक की कृति को उसके विचारों की द्योतक मानते हे । उपन्यास के पात्र हमारी संकीर्णताओं से सीमित नहीं है । वे हमारी ही अपनी अव्यक्त भावनाओं के प्रतीक है वे हमारी आत्मा के प्रतीक हे हमारे मताग्रहों के नही ।[3]

इस तरह रचना प्रक्रिया एवं भाव विचारों की अभिव्यक्ति लेखक से अभिन्न होती हे उपन्यासकार अपने दृष्टिकोण को अपनी रचना में अनेक रूपों से प्रकट करता है ।

उपन्यासकार एवम दार्शनिक दोनो अपनी अपनी भिन्न प्रणालियों के द्वारा जीवन का चिन्तन करते है । महान उपन्यासकार जीवन का चिन्तन

---

1. प्रेमचन्द्र : कुछ विचार (निबन्ध संग्रह) भाग 1, पृ0 सं0 102
2. शरतचन्द्र : भारत पत्रावली पृ0 सं0 65
3. जैनेन्द्र कुमार : साहित्य काक श्रेय और प्रेय : पृ0 सं0 328-29

करते समय दार्शनिक हो जाते है, इसीलिये अलबर्ट काम्यू ने लिखा है - 'महान उपन्यासकार दार्शनिक उपन्यासकार होते है । जो तर्क वितर्क के स्थान पर बिम्बों का प्रयोग करते है । राल्फ फाक्स का मत भी लगभग इसी तरह का है । उसकी धारणा है कि उपन्यासकार को महान बना देने वाली विशेषता उसकी कृति में निहित चिन्तन की समृद्धता है । यद्यपि ऐसे दार्शनिकों की कमी नहीं जो उपन्यास लिखने में असफल हुये है । फिर भी ऐसा कोई उपन्यासकार महान उपन्यास लिखने में सफल नहीं हुआ जिसमें जीवन के प्रति दार्शनिक वृत्ति न हो ।

प्रत्येक युग की धार्मिक सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियां परिवर्तित होती रहती है । परिस्थिति वैभिन्यता के कारण जीवन के प्रति दृष्टिकोण हर एक युग में परिवर्तित होता रहता है । उपन्यास और जीवन की अनेक परिस्थितियों का चित्रण करके युग के अनुरूप अपना मापदण्ड स्थिर करता है एवं अपने अमूल्य दृष्टिकोण को पाठक के साने प्रस्तुत करता है । जैनेन्द्र जी ने अपने युग की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये सम सामयिक समस्याओं का जो उल्लेख अपने उपन्यासों में किया है वह अत्यन्त ही सराहनीय है ।

महान उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार जी ने जीवन धर्म, प्रेम, विवाह, नारी समाज , सतीत्व एवम् पतिव्रत , मानवतावादी इतयादि से सम्बद्ध विचारों को अपने उपन्यासों में प्रकट किया है ।

जैनेन्द्र जीवन को अबुझ मानते है । जीवन अनर्दिष्ट गति को उन्होने समुद्र यात्रा के रूप में बाधा है और किनारे पर रखने में ही सुरक्षा समझी जाती है । जैनेन्द्र जी ने मानव के जीवन की व्याख्या इस तरह की है "ओ उधर हम न बढे । भाव नहीं है । जब अगम है । सुनने बोलने को वहाँ कौन है ? जो है अपने पराये सब आस पास तक है । वहां तो सन्नाटा ही

ही सनसनाता है । ना उधर न बढेंगे । किनारे पर ही रहे जहा पैर धरती से छू जाते है वहां तक रहें जहां हमारा लंगर धरती कोपकड ले और हम ठहर सके । बस बस उसके आगे जब तब समन्दरके अगाध फैलाव की हे और हम देख लिया करें यही क्या कम हे । इतना भी बहुत है । इससे भी भीतर कम्प भर जाता है । चित्र सहज जाता है । सिर चकरा जाता है । झेला नहीं जाता । जितनी झेल सके उतनी ही उस विराट की झांकी ले लें और फिर अपनी धरती के पास पास किनारे किनारे सबसे उलझते सुलझते जिये चले । यही उपाय हे । यही मानव जीवन है ।'[1]

इस मानव जीवन की सच्चाई क्या है और क्यों मानव जीवित रहे ? इसका उत्तर जैनेन्द्र जी के शब्दों में है मानव जीवन की गति क्या आधी है । वह अप्रितिरोध्य हे पर अन्धी हे यह तो मैं नहीं मानूंगा । मानव चलता चलता जाता है । और बूंद बूद इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता हे । वही सार है । वही जमा हुआ दर्द मानव की मानव मणि है । उसके प्रकाश में मानव गति पथ उज्जवल होगा ।[2]

जैनेन्द्र सुख दुख के विसर्जन में विश्वास करते है । कल्याणी कहती है । 'सुख की चाहना यहा नहीं हो सकती । सभी को सुख नहीं मिल सकता । विशिष्ट वे हे जो अपने सुखों का विसर्जन करेंगें कि औरो को सुख मिले ।[3] यही नही जैनेन्द्र अपने दुख को बाटने से ही साहित्य का सृजन सम्भव मानते हे । मैं अपने दुख को बाट चलू इसी में लिखना आता है ।[4]

जैनेन्द्र ने एक तरफ सत्यता को धर्म का आधार माना हे तो दूसरी ओर मनुष्य के प्रेम एवम सेवा के भाव को भी इसका अनिवार्य अंग माना है । कल्याणी

---

1. जैनेन्द्र : त्यागपत्र पृ0 सं0 88
2. जैनेन्द : त्याग पत्र पृ0 सं0 45
3. जैनेन्द्र : कल्याणी : पृ0 स0 71
4. जैनेन्द्र : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ0 स0 402

की नायिका कल्याणी की धार्मिक मनोवृत्ति का उल्लेख करते कल्याणी नामक उपन्यास में मिलता है ।[1]

जैनेन्द्र जी की धारणा है कि 'भाषा भिन्न हो सकती है धर्म एक और अखण्ड है । जैने वैष्णव, शैव , बौद्ध मुस्लिम आदि विशेषणों से उसमें अन्तर नहीं आ सकता है ।[2]

जैनेन्द्र जी की नारी के प्रति महान श्रद्धा रही है । जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में जगह जगह पर उसको त्यागमयी तथा प्रेममयी माना ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के संवादों में हास्य का पुट भी मिलता है । उदाहरण के लिय :

परख के प्रसंग में -

बिहारी ने गरिमा को पुकारा

-गिरी - गिरी

मैं छि : छिड - भैया - छि:

गरिमा रसोई में भीवहा मिर्चो के आग में पड जाने का वह परिणाम हुआ कि गरिमा बार बार छींक रही थी ।

यह क्या मामला है ?

'वह कम्बखत - आक छि: डम, छि: ------

यह छि: और सुशब्दों की बौछार मेरे आते ही '

यह डैम रैस्कल ----- आ-वाक् --------- छि ।[3]

इस तरह जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के संवाद भावुकता से परिपूर्णम चुस्त एवं संयत है ।

---

1. जैनेन्द्र : कल्याणी : पृ सं0 69
2. जैनेन्द्र : हतस्ततः पृ0 सं0 200
3. जैनेन्द्र परख पृ० सं० 40

जैनेन्द्र ने अपने उपनयासों में परिपाटी के अनुसार ही संवादां का उचित मात्रा में प्रयोग किया है । उनकी इन रचनाओं में वर्णन, विवरण चिन्तन विश्लेषण और संवादों का सुन्दर सामंजस्य है ।

ये संवाद निरूद्देश्य नहीं है इनमें कथा को अग्रसर करने की यथेस्ट शक्ति है । केवल रोचकता ही लाने की दृष्टि से जैनेन्द्र ने इनका प्रयोग नही किया है । इनमें कथा के विकास में एक कडी बने की सार्थकता है । इनमें हमें कुछ न कुछ ऐसी बातों का पूर्वाभास मिलता है जो आगे महत्वपूर्ण है । उनके संवादों की भाषा गम्भीर ओर ओजपूर्ण है । उनमें स्वभाविकता और संजीवता अपने आप ही कम हो जाती है । सुनीता सुखदा तथा विवर्त में जब क्रान्तिकारी पात्र उत्तेजित होकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते है, तो उनमें रोचकता अधिक नही रहीं है । फिर भी जैनेन्द्र ने पात्रों की बौद्धिकता को उनके कथोपकथनों की पर हावी नहीं होने दिया है । इसलिये जहां कहीं भी इसको संवाद में अवकाश मिला है । वह नियम नहीं है । अपवाद ही है ।

संवाद उपन्यास कला का एक मुख्य अंग है और जैनेन्द्र ने इस क्षेत्र में भी वस्तुकौशल की भांति ही सिद्ध हस्तता का परिचय दिया है ।

नाटकीयता :

उपन्यासकार जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के चरित्र चित्रण की शैली में नाटकीयता प्राप्त होती है । जेनेन्द्र जी नाटकीय या अभिनयात्मक शैली के माध्यम से अपने अपने पात्रों का विकास किया है । जैनेन्द्र के उपन्यास 'सुखदा' में सुखदा तथा उसके पति काल के निम्न वार्तालाप में नाटकीयता प्राप्त होती है ।

'सुनते है आप ? में आपकी और इस घर की गुलाम नही हूँ । बाहर बहुत काम पडा है और आप मुझे बन्द रखना चाहते है । नहीं यह नहीं होगा ।"

अब कुर्सी घुमाकर वह मेरी ओर हुए और बोले बाहर क्रान्ति करोगी ।

अब तक मै खडी थी । सोचती थी अभी तो खाने की कुर्सी पास खीचं उसमें बैठते हुए कहा जी । बेहद शात और संयत स्वर में पति बोले - क्राति की जरूरत है , मै जानता हूँ उसे बाहर कीजियेगा, घर में भी क्यों न कीजियेगा ।

एक साथ मै बहक उठी 'आपको डर लगता है इससे क्या उसे छोड देना होगा ? तीखे पर थमे स्वर में पति ने कहा ' तो आज दीक्षा मिली की नहीं मैं घूमकर बोली 'क्या ? बोले 'क्राति की दीक्षा ।

मुझे होश हवास न रहा अपनी जगह से खडी हो आई । मेरे मुंह से निकला ओह, कैसे पशु के पाले पडी हूँ । और कहती हुई वहा से एकदम चल दी ।"

जैनेन्द्र के संवादों में नाटकीयता का गुण प्रचुरता से प्राप्त होता है । सुखदा और कांत के संवाद में नाटकीयता दृष्टव्य है :

'कान्त सुखदा से कहा रहा है 'सुखदा आओ, यहां बैठो ।

'कहिए मैं हू तो ।"

'नहीं इधर आओ "

मैने कहा 'आप खाने कहते हे न ? लाइए मगाइए खा लेती हूँ "

तो इधर आकर बैठो ।

'देखती हँ आप नही चाहते । अच्छी बात है नहीं जाती ।"

नाटकीयता की उत्पत्ति के लिए आकस्मिकता, सजीवता और भावत्मक स्वभाविकता की आवश्यता होती हे । निम्नलिखित कथोपकथन नाटकीयता के दृष्टि से उद्धत किये जाते है :

---

1. जैनेन्द्र : सुखदा : पु0 सं0 42
2. जैनेन्द्र : सुखदा : पु0 सं0 120-121

सुखदा एक लडके से पूछ रही है :

बरतन मांजना जानते हो ?

'हाँ'

'कहार हो ?

'नहीं'

फिर ?

'कहार हूँ '

'क्या लोगे ?

'जो आप दे देगे ।

यह नाटकीयता घटना - संयोजनगत और कथोपकथन गत दोनों ही प्रकार से जैनेन्द्र के उपन्यासों में वर्तमान है । वस्तु - गुम्फन में इस नाटकीयता का आर्विभाव रोचकता और औत्सुक्य की वृद्धि के हेतु कार्य - व्यापारों के निमित्तों को रहस्य के आवरण में प्रछन्न करने के लिए हुआ है । जबकि कथोपकथन में एक मात्र रोचकता की दृष्टि से ।

परिस्थिति का प्रभाव

उपन्यास में परिस्थितियों का अपना एक अलग ही महत्व है । किसी उपन्यास में क्षेत्रीय परिदृश्य मात्र ' रूचि ' से संरक्षण के लिए नहीं किया जाता अपितु यह उपन्यास को सांस्कृतिक गरिमा से परिपूर्ण करता है ।

जैनेन्द्र जी ने दर्शन तथा मनोविज्ञान की मदद से मनुष्य के बाह्य जीवन की व्याख्या की अपेक्षा उसके अन्तजर्गत की कुण्ठा द्वन्द्व एवम् उलझन के विश्लेषण किए है । वे व्यक्ति के द्वारा समाज के जीवन की समस्याओं तक पहुंचे है । ' वस्तुत जैनेन्द्र शहर की गली और कोठरी की सभ्यता के एवम् आभ्यान्तरिक जीवन की गृन्थियों और गहराइयों के लेखक है ।[1]

---

1. रघुनाथ शरण झालानी , जैनेन्द्र और अनेक उपन्यास, पृ0सं0 168

जैनेन्द्र के उपन्यासों की समस्या मूलतः नारी की व्यक्ति मूलतक चेतना की समस्या है क्योंकि इन नारियों में पत्नीत्व कम ' प्रेयसीत्व मुख्य है । यही वजह है कि इन उपन्यासों में नारी की समस्या सबसे पहले नारी होना है । ----- नारी कुआरी है और किसी पुरूष के प्रेम करती है । प्रेम की परिणति क्या होगी इस पर विचार नहीं करती है । लेकिन भावी घटनाएं उसे कभी प्रेयसी बना कर ही छोड़ देती है तो कहीं पत्नी इसलिए वह नारी - विवाह और प्रेम के द्वन्द्व के बीच उलझ जाती है ।[1] और यही जैनेन्द्र के उपन्यासों की परिधि है ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों की अधिकतम घटपनायें दिल्ली में घटती है इसकी वजह है कि स्वयं जैनेन्द्र दिल्ली के स्थाई निवासी है । औपचारिक रूप से देखने पर यह ज्ञात होता है कि त्यागपत्र एवं व्यतीत को छोड़ कर अन्य प्रत्येक उपन्यास की पृष्ठ भूमि में दिल्ली तो अनिवार्य रूप से ही है । ' जयवर्द्धन ' में काल संघटना के अनुसार ही स्थल संघटना वैविध्यपूर्ण है । कोई भी घटना किसी स्थान विशेष पर घटित होती है । उसकी शुरूआत 50 साल आगे की बम्बई एवं भारत की स्तुति से प्रारम्भ होता है, जो आज बम्बई से अभिन्न है । परख में कश्मीर और एक गांव तथा व्यतीत में कश्मीर, शिमला, बम्बई, आसाम आदि भी अन्य स्थान है जहां कई घटनाएं घटती रहती है । ' अनन्तर ' उपन्यास की घटनाओं का केन्द्र बिन्दु आबू (राजस्थान है । त्यागपत्र में घटनाओं का केन्द्र संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के कुछ जिले हैं जिनके नाम नहीं दिये गये हैं । अन्त में यही कहा जा सकता है कि इस तरह नाम गिनाने के अलावा उपन्यासों के ' देश के विषय में ज्यादा कुछ नहीं कहा गया क्योंकि इनमें स्थानीय रंग नाम मात्र को ही प्राप्त होता है अधिकांश घटनाएं अपने अपने जगहों के अलावा अन्य जगहों पर भी घटती है । जैनेन्द्र जी का कहना है कि ' उपन्यासकार के लिए परिवेश में बन्धे रहना आवश्यक नहीं है । परिवेश के उपन्यासकार को मुक्त रहना चाहिए । मैंने अपने उपन्यासों में इसे महत्व नहीं दिया है ।

---

1. डा0 राम दरश मिश्र : जयवर्द्धन की पहचान, पृष्ठ 56

आलोचना उपन्यासों के देश परिस्थिति की विचार अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इनका सम्बन्ध बाह्य जगत की स्थूलता से होता है और ' परख ' सुनीता आदि उपन्यासों में मनोमन्थन अन्तद्वन्द्व आदि मानसिक व्यापारों का लेखक ही प्रधान है क्योंकि मन का संस्कार इनका उद्देश्य है तथापि चूंकि मानव सामाजिक प्राणी है, अतः इन उपन्यासों में भी सामाजिकता तो है ही, राजनीतिक संस्पर्श भी है क्योंकि उससे लेखक की उद्देश्य पूर्ति में सहायता प्राप्त होती है । परन्तु इनका महत्व कितना गौण है, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि ' कल्याणी ' के एक प्रमुख पात्र वकील साहब का नाम बताने का कथाकार ने कष्ट नहीं किया है मजे की बात यह है कि कल्याणी का सारा इतिहास हमें इन्हीं वकील साहब के माध्यम से प्राप्त होता है ।

सुनीता कल्याणी और सुखदा की कथाएं भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के उन दिनों के सम्बन्ध रखती है जबकि आतंकवादी क्रान्ति का जोर शुरू हो गया था । 'सुनीता' में हरिप्रसन्न और सुखदा में हरीश लाल सुखदा आदि क्रान्तिकारी पात्रों की अवतारणा है । कल्याणी में भी पाल नामक क्रान्तिकारी का उल्लेख मिलता है । इसके अतिरिक्त कल्याणी में सन् 1937 से स्थापित कांग्रेस मन्त्रिमण्डल की ओर भी है । व्यतीत में स्वाधीनता - प्राप्ति के पूर्ववर्ती युग का उपन्यास है इसका नायक जयन्त द्वितीय महायुद्ध में भाग लेता है । तथा बहादुरी प्रदर्शित कर बहादुरी का तमगा प्राप्त करता है ।

यदि परख और त्यागपत्र के प्रकाशन काल का पाठक को पता न चले तो ये उपन्यास आज भी परिस्थितियों के लिए भी सम्पूर्णतः उपयुक्त बैठते हैं ।

परम्परागत विषय में वैभिन्य

जैनेन्द्र जी ने औपचापरिक शिल्प के सन्दर्भ में मौष्लक प्रतिभा को प्रदर्शित किया है । ' प्रतिभा परम्परा को अस्वीकार कर देती है । जैनेन्द्र प्रतिभा के रूप में हिन्दी उपन्यास जगत में आये और उन्होंने परम्परागत मान्यताओं को नकार दिया।[1] जिस समय उपन्यास साहित्य मे प्रेमचन्द्र का वर्चस्व था, जैनेन्द्र जी ने

---

1. डा० ओम प्रकाश शर्मा : जैनेन्द्र के उपन्यासों काप शिल्प, पृ०सं० 158

हिन्दी उपन्यासों में जहां नये शिल्प प्रयोग की दिशा का महत्व है, वहीं शिल्प के परम्परागत मूल्यों के अमान्य की परिणति में मूल्य की स्थिति उनके उपन्यासों के कथानक पात्र वातावरण चित्रण भाषा शैली इत्यादि में साफ - साफ परिलक्षित होती है । इस दिशा में उनका सबसे बड़ा क्रान्तिकारी कदम था कथानक का ह्रास । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार होने की वजह से उनके उपन्यासों में कथा का कोई महत्व नहीं है । जैनेन्द्र के सभी उपन्यासों का परिवेश बाह्य परिस्थितियों की अपेक्षा आंतरिक चेतनाजन्य परिस्थितियों से ही उद्‌भूत होता है । अतः वहां कथावस्तु कथा अथवा घटना का महत्व कम हो गया है ।[2] डा0 देव राज उपाध्याय के शब्दों में ' जैनेन्द्र के उपन्यासों का प्रारम्भ वहां से होता है जहां कथा कथा के रूप में समाप्त होती है ।[3] कथा वस्तु में ह्रास के साथ ही जैनेन्द्र के उपन्यासों में कथानक की भी पाई जाती है जिससे कथावस्तु का परम्परागत सुसंगठित रूप समाप्त हो गया है । जैनेन्द्र जी के ही शब्दों में मैंने जगह - जगह कहानी के तार की कड़ियां तोड़ दी है । वहां पाठक को कूदना पड़ता है और मैं समझता हूं कि पाठक के लिए यह थोड़ा आयास वांछनीय है अच्छा ही लगता है ।[4]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में कथावस्तु के ह्रास के साथ ही पात्रों की अल्पता दिखाई पड़ती है । बाहरी परिवेश की जगह पर यह अनिवार्य है क्योंकि पात्रों की अधिकता से मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कलात्मकता का निर्वाह दुरूह हो जाता है । अतः औपन्यासिक पात्रों की संख्या तीन चार से ज्यादा नहीं है और इन्हीं अल्प पात्रों से वे अपने औपन्यासिक उद्‌देश्य की पूर्ति कर लेते हैं । पात्रों

---

1. डा0 ओम प्रकाश शर्मा : जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प, पृ0सं0 158
2. डा0 विजय कुलश्रेष्ठ : मुक्तिबोध उपन्यास की विवेचना, पृष्ठ संख्या 22
3. डा0 देव राज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 22
4. जैनेन्द्र कुमार : परख : पृष्ठ संख्या 5

की इस अल्पता की स्वीकृति में वे कहते हैं - " तीन - चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है । इस विश्व में छोटे से छोटे खण्ड को लेकर हम अपना चित्र बना पश्सकते हैं ।[1]

जैनेन्द्र जी की औपन्यासिक रचनाओं में पात्रों और उनके चरित्र को प्रमुखता प्राप्त हुई है । और चरित्र निरूपण मे भी नारी ही केन्द्र में रहती है अन्य पुरूष पात्र उसी के चरित्र है किसी पहलू को उजागर करने का माध्यम बनाते हैं । उनके पात्रों का संघर्ष अधिकांशतः समाज से अथवा सामाजिक समस्याओं से नहीं, अपितु निज से है । यह अन्तः संघर्ष ज्यादातर स्त्रियों में तीव्र रूप से प्राप्त होता है । वे हृदय की दो विरोधी वृत्तियों के द्वन्द्व से टूट जाती है । उनका वेतनमान उन्हें सतीत्व की तरफ और अवचेतन मन प्रेमियों की तरफ ले जाता है ।

भाषा तथा शैली के सन्दर्भ में भी जैनेन्द्र ने भाषा शैली के परम्परागत रूप को अमान्य कर दिया है । जैनेन्द्र जी ने शिल्प के प्राचरेन परम्परा का परित्याग कर अपनी वस्तु उद्देश्य और संवेदना के अनुरूप जितनी निजी भाषा शैली की खोज़ की है । थोड़ा कहकर भी बहुत कह जाते हैं । कल्याणी के समान वे चार में तीन हिस्से बात अनकही रखते हैं और समझते हैं कि समझने को काफी हो गया है । इस व्यंजना शक्ति को आलोचकों ने बड़ी शक्तिशाली तथा आकर्षण से पूर्ण माना है ।[2]

जैनेन्द्र बहुत सी बातें संकेत से ही कह देते है । जैनेन्द्र जी गोदान नामक उपन्यास में प्रेम चद्र की कला के विवेचना में पुन्नी की लम्बी चौड़ी गलियों की आलोचना करते हुए कहते हैं ' मैं होता तो संकेत से काम होता, पुन्नी हाय - हाय करती जाती और कोसती जाती थी, इसके बाद बिना कुछ कहे रह जाता ।[2]

---

1. जैनेन्द्र कुमार : सुनीता : प्रस्तावना : पृ0सं0 7
2. डा0 राम रतन भटनागर, जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा, पुष्ठ 173
3. जैनेन्द्र कुमार : साहित्य का और प्रेय : पुष्ठसंख्या 214

कहने का तात्पर्य यह है कि जैनेन्द्र जी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को परम्परागत मूल्यों का परित्याग कर नवीन मूल्यों के सृजन की दिशा प्रदान की और उपन्यास साहित्य में नवीन मानववादी चेतना को विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया है । अतः इनके उपन्यासों में परम्परागत शिल्प से वैभिन्यता पाई जाती है ।

अष्टम अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य के परिप्रेक्ष्य में जैनेन्द्र का आंकलन

प्रेमचन्द्रीय परम्परा और जैनेन्द्र

प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र आधुनिक हिन्दी उपन्यास के दो ध्रुव है । दोनों में दो ध्रुवों जैसी वैभिन्यता है , किन्तु उन जैसा ठोसपन तथा केन्द्रीयता भी है । दोनों की प्रक्रिया साहित्यिक प्रक्रिया और उनके साहित्य की तुलना अवांछनीय नहीं होगी । प्रेम चन्द्र ही जैनेन्द्र को सामने तथा अपने आशीर्वाद देकर अपना उत्तराधिकार सौंपा गया तथा हिन्दी ने उसे स्वीकार किया । स्पष्टतः प्रेमचन्द्र जैनेन्द्र में कुछ देखते थि।

जैनेन्द्र जी ने प्रेम चन्द्र पर पर्याप्त लिखा है तथा ' प्रेमचन्द्र का गोदान यदि मैं लिखता में उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य को भी उभारता ।

प्रेमचन्द्र कृति लेखक है । उनकी कृतियां बड़ी विस्तृत है । कई उपन्यास पांच सौ पृष्ठों से ज्यादा गए है तथा लोक जीवन को उन्होंने बड़ी व्यापकता से परखा है । किन्तु अपने भीतर वह कम डूबे है । अपने को उन्होंने कम खोजा है, सम्भवतः खोजने को कुछ अधिक था ही नही । वह स्वस्थ तथा सन्तुलित अर्न्तजीवन से सम्पन्न थे । इसके विपरीत जैनेन्द्र उपन्यास क्षेत्र में डरते डरते आये । उन्होंने 200 - 250 पुष्ठों से बड़ा उपन्यास नहीं दिया । उनके उपन्यास भी पुरानी परिभाषाप के उपन्यास कम है, वे लम्बी कहानियांप या आज के लघु उपन्यास की काेटि की चीजें है । बाह्‌य जीवन से इनका परिचय ज्यादा नहीं है । उन्होंने या तो अपने को खोला है या छिपाया हैय या अपने कथा साहित्य में अपने कापेप पाने का पप्रयास किया है । वह भावना और कल्पना का सहारा लेते हैं तथा लोक - गान की कमी को इनसे पूरा करते हैं । फलतः उनकी साहित्यिक प्रक्रिया भिन्न है । उपन्यास उनमें प्रेमचन्द्र से भिन्न एक नये ही रूप को ग्रहण करता है ।

धारणा की क्षमता तथा कल्पना की सूझ बूझ प्रेमचन्द में ज्यादा है । वह कहानी के सूत्र दूर तक विस्तृत कर देते है, उनके तिलस्मी कलम के बल से कई स्त्री पुरूष जागृत हो जाते है । किन्तु उनमें तीव्रता उतनी नही है । विस्तार ज्यादा हो गया है । गहनता गहराई कम तथा फैलाव ज्यादा है जैनेन्द्र अपनी कमजोरियों को पहचानते है । बाहरी दुनिया को उतनी व्यापकता से जान लेना उनके लिए दुःसाध्य है । परिणाम स्वरूप उन्होने अपने लिये पिंडदर्शन बना लिया है । जो पिड में है वही ब्रम्हाण्ड में है । इसी से सम्पपूर्ण व्यक्तियों को पढना ठीक नहीं न पढा ही जा सकता है । कुछ पर से ही सबको परखा जा सकता है । परणाम स्वरूप जैनेन्द्र के उपन्यासों में न पात्र बाहुल्य है, न घटना विस्तार । कुछ इने गिने पात्र है । इनके पात्रों की घटनाएं मन में घटती है । इस तरह उनके कथा साहित्य को कोटि प्रेमचन्द से अलग हो जाती है, पूरी नवीन कोटि । इस बात को जैनेन्द्र जी ने स्वयं माना है '(पात्रों की (संया की अधिकता अवगहन में सहायक नहीं भी होती, गहनता विस्तार में छिप जाती है, और दृश्य रूप अदृश्य गुण से प्रधान हो जाता है । उससे समाज का और समय का चित्र तो मिलता है पर आत्मा की उतनी गहरी अनुभूति कदाचित प्राप्त नहीं होती । मुझे ठीक नहीं मालूम कि साहित्य का क्या लक्ष्य है वह हमें वस्तु बोध देने के लिये है, कि आत्म प्रकाश देने के लिए । साहित्य का जो भी इस्ट और उदिष्ट हैं, स्वीकार करना चाहिए कि मेरे अपनी रूचि विविध जानकारियों के प्रति उतनी नहीं है । न परिणय केविस्तार के प्रति । परिचय अधि से न हो किन्तु अभिन्नता कुछ से भी हो तो मुझे यह बड़ा लाभ जान पडता है । गहरा जीवन मित्र एक हो तो उसकी कीमत से सौ जान पहचान वालों से मेरे लिये ज्यादा हो जाती है । निश्चय प्रेमचन्द हमें बहुत देते है, उतनी तरह तरह की जानकारिया देते है कि हम समा नहीं सकते है । लेकिन एक दूसरी तरह की उपलब्धि भी है । बौद्धिक से अधिक उसे आत्मिकक कहा जा सकता है । व्यथा की सघनता के रूप में मिलती है ।'[1]

---

1. प्रेमचन्द्र का योगदान : यदि मैं लिखता, जैनेन्द्र पृ0 सं0 232-233

इस तरह जैनेन्द्र अपने व्यक्तित्व तथा अपनी रचनाओं को कल्पनां तथा अनुभूति के सूक्ष्म स्वर्ण तारों के द्वारा जापेडा चाहता है । कहना उन्हें यह है कि उनकी रचानायें बौद्धिक नहीं है उनमें आत्मानुभूति का तत्व है कल्पना है संकल्प है । एक शब्द में उनमें उनका अन्तर्जीवन ही व्यक्तित्व प्रतीकों और प्रतीक घटनाओं के द्वारा उद्घाटित है । प्रेमचन्द के साहित्य में उनका मानवीय व्यक्तित्व ही उभरता है जो उनके द्वारा चित्रित वहिर्जीवन और संयामित, नियमित मृदुल और आदर्शनिष्ठ बनाता है । उसमें उनके भीतर की गुत्थियां नहीं दिखाई पडती । सच हो यह है कि प्रेमचन्द के निश्छल व्यक्तित्व में भीतर की ग्रन्थियां है ही कहा । जैनेन्द्र जिसे अन्तर्जीवन कहते है वह उनकी भावुकता आत्मकुठा और आत्महजीनता नहीं है ।वह अन्दर की ग्रन्थियों को ही तो निरपेक्ष भाव से सामने नहीं ला रहे है । इस वक्तव्य से कुछ इस तरह की शंका होती है कि

जब वह इस समस्या को लेकर दर्शन की पहेलियां ही बुझाने लगते है तो एक तरह से धैर्य छूट जाता है । अपनी रचना का आत्मस्थ तथा अनन्य संबंधित बतलाते हुये भी जब वह कहते है 'लेकिन कृति कलां में बन्द तो नहीं । वह कर्ता में अन्तर्भूत होकर स्वतंत्र भी कुछ है । इससे कृति का श्रेय कर्ता को है यह मुझे नहीं लगता । सच तो यह है कि सोचने पर कोई वृतित्व ही मुझे अपने में प्रतीत नहीं होता । लोग कहने वाले मिलते है कि वह कृति परिस्थिति में है । जैसे परिस्थिति अपने में भी कुछ चीज होती हो । किन्तु अपनी कृति का कर्ता मैं अपने को मानू तो यह भी मानना पड जायेगा कि मेरे मरने के साथ उन्हें भी नही जीना है । यह मानना घर अहंकाकर होगा यानी मेरी कृति मेरी ही नहीं है । जगत् और जगदाधर का उसमें हाथ है । तो कदाचित कहना यह है कि वह (जैनेन्द्र) अपनी कृतियों से बडे है उन्हें रचकर उनसे निर्लिप्त है कि उनके साथ रचना का निरपेक्ष सम्बन्ध है और वह उनके बाद रहेगी तो उनके आश्रय नहीं, किसी ईश्वर से आश्रय यहाँ भी जैनेन्द्र का ईश्वर आता है और हमें मौन कर देते है

प्रेमचन्द किसी ईश्वर के नाते, या उसकी प्रेरणा से रचना नहीं करने बैठते । वह भीतर की सद्भावा से प्रताडित होकर बाहर देखते है । और यहां उत्पीडन और विषमता पाकर भाव विभोर ही लेखनी उठाते है । चित्रित करते है वह बाहर का जगत् परन्तु अब यह वर्हिजगत उनके अंतर में घुल मिलकर उनका 'अपना' ही गया है । ईश्वर की उन्हें कोई जरूरत नहीं पड़ती । बात यह है कि जैनेन्द्र ने अपने निबन्धों में अपनी रचनाओं और प्रेरणा स्त्रोतों को बुद्धिगम्य बनाना चाहा है और बुद्धि की सूक्ष्मता ईश्वर पर समाप्त होती है । वैसे उनकी रचनाओं के बौद्धिक विन्यास के पीछे उनका भावुक (भाव प्रवेग) अर्तिजीवी, व्यक्तिनिष्ठ अहं ही विराज मान है । यहीं अहं उनके कर्ता और उनकी वृत्ति के बीच का सूत्र है । इसे ही भ्रम से जैनेन्द्र ने "ईश्वर" कहा होगा । नहीं तो यह ईश्वर उपन्यास कला का मूलाधार कैसे होगा । परन्तु यह स्पष्ट है कि मूल के इस 'ईश्वर' के सम्बन्ध में प्रेमचन्द्र और जैनेन्द्र दो ध्रुवों पर खडे है ।

2. **प्रगतिवादी परमपरा और जैनेन्द्र**

सन् 1936 ही एक ऐसा वर्ष है जिसे प्रगतिवाद के प्रारम्भ की तिथि स्वीकार कर सकते है । आचार्य नन्द दुलारे बाजपेई आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा0 नगेन्द्र नामवर सिंह आदि साहित्यक विचारकों ने इस तिथि को स्वीकार किया है । सन् 1935 में लन्दन में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी जिसने साहित्य के माध्यम से समाजवादी विचारों के प्रचार को साहित्यकार का लक्ष्य घोषित किया ।

प्रगतिवादी शब्द का मूल रूप से तीन शब्दों से मिलकर बना है 'प्र + गति + वाद । गति से आशय प्रगति से है, वाद विचारधारा का प्रतीक स्वरूप है, प्र - प्रगति के विशेष अर्थ के लिये प्रयुक्त हुआ है । साधारण रूप में प्रगति का अर्थ English में Progress का रूपान्तर मानते

है । जिसका अर्थ आगे बढना या उन्नति करना होता है । परन्तु आज साहित्य में प्रगतिवाद शब्द से आशय साहित्य या काव्य की ऐसी विचारधारा, जिसमें जीवन का प्रगतिशील दृष्टिकोण समाहित है, लिखा है ।

मार्क्स प्रगतिवादी परमपरा के अन्तर्गत यशपाल (दादा कामरेड - देशद्रोही पार्टी कामरेड मनुष्य के रूप (नागार्जुन (रतिना की चाची, बलचनमा, नई पौध (रांगेव राघव (प्रोफेसर आखिरी आवाज(अमृतराय (बीज, नागमनी का देश, हाथी के दांत आदि ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में प्रगतिवादी दृष्टिकोण मिलते है उनके उपन्यास अनामलवामी में एक उदाहरण दृष्टव्य है ' उत्थान पिटी लोग पर चलते देखना गवारा नहीं करता । कभी अध्यात्म की महिमा रहीं होगी जब आदमी कम था और अर्थ की समस्याएं विकट नहीं थी । अब वह अध्यात्मक या धर्म परोपजीवी व्यसन है । और श्रम से परांगुमुखता सिखाता है । आराधना उपासना में लोग कृतार्थता ढूंढने लगते है, जनता के सुख दुख के रहन सहन के सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्धों के प्रति स्वेच्छा पूर्वक अनजान बन जाते है । व्यसन यह भंयकर है और तरूणों को तैयार करना है कि वे स्थापित अर्थ की , धर्म की इन अडचों और विषमताओं में ढाने के लिए तैयार हो जाये ।'[1]

प्रगतिवादी परम्परा से व्यक्तिवादी प्रतिष्ठा के प्रयास से स्त्री का भी पूर्ण योग है । पुरूष की भाँति स्त्री में भी समाज के परम्परागत ढाँचे के प्रति विद्रोह की भावना विद्यमान है । प्रगतिवाद परपम्रा के उपन्यासों में नारी का व्यक्तित्व रूप उभरता हुआ दृष्टिगोचर होने लगता है । परम्परागत समाज व्यवस्था के प्रति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनो रूपों में नारी विद्रोह को अभिव्यक्ति मिली है ।

---

1 जैनेन्द्र - अनामरवामी पृ0 156

नारी के प्रति परम्परागत रूढ मूल्यों का विवेचन किया जाये तो दृष्टिगोचर होगा किक 'जर जोरू, -जमीन और नही और की ।'[1] समाज में पुरूष देवता है और स्त्री दासी है - पुरूष राजा है और स्त्री बन्दी पुरूष हीरा है और स्त्री धूल ।'[2]

नारी ने समाज के परम्परागत रूढ मूल्यों के प्रति व्यक्ति प्रतिष्ठा हेतु संघर्ष किया । 'सुखदा' की सुखदा प्रत्यक्ष रूप से अपने स्वतंत्र अस्तित्व और उत्तरदायित्व की घोषणा करती है । स्त्री के भी हृदय होता है और वह भी कुछ दायित्व रखती है । उसके बुद्धि भी होती है और वह निर्णय भी कर सकती है ।'[3]

प्रगतिवाद उपन्यासों में परम्परागत संयुक्त परिवार का मूल्य गौण प्रतीत होने लगा । परम्परागत सन्दर्भ में पिता के जीवित रहते लडके अपना पृथक परिवार नहीं बनाते है, किन्तु बदलती परिस्थितियों में वह धारणा टूटने लगी । 'मनुष्य के रूप' में लाला ज्वाला प्रसाद सरोला का अपना परिवार बहुओं के झगडों से विघटन की ओर बढ रहा है । स्त्रियों के मन मुटाव से भाइयों के हृदय भी पट गये । पिता के सिर पर रहते ही बंटवारे की बाते होने लगी और इस प्रसंग को लेकर झगडें होते ।'[4] 'बीज' में युवा पीढी का प्रतीक सत्यवान सोचता है -"दुनिया खामख्वाह संयुक्त परिवार की लाश को ढो रही है । संयुक्त परिवार मर गया । इन हालतों में सुखदा परिवार जब नही सकता ।[5] -"अनन्तर" का युवा प्रकाश परिवार के विषय में अपना मत अभिव्यक्त करता है -" हिन्दुस्तार में कनुखां एक

---

1. मनुष्य के रूप : यशपाल पृ0 सं0 61
2. बीज - अमृतराय पृ0 सं0 269
3. सुखदा जैनेन्द्र पृ0 सं0 25
4. मनुष्य के रूप : यशपाल, पृ0 सं0 61
5. बीज - अमृतराय पृ0 सं0 219

कोल्हू होता है । लडका उसमें जूदे और चकराता रहे ।'[1] प्रकाश इस कोल्हू में जूतने के लिये तैयार नहीं हे । क्योंकि वह स्वच्छंद जीवन व्यतीत करना चाहता है ।

सम्पूर्ण समाज में संघर्ष व्याप्त है । शोषण और शोषित दोनो पारस्परिक विरोध के लिये प्रतयक्ष या परोक्ष रूप से कटिबद्ध हो चुके है । आर्थिक असुन्तलन जनित पीडा के कारण मध्यवर्ग में विद्रोह या क्रान्ति की भावना अपेक्षाकृत अधिक रही है ।

'मनुष्य के रूप में यूनियन की महत्ता ड्राइवर कुन्दन सिंह द्वारा प्रतिपादित की गई है । 'यूनियन' की शक्ति है विश्वास प्रकट करता हुआ यह कहता है सौ आदमी इकटठे हो जावें -------- तो पहाड को धकेल दें । कम्पनी साली तो हमारी कमाई खातीज है ।'[2]

जमींदार वर्ग छोटी छोटी बातों को लेकर किस प्रकार मजदूरों पर भीषण अत्याचार करता था, इसका चित्र बलबनम में स्वयं बलबनमा प्रस्तुत करता है । उसके पिता ने आम का एक फल मालिक के बगीचे से तोड लिया जिसके परिणाम में 'मालिक के दरवाजेपर मेरे बाप को खंभेली के सहारे कसकर बांध दिया गया है । जॉघ पीठ और बाल सभी पर बॉस की हरी केली के निशान उभर आये है । चोट से कहीं कहीं खाल उधड गई है और आखों से बहते आसुंओं के टंगार गाल और छाती पर से सुख्ते नीचे चले गये है ------- चेहरा काला पडा गया है । होठ सूख रहे है ।[3] वह पाशविक व्यवहार की कहानी है ।

मध्यम श्रेणी की दयनीय स्थिति का चित्रण 'सुखदा' मे लाल ने

---

1. अनन्तर जैनेन्द्र पं0 सं0 165-66
2. मनुष्य के रूप - यशपाल - पृ0सं0 46
3. बलबनमा - नागार्जुन पृ0 सं0 3

किया है -"तुम लोगों की आय सीमित है और खर्च को आय के अन्दर रखना तुम्हारे वर्ग में धर्म माना जाता है । वह दकक ढकोसला है । बच्चे को दूध न मिले शिक्षा नहीं मिले खुद पूरी खुराक न लीजिये और कोशिश हो कि सन्तोष रक्खे । वह इतना बडा झूठा विचार समाज में चला दिया है कि जो हमारी मध्यम श्रेणी को भीतर से खाये जा रहा है । ऊपर से इज्जत रखनी पडती है भीतर से सन्तोष रखना पडता है । इस द्वन्द से जिन्दगी पढी जा रही है ।[1]

दायरे का मध्यम वर्गीय कटली मध्यवर्ग से निम्न वर्ग को अधिक खुशी मानता है । क्योंकि 'उनके यहा पढाई लिखाई पर पैसा बरबाद कहां होता है । न साफ कपडों की ही तबालत होती है । उनके तो बच्चे भी लायक होते ही कमाने लगते है । औरतें अपने बच्चों को भी पालती है, खाना भी बना लेती है और हमारे यहां भी काम करती है । अपनी औरतें है, अपने घर का ही खाना नही बा सकती अने बच्चों को पैदा करने में भी मुश्किल होती है ।[2]

आर्थिक असन्तुलन विभिन्न विषमताओं को जन्म देता हे और विषमता जीवन को अस्त व्यस्त बनाती है ।

मनोविज्ञानिक उपन्यासकार और जैनेन्द्र :

प्रेमचन्द्र तथा जयशंकर प्रसाप ने जहां तक एक तरफ प्रगतिवादी तथा नये दृष्टिकोण से मनुष्य के जीवन की व्याया करते हुए सामाजिक उपन्यासों की परम्परा चलाई वही दूसरी तरफ बुद्धिवाद का अवलम्ब लेकर व्यक्ति के जीवन की नवीन व्याख्या का प्रयत्न किया गया तथा मनोविज्ञानिक परम्परा का सूत्रपात हुआ । प्रगतिवादी उपन्यासों में बुद्धिवादी दृष्टिकोण का यद्यपि

---

1. सुखदा : जैनेन्द्र पृ0 सं0 100
2. दायरे : रांगेय राघव : पृ0 सं0 71

अभाव नहीं तो भी इनमें बुद्धिवाद पर उतना ज्यादा बल परिलक्षित नहीं होता जितना कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में परिलक्षित होता है । जैनेन्द्र कुमार तथा इलाचन्द्र जोशी जैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने दर्शन तथा मनोविज्ञान की मदद से मनुष्य के बाह्य जीवन के प्रसाद के बजापय उसके अन्तर्गत की उलझन कुण्ठा तथा द्वन्द की व्याख्या करने का प्रयत्न किया । उन्होने व्यक्ति के द्वारा सामाजिक जीवन की समस्याओं की जड तक पहुंचने की इच्छा की । उनमें सुधारक के जोश की जगह पर दार्शनिक का गहन चिन्ता और मनोवैज्ञानिक खोज की प्रवृत्ति ज्यादा थी, इसलिये उन्होने चिन्तन प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के माध्यम से मनुष्य के जीवन की व्याख्या का जो प्रयत्न किया उसकी वजह से हिन्दी के उपन्यास साहित्य में ज्यादा प्रौढता आई तथा इसके रूप में ज्यादा निखार आया ।

हिन्दी उपन्यास की व्यक्तिवापदी प्रवृत्ति के दर्शन परिलक्षित होते है । मनुष्य को समाज से अलग करके जब उपन्यासकार ने मनुष्य की महत्ता की दृष्टि से उसके जीवन की व्याख्या का प्रयास किया तब व्यक्ति चरित्र प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना का सूत्रपात हुआ । व्यक्तिवादी चिन्तन व्यक्ति के स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष अस्तित्व को आधार मानकर चला है । इसलिये व्यक्तिवादी मनोवैज्ञाकि उपन्यासकार ने समाज के सम्पूर्ण नियम बन्धनों और विधि निषेधों के प्रति व्यक्ति के विद्रोह की आवाज उठाई । उदाहरण के रूप में "अज्ञेय" के व्यक्ति चरित्र मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में समाज के प्रति व्यक्ति के विद्रोह का स्वर गूंजता है । व्यक्ति की स्वतंत्र एवम् अबाध सत्ता के वे समर्थक है इसलिये उन्होने समाज की नैतिक व्यवस्था का मूल्यांकन व्यक्ति के हित की दृष्टि से ही किया है । व्यक्ति के स्वच्छंद एवम विद्रोही आचरण को उन्होने नैतिक अनैतिक दृष्टि से देखने के बजाय व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से देखा है ।

जब अज्ञेय की रचनाओं पर विचार किया जाता है तो ज्ञात होता है कि नैतिक उद्‌बोधन या नैतिक विश्लेषण के झंझट में पडने के बजाय, इन उपन्यासकारों ने समाज की परम्परागत नैतिक व्यवस्था और मर्यादा को अमान्य कर । इसके प्रति

विद्रोह की घोषणा कर दी है । 'अज्ञेय' ने व्यक्ति की निरपेक्ष सत्ता और स्वतन्त्र अस्तित्व की स्थापना में समाज के नैतिक विधि निषेधों को बाधक माना है ।

यद्यपि मनोवैज्ञानिक उन्नति और औद्योगिक विकास के फल स्वरूप होने वाली सामाजिक मूल्यों में गडबड और सम्मिलत परिवारों में विघटन का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' और 'गोदान' से आरम्भ होकर भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' में अपनी चरमसीमा को छू जाता है तो भी समाज के विधि निषेधों के प्रति एवम उदासीन और पारिवारिक मर्यादाओं की बाध्यता से मुक्त मूल नैतिकता के जिज्ञासु स्वतन्त्र व्यक्ति पात्रों की उद्‌भावना हिन्दी उपन्यपास में सर्वप्रथम जैनेन्द्र के उपन्यासों में ही प्राप्त होती है । वैसे तो प्रेमचन्द ने अपनी उपन्यास कला के विकास के अन्तिम चरण में और भगवती चरण शर्मा ने उपन्यास क्षेत्र में पर्दापण करते ही व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता तथा उसके अध्ययन की आवश्यकता स्वीकार कर ली थी । पर व्यक्ति मानस के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन की उसकी परत पर परत खोलकर उसकी व्यक्त क्रिया प्रतिक्रया के अचेतन द्वन्द को पकडने की मूलग्राही प्रवृत्ति जैनेन्द्र के उपन्यास 'सुनीता' से ही आरम्भ होती है ।

'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' से लेकर 'सुखदा' विवर्त , 'व्यतीत और जयवर्द्धन तक उनके सभकी उपन्यासकारों में बाहर की स्थूल घटनाओं की अपेक्षा और पात्रों के भीतर होने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म हलचलों के चित्रण की ओर विशेष झुकाव मिलता है । कट्टी सुनीता, मृणाल कल्याणी , सुखदा मोहिनी, अनिता और इला से लेकर सत्यधन हरिप्रसन, श्रीकान्त, गजेन्द्र जितेन, तयन्त और जयवर्धन तक उनके उपन्यासों के सभी प्रमुख पात्र सामाजिक और पारिवारिक संघर्ष से विमुख पर अपने भीतर के न्दों में खोये हुये से भटकते रहते है । अपने चेतन मन से वे जो करना चाहते है, वह उनके किये नही हो पाता और जो वे करना नहीं चाहते वह उनके लाख बचने पर भी अचेतन प्रेरकों के प्रभाव से हो जाता है । इन पात्रों को दिन रात बेचैन किए रखने वाले उनके भीतरी अचेतन संघर्ष को पकडने के

लिये उनकी मनोवैज्ञानिक उलझनों को उनके यथार्थ रूप में चित्रित करने के लिए तथा उनकी यौन कुंठाओं को उधाड़नें के लिये जैनेन्द्र ने आधुनिक मनोविज्ञान की नवीनतम् खोजों से लाभ उठाया है । उनकी उपन्यास कला के विकास के साथ साथ मनोवैज्ञानिक प्रणालियों के प्रयोग की और उनका झुकाव भी बढता गया है । यहा तक कि उनके नयेउपन्यास 'जयवर्धन' में प्रचयड को मुक्त आसंग प्रणाली (फ्री एसोसियेशन टेक्निक) का सांगोपान प्रयोग मिलता है । वास्तव में जैनेन्द्र पहले उपन्यासकार है, जिनकी रचनाओं में हिन्दी उपन्यास के पाठकों को पात्रों के अंतरंग (सब्जेक्टिव) चरित्र चित्रण के दर्शन हुये है ।

पात्रों के अंतरंग चरित्र चित्रण को विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियों के आधार पर विकसित करने वाले दूसरे उल्लेखनीय उपन्यासकार है । इलाचंद जोशी चरित्र चित्रण को सामाजिक पूर्वाग्रहों और दार्शनिक उलझनों से बचाकर उसे शुद्ध मनोवैज्ञानिक रूप देने का श्रेय जोशी जी को ही है ।

फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि मनुष्य मूलतः पशु है पर वह अपनी पाशविक वृत्तियों पर धर्म सभ्यता और संस्कृति का आरोप करके उन्हें दबाने का प्रयत्न करता रहता है । ऊपर से दबी प्रतीत होने पर भी ये पशु प्रवृत्तियां उसके अचेतन मन में गहरी धंसकर भीतर ही भीतर उथल पुथल मचाती रहती है । मनुष्य जब जब इन्हें बलपूर्वक दबाता है, तब तब ये अपनाप रूप बदल कर अभिव्यक्ति पाती रहती हे, और जब कभी उनके अचेतन मन पर चेतन मन का नियंत्रण उठ जाता है - चाहे वह कल्पति अल्प समय के लिये ही हो ये वृत्तियां अपने नग्न रूप में नाच उठतककी है । इनसे उत्पन्न दुखद अनुभूतियों को जब उसका चेतन मन उनके यथार्थ रूप में सहने या स्वीकार करने से इन्कार कर देता हे । तब ये दमित (रिप्रेसेड) होकर अचेतन में धंस जाती हे और उसके भीतर मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों को जन्म देने लगती है । ये ग्रन्थियाँ उसके भीतर भीषण संघर्ष उठाती रहती है । जिसके कारण उसके लिये अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखना कठिन हो जाता है और वह जीवन भर

कस्तूरी मृग की तरह भटकता रहता है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास " सन्यासी " या नन्दकिशोर पर्दे के रानी की निरंजना, प्रेत और छाया का पारस नाथ " निर्वासित " का महीप आदि उनके उपन्यासों के नायक-नायिकाएँ इसी प्रकार के मनोवैज्ञानिक केस है। उनके वतन में भीषण द्वन्द छिड़ा रहता है जो उन्हें दिन रात बेचैन किए रखता है। मनोविज्ञान की विविध प्रणालियों का सहारा लेकर जोशी ने अपने पात्रों के मानस की निर्मम चीरफाड़ की है और उनकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं के कारणों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। इसीलिए उनके उपन्यासों में फ्रायड के मनोविश्लेषण और स्वप्न विश्लेषण से लेकर सम्मोहन-विश्लेषण (हिप्ना-हेनेलिसस), शब्द-सह-स्मृति परीक्षा (वर्ड एसोसियेशन टेस्ट), पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली (केस हि स्टरी मैथ्ड तक सभी प्रमुख प्रणालियाँ दृष्टिगोचर होती है, जिनका प्रयोग मनोविश्लेषण अपने पात्रों पर किया करता है ।

शेखर एक जीवनी की रचना द्वारा अज्ञेय हिन्दी-उपयास की मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण के एक नवीन मोड़ पर लेकर आये। अब तक हिन्दी के उपन्यासकारों की समस्त शक्ति पात्रों के चरित्र के विविध रूपों के उद्घाटन में ही लगती रही थी। पात्रों चरित्र-विकास की कुछ एक उभरी हुई अवस्थाओं के चित्रण में ही उन्होंने अपने कर्तव्य की इतिश्री मान ली थी। विकासमान चरित्र और उसकी अन्तः प्रेरणाओं के चित्रण का कोई ठोस प्रयत्न अब तक हिन्दी में न हुआ था। "शेखर एक जीवनी " के रूप में विकासमान चरित्र को ठोस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रदान करके अज्ञेय में चरित्र-चित्रण के केस में एक नया युग ला दिया। यह एक समस्यात्मक उपन्यास है। अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव पर पहुँच कर फाँसी की कोठरी में बैठा उसका नायक शेखर प्रत्यवलोकन करने लगता है। वाल्यावस्था से लेकर उसके जीवन की घटनाएँ एक-एक करके उसके स्मृति पट पर उभरने लगती है और उन्हीं स्मृतियों के निर्मम विश्लेषण द्वारा वह अपने विगत जीवन में कार्यकारण के सूत्र ढूँढ़ने लगता है। अज्ञेय का दूसरा

उपन्यास - नदी के द्वीप चरित्र के क्रमिक विकास का नहीं, विकसित चरित के उद्घाटन का उपन्यास है। यह चार संवेदनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण तैयार पात्रों के चेतना प्रवाह (ट्रीम ऑव कान्शसनेस) का गत्यंकन है ।

जैनेन्द्र की तरह, उपन्यासकार के साथ-साथ विचारक भी होने से अज्ञेय की भी अपनी निश्चित मान्यताएं हैं, कुछ-एक पूर्वग्रह भी है, जो उनके उपन्यासों और उनके पात्रों की चरित्र-विकास को एक विशेष दिशा प्रदान करते हैं। दोनों में साम्य यही है कि उनके पात्रों के चरित्र-विकास और चरित्र-चित्रण में उनके जीवन-दर्शन का प्रबल आग्रह रहता है। वैसे दोनों के दृष्टिकोण में आकाश-पाताल का अन्तर है। व्यक्ति की स्वतन्त्र के को पुष्ट करना चाहता है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में इस प्रकार का कोई आग्रह नहीं मिलता ।

यद्यपि जैनेन्द्र अज्ञेय तथा इलाचन्द्र जोशी इन तीनों ही उपन्यासकारों के उपन्यासों में मानसिक उलझन, आन्तरिक रहस्यय और मनोवैज्ञानिकता प्राप्त होती है। कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद-योजना और शैली की दृष्टि से तीनों उपन्यासकारों में नये-नये प्रयोग, नई-नई शिल्प-विधियाँ प्राप्त होती हैं। तथापि कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इन उपन्यासकारों में अलगाव पैदा कर देते हैं जो कुछ सीमा तक एक को अन्य से अधिक श्रेष्ठ कर देते हैं ।

प्रयोगवादी कथा-साहित्य और जैनेन्द्र

प्रयोगवादी उपन्यासकार भी मार्क्स और मनोविज्ञान से प्रभावित है। प्रयोगवादी उपन्यासकार नये प्रयोगों के पक्षपाती है। उन उपन्यासकारों ने यौन कल्पनाओं से लेकर सामाजिक विषय भी अपनाये हैं। इनके उपन्यासों में घोर वैयक्तिकता तथा वादिकता मिलती है। अति पदार्थ का आग्रह है। घोर अहंकार एवम् व्यक्तिवाद की प्रधानता है। इनके उपन्यासों में विश्व मानव और उसका चिन्तन प्राप्त होता है। प्रयोगवादी उपन्यासों का आरम्भ अज्ञेय के "शेखर एक जीवनी नामक उपन्यास से माना जाता है। कथानक चरित्र-चित्रण व शिल्प सभी दृष्टियों से यह एक प्रयोगात्मक उपलब्धि है। अन्य उपन्यासकारों में भारती प्रभाकर माचवे, राजेन्द्र यादव आदि विशेषोल्लेखनीय है ।

प्रयोगवादी उपन्यासकार व्यक्ति मूल्यों की प्रतिष्ठा से विश्वास करता है " शेखर एक़ जीवनी का शेखर " अपना व्यक्तित्वप पाने के लिए ही भटकता दिखाई पड़ता है। अपनी व्यक्ति-सत्ता के समक्ष न वह समाज के प्रतिरोध को स्वीकारता है, न देश के, और ईश्वर कके अस्तित्व में ही उसको आस्था नहीं रह गई है। वह अपने पिता से अपने व्यक्ति-मूल्यों के सम्बन्ध में कहता भी है - " ठीक है पर मैं तो सिक्योर होना नहीं चाहता। आप घर-गृहस्थी, निश्चित आमदनी और सिक्योरिटी की बात करते हैं, मुझे यही जीवन के रोग लगते हैं - इन्हीं से तो मैं बचना चाहता हूँ । "

" सुखदा " प्रतिष्ठा के लाल का यह विश्वास है कि सोसायटी गिरेगी और सब टूट जायेगा । "[1]

व्यक्ति प्रतिष्ठा के मूल्य का दूसरा " परोक्ष रूप भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें समष्टि के स्थान पर व्यष्टि को महत्ता दी गई है ।

---

1. सुखदा : जैनेन्द्र - पृष्ठ - 97

प्रयोगवादी कथा साहित्य में कथानक को एक नये रूप में लिया गया है। कथानक मनोवैज्ञानिक रूप में लिये गये हैं। जैनेन्द्र के कथानकों में भी परम्परागत मूल्यों का परित्याग करक एक नवीन मूल्यों के रूप में ग्रहण किया गया है। इनके उपन्यासों का समस्त कथानक मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिया गया है ।

प्रयोगवादी कथा-साहित्य में व्यक्ति चरित्र को प्रधानता दी गयी है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में भी व्यक्ति-चरित्र की महत्ता को प्रतिपादिता किया गया हैं ।

प्रयोगवादी कथा साहित्य में संवाद तथा बोद्धिकता को प्रधानता दी गई है। जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में भी संवाद की प्रमुखता है और बौद्धिकता को स्वीकार किया गया है ।

प्रयोगवादी कथा-साहित्य में पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा हुआ है। जैनेन्द्र उपन्यासों पर भी पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पाया जाता है ।

प्रयोगवादी कथा-साहित्य में नूतन शिल्प विधान रचे गये हैं। जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में भी परम्परागत शिल्प का परित्याग कर नवीन शिल्प विधान की रचना की गई है ।

उपर्युक्त विवेचनों से यह तक संगत है कि प्रयोगवादी कथा-साहित्य तथा जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में साम्यता पाई जाती है ।

प्रकृतिवादी कथा साहित्य और जैनेन्द्र -

साहित्य में प्रकृतवाद का प्रयोग तीन अर्थो में किया जाता है - ‖ 1 ‖ प्रकृति प्रेम के लिए ‖ 2 ‖ यथार्थवाद के समाजवादी रूप में और ‖ 3 ‖ जोला आदि के लेखन के लिए जो यथार्थवादी पद्धति को - सामग्री के निरूपण के द्वारा एक निश्चित साहित्य सिद्धान्त उपस्थिति करते हैं । यहां हमारा प्रमुख प्रतिपाद्य प्रकार का प्रकृतवाद है यह प्रकृतवाद साहित्य में ऐसा आन्दोलन माना जाता है जो यथार्थवाद से उद्भुत हुआ है और भौतिक वाद से पोषित । ' डार्विन ' के प्राणिशास्त्रीय और ' तेन ' के समाज शास्त्रीय सिद्धान्तों ने भी इसे प्रभावित किया है । यर्थार्थवाद में हमें सत्य और अभिव्यंजना कौशल का सामंजस्य मिलता है पर प्रकृतवाद प्रमुख रूप से सामाजिक परिवेश के चित्रण मानव प्रकृति और बुर्जुआ समाज के सूक्ष्म निरूपण को महत्वपूर्ण मानता है । 19वीं शती के यर्थाथवाद में हमें वस्तुगत दृष्टिकोण को प्रधानता मिलती है पर प्रकृतवाद उसकी तुलना में अधिक आत्मगत है । यथार्थ वाद ने भी साहित्य विद्या के रूप में अधिक आत्मगत है । यथार्थवाद ने भी साहित्यक विद्या के रूप में कृत्रिम रोमांस और आदर्श का विरोध किया था । प्रकृतवादी इस विरोध में उससे दो कदम आगे बढ़ जाता है । इसका मूल प्रतिपाद्य ' न्यूटन ' भौतिक शास्त्र ' डार्विन के जीव विज्ञान, अगस्ट काम्स ' और हर्बर्ट स्पेन्सर के समाजवाद से अपनी सामग्री ग्रहण करता हुआ एक निश्चित सैद्धान्तिक कसमुच्चय के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता अपने प्रमुख ग्रन्थ ' एक्सपेरीमेंटल नावेल ' में ' स्माइल जोला ' ने लिखा है ' हम देखते हैं कि उपन्यासकार पर्यवेक्षक और प्रयोगकर्ता का मिश्रित रूप है । पर्यवेक्षक तथ्यों की भी स्थाना करता है, जिन पर घटनाएं और वह पात्रों को कथानक विशेष में संचालित करते हुए अपना प्रयोग शुरू कर देता है । वह अध्ययेय वस्तु के निर्णायक तत्वों द्वारा अपेक्षित रूप में तथ्यों श्रंखला दिखाने के उद्देश्य उन्हें संचालित करता है । दूसरे शब्दों में प्रकृतवादी उपन्यास में घटनाओं की श्रंखला का निर्णय सामाजिक परिवेश, उत्तराधिकार में प्राप्त वस्तुओं और बाह्य परिस्थितियों

के द्वारा किया जाता है। '[1] इसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है और इसमें सामाजिक संस्पर्श के साथ ही मानवीय और सांस्कृतिक तत्वों का भी समावेश पाया जाता है । यह यथार्थ में मानव जीवन के तथ्यों के विशद पर्यवेक्षण पर आधारित होता है । इस दृष्टिकोण के कारण यह मानव चिन्तन के विविध स्वरूपों को उद्‌भाषित करने में समर्थ होता है । प्रकृतवाद की यह विशेषता है कि यह मनुष्य और उसकी कार्यपद्धति पर सहज ढंग से विचार करता है और यह कि एक दर्शन के रूप में प्रयोग के तरीके को सार्वजनीन और व्यापक मानता है ।

प्रकृतिवाद के कुछ सूत्र पूर्ववर्ती साहित्य में विद्यमान थे ' जोला ' कइन सिद्धान्तों से विशेष रूप से प्रभावित हुआ था । उसने आध्यात्मिक और नैसर्गिक्त तत्वों का विरोध किया था और इसके स्थान पर भौतिक सिद्धान्तों की प्राण प्रतिष्ठा की थी । प्रकृतवाद में एन्द्रियता का स्वरूप उमड़कर सामले आया था, पर इसका तात्पर्य नहीं था कि व ेजान बूझ कर उसमें रूचि लेते थे । सत्य यह है कि प्रकृतिवादी ककतेन के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त से बहुत कुछ अधिक प्रभावित थे और परिवेश का चित्रण करते समय वे इन ऐन्द्रिय को उसकी कार्यकला श्रंखला में अभिव्यक्त करते थे । प्रकृतिवादी ऐसे व्यक्ति का चित्रण करना अधिक उपयुक्त समझते थे जो अपनी वंशपरम्परा और वातावरण की शक्तियों से प्रभावित होता रहता था । जोला ने कला की व्याख्या भी इसी दृष्टि से की थी कि उसकी विचार धारा में शिक्षा श्का तत्व भी निहित था वह यथार्थ में अपने काल की समाजिक चेतना को उद्धृत करना चाहता था ।

प्रकृतिवादी निकाय में जोला डेजियर हाफमन आदि का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय था । इनके द्वारा प्रस्तुत अनुभूति को कई नामों में अभिव्यक्त किया जाता था उसे निराशवादी भौतिक वादी और भाग्यवादी माना जाता था इसका प्रमुख कारण यह था कि इस निकाय के लेखक उस बाह्‌य शक्ति को निरूपित करना चाहते थे । जो मनुष्य की स्वतन्त्रता, उसकी आन्तरिक शक्ति , बौद्धिकता और नैतिक

---

1. डा0 नगेन्द्र : पाश्चात्य काव्य शास्त्र : सिद्धान्त और वाद , पृ0 144

उत्तर दायित्व में बाधक सिद्ध होती थी । जोला का कहना है कि प्रकृतिवाद प्रमुख रूप से निरीक्षणों प्रयोग का मुखापेक्षी होता है । वह इसके आधार पर ऐसी पद्धति को अपनाना चाहता है जो व्यापक और व्यंजक है क्योंकि पद्धति ही विन्यास को निर्धारित करती है । और सहज वैज्ञानिक संघटन भाषा को रूप प्रदान करता है उसकी दृष्टि में उपन्यास लेखन की किया प्रकृति से तथ्यों को ग्रहण करने की मुखापेक्षी होती है । उन तथ्यों के आन्तरिक विश्लेषण को ही उपन्यास कार प्रकृति नियमों की अवहेलना किए बिना अपनी परिस्थिति परिवेश को वैज्ञानिक ढंग से ग्रहण करके उपन्यास का सृजन करता है । प्रकृतिवादी यह बात मान कर चलता है कि प्रकृति स्वयं में द्योतक है, अतएव परिवेश के सन्दर्भ में किसी व्यक्ति विशेष का यथार्थ अध्ययन अनेतिक नहीं कहा जा सकता । प्रकृतिवाद के इस अध्ययन की कतिपय विशेषतायें है - वह व्यक्ति की वंश परम्परा और वातावरण की उपज मानता है इसलिए व्यक्ति के अध्ययन के स्थान पर उसके निर्णायक तथ्वों का अध्ययन करना अपना प्रमुख कर्तव्य समझता है । उसकी अवधारणा है कि व्यक्ति मानसिक एवं नैतिक शक्तियों का आगार होता है । और यह शक्तियों अनैतिक वातावरण के बावजूद उसके विचार को प्रेरणा प्रदान करती है । प्रकृतिवादी विचारक इस प्रेरणा शक्ति को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना अपना उद्देश्य मानता है इस निकाय के विचारकों ने अपने को भावात्मक समस्याओं से ही नहीं सम्बद्ध किया है अपितु जीवन के अभावात्मक पक्ष पर विचार करना अपना ध्येय माना है । इस विचार धारा के लेखकों ने जीवन की सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर भी विचार किया है ।

इस प्रकार के उपन्यासकारों की एक विशिष्ट शैली होती है । ये किसी भी परिस्थिति विशेष से सम्बद्ध पात्रों के सम्बन्ध में अपना श्स्पष्ट मत प्रकट करते हैं इनकी भाषा सरल स्पष्ट और व्यंजनात्मक होती है । और दृष्टिकोण कुछ अंशों में वस्तुगत ये अपने उपन्यास के कार्य व्यापारों को प्रस्तुत करने में विविध दृश्यों का अवतारण करते हैं प्रकृति वादी उपन्यासकारों अपने वर्णन व्यक्ति स्थान और घटना आदि पर बल देता है । इसके परिणाम स्वरूप कहीं कहीं अस्पष्टता :आ जाती है । इन उपन्यासों में प्रतीकों का प्रयोग भी किया जाता है । और चरित्रों की सूक्ष्म

विशेषताओं को अंकित करने के लिए नाटकीयता का समावेश किया जाता है । इसमें लेखक अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के लिए सदैव जागरूक रहता है । अतएव उसके पास और संघटना इस दृष्टिकोण के परिचायक मात्र बन कर रहते है यह उपन्यास कार व्यक्ति से सम्बन्धित परिवेश को उद्घाटित करने पर जितना बल देते हैं उतना उसकी अन्तर्निहित शक्तियों के उद्घाटन पर बल नहीं देते हैं ।

प्रकृतवाद आधुनिक उपन्यास की एक बहुत ही सबल सैद्धान्तिक विचार धारा है । इस खेमे के उपन्यास भौतिक निष्पत्तियों के आधार पर व्यक्ति को समझने और समझाने का प्रयास करते हैं सत्य यह है कि तान विज्ञान के चतुर्दिक विकास के कारण मानव मन के ऐसे अनन्त अज्ञातों स्वरूपों का उद्घाटन हो चुका है । उसके समक्ष श्लील - अश्लील जैसी कोई समस्या नहीं रहती है यह उपन्यासकार सामान्य ढंग से जीवन के सद् असद् पक्षों को चित्रित करते हैं और मानव की सहज वृत्तियों को यथार्थ रूप में निरूपित करना अपना धर्म समझते हैं । कुछ लोगों की धारणा है कि प्रकृतिवाद ने मनुष्य को सीमित और संकीर्ण बनाया है । पर यह बात ग्राह्य नहीं है हो सकता है जीवन में जो कुरूपता विद्रुपता और असंयम है उसे बिना सोचे समझे केवल नकार कर हम उससे मुक्त नहीं हो सकते हैं उससे मुक्त होने का सबसे सरल तरीका यह है कि हम उसे निवृत्त रूप में समझे प्रकृतिवादी उपन्यासों में हमें यह बात विशेष रूप से देखने को मिल जाती है । हिन्दी प्रकृतिवादी उपन्यासों का अभाव है । फिर चतुरसेन शास्त्री और बेचन शर्मा उक्त को इलाचन्द्र जोशी ऋषभरण जैन इत्यादि के उपन्यासों में इस कोटि में रखा जा सकता है । यथास्थान अज्ञेय और यशपाल की शैली में भी इस शैली का दर्शन हो जाता है । इन उपन्यासों के पात्र न तो टाइप होते हैं और न आदर्श की मूर्ति । इनमें ऐसे चरित्रों की अवतारणा की जाती है जो प्रवृत्तियों के उद्घाटन को दृष्टि से जीवन की किसी भी सीमा पर जाना श्रेयस्कर समझते है । चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास अमर अभिलाषा में छवि भवन को कथा प्रस्तुत की गई है । उग्र जी का प्रमुख उपन्यास ' दिल्ली का दलाल ' हिन्दी के प्रकृतिवादी उपन्यासों में प्रमुख स्थान का अधिकारी है । इसमें लेखक ने नारियों के अवैध प्रेम की कहानी को प्रस्तुत किया है । तथाकथित सफेद पोशी के नीचे व्यक्ति

किस तरह के घृणित और कुत्सित कार्यों में संलग्न रहता है, इसका बड़ा ही यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में मिलता है । लेखक ने इस चित्रण के द्वारा सभ्य समाज को एक चुनौती दी है । उसे अपनी खोजों पर अटूट विश्वास है अतएव उसके लिए किसी गवाही की अपेक्षा भी नहीं है । इलाचन्द्र जोशी ने अपने ' घृणामयी ' और ' पर्दे की रानी ' मनोविश्लेषणवादी ढंग से व्यक्ति के अन्तर्मन का पोस्टमार्टन किया है । ऋषभरण जैन और प्रेमचन्द्र युग के उपन्यास में समाज में चलने वाले कृत्यों का बड़ा ही यथार्थ वादी वर्णन किया है । अज्ञेय का ' नदी के द्वीप ' यद्यपि इसकी सीमा में नहीं आता, फिर भी उदाहरणार्थ इसकी चर्चा कर देना अनुचित नहीं होगा । इसके प्रभूत उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं । इस दृष्टि से प्रस्तुत अंश विशेष रूप से दृष्टव्य है " कम्बल ' के भीतर उसका हाथ रेखा के वक्ष सहलाने लगा ---- सहसा वह चौंका । झीने रेशम के भीतर रेखा के कुचाग्र ऐसे थे जैसे छोटे हिमपिण्ड .... सहसा रेखा ने बाहें बढ़ाकर उसे खीच कर छाती से लगा लिया । उसके दांतों का वजना बन्द हो गया, क्यों कि दांत उसने भींच लिए थे, भुवन को इतनी जोर से भींच लिया कि उनके छोटे - छोटे हिमपिण्डों की शीतलता ' भुवन ' की छाती में चुभने लगी । फिर स्निग्ध गरनाई आई - रेखा की बन्द पलकें नये तॉबे सी चमक रही थी ।"[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में भी प्रकृतवाद पाया जाता है । इन्होंने अपने उपन्यासों में मनोविश्लेषणावादी ढंग से व्यक्ति के अन्तर्गत की क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का यथार्थ रूप से चित्रण करते हैं । पुरूष तथा नारी के ऐन्द्रिय सम्पर्क से काम तृप्त होता है यह स्वाभाविक बात है । पर कुछ लोगों को काम तृप्ति इस प्रशस्त मार्ग का परित्याग कर अपने लिए एक पगडंडी निकाल लेती है । ये लोग कामाधार तथा ( ) काम लक्ष्य दोनों में थोड़ा परिवर्तन कर लेते हैं । काम में साधारणतः आधार के रूप में विपरीत लिंगी व्यक्ति का अंग-विशेष ग्रहण किया जाता है और लक्ष्य है तद्स्पर्शजनित सुख से अपने आन्तरिक तनाव से मुक्ति । उदाहरणार्थ कुछ लोगों को किसी नारी के वस्त्रखण्ड या उसके अलकों के एक गुच्छे से ही तृप्ति हो जाती है और कुछ लोग होते

---

1. अज्ञेय : नदी के द्वीप, पृष्ठ - 151-52

हैं जिन्हें चुम्बन आलिंगन से आगे बढ़ने की जरूरत महशूस नहीं होती । कुछ नारियां तो पुरूषों द्वारा हंटर से पीटे जाने से ही काम तृप्ति लाभ करती हैं । कुछ पुरूष नारियों से पिन चुभवाकर ही तृप्त होते हैं जैनेन्द्र के उपन्यासों में इस तरह की पर्यस्तता के उदाहरण मिल जाएंगे ।

आधार विकृति की बात पहले लीजिए । इस पर विचार करते ही जैनेन्द्र के सुनीता नामक उपन्यास की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट हो जाता है इसका एक पात्र है हरिप्रसन्न । उसके चरित्र का चित्रण जिस तरह से प्रारम्भ हुआ है उससे स्पष्ट है कि उसके जीवन का विकास स्वाभाविक गति से नहीं हो सका है । वह अविवाहित है तथा क्रान्तिकारी है । उसके मित्र श्रीकान्त के शब्दों में हरी की आत्मा मे कहीं गठिंपड़ी है कि वह अनवर्य हो जाता है------ वह तो जैसे अपने भीतर भेद को पाल रहा है । वह अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर सुनीता को अन्धकारमय निशीथ बेला में सूने जंगल में अपने दल वालों के सम्मुख स्फूर्ति मायारानी देवी चौधरानी बनाकर ले जाता है । वहाँ पर उसका जो व्यवहार होता है उसे देखकर किसी को भी संदेह नहीं रह जाता कि वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी काम तृप्ति अपनी चरितार्थता के लिए नारी शरीर को सम्पूर्ण रूप से मांगं करने की अदम्य व्याकुलता से पीड़ित हैं । सुनीता खुले पत्थर पर सोई हुई है । उसका विनिन्द्रित और संपुटित मुख चाँदनी में खिल उठा है । हरिप्रसन्न उसकी अंगुलियों को चूम लेता है । वहाँ के कुछ दृश्य देखिए, कुछ वार्तालापों का अंश सुनिये और इस सब बातों के आलोक में विचार कीजिए कि हरिप्रसन्न के सम्बन्ध में कही गयी विपर्यस्तता (Perversion) की बात कहाँ तक ठीक है ।

सुनीता - तुम क्या चाहता हो, हरी बाबू ।

हरिप्रसन्न - क्या चाहता हूँ । तुम पूछोगी क्या चाहता हूँ ।

तुमको चाहता हूँ, समूची तुमको चाहता हूँ ।।

उसके बाद सुनीता निरावरण हो जाती है, साड़ी उतार फेंकती है शरीर से चिपटकर सटी हुई बाडी को फाड़ देती है और दिगम्बर प्राय अवस्था में कहती है, मैं तो तुम्हारे सामने हूँ इनकार कब करती हूँ लेकिन अपने को नारी

मत, कर्म करो । मुझे चाहते हो तो ले लो । परन्तु हरिप्रसन्न की हिम्मत नहीं होती और वह शान्त चुप बैठा रहता है ।

जैनेन्द्र के कथा-साहित्य की मौलिकता :

जैनेन्द्र जी हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं उन्होंने प्रेमचन्दयुग में प्रेमचन्द संस्थान के कलाकारों से एवं हिन्दी उपन्यास साहित्य की परम्परा से हट कर लिखने की प्रवृत्ति की जैनेन्द्र से पूर्ववर्ती उपन्यास-कारों में प्रेमचन्दीय और प्रसादीय संस्थान कथा घटना एवं चरित्र की कसावट बनावट से युक्त रहते थे । परन्तु जैनेन्द्र के प्रादुर्भाव ने हिन्दी उपन्यास में समूह के टाइप (Type) या प्रकार से स्थान पर व्यक्ति (Person) और वयक्तिकता (Individuality) को महत्व दिया ।[1] प्रेमचन्द्र जी के पश्चात् हिन्दी साहित्य को नवीन मोड़ देने का श्रेय जैनेन्द्र जी को है । परख, त्यागपत्र तथा सुनीता अपने युग के श्रेष्ठतम उपन्यास माने गए । जिस संवेदना की अभिव्यक्ति इन उपन्यासों में हुयी थी वह हिन्दी पाठक के लिए एकदम नवीन थी । अधिकांशतः उनके सभी उपन्यास सामाजिस समस्या के स्थान पर व्यक्ति के मनोजगत के अन्तर्द्वन्द के साथ सम्पृक्ति रखते हैं । सवीरानी गुर्टू का मानना है कि जैनेन्द्र के पात्रों की कहानी परिस्थितियों से जूझने वाले व्यक्तियों , उनके परिवेश और सामाजिक सम्बन्ध की कहानी न होकर कुंठाग्रस्त और किसी एक व्यक्ति या मूड के वशीभूत आत्मकेन्द्रित लोगों की कहानी है ।[2]

जैनेन्द्र जी ने वैयक्तिक चेतना के स्तर पर मानव की आन्तरिक विश्लेषण को अपने औपन्यासिक कृतित्व का विषय बनाया है और इसके लिए माध्यम बनाया नारी को । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में नारी भावना की प्रमुखता है । "परख" उपन्यास को लेकर 'अनामस्वामी' उपन्यास तक नारी ही उनके केन्द्र

---

1. डा0 बिजय कुलश्रेष्ठ , जैनेन्द्र उपन्यास और कलावृत : पृ0 सं0 ।।
2. गुर्टू शवीरानी : वैचारिकी (जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवादी) पृष्ठ सं0 210

में है । एक तरह से उनके उपन्यासों को हम नारी जीवन के उपन्यास कह सकते है । नारी जीवन की समस्याएं ारी का सामाजिक जीवन उसका स्वतन्त्र कृतित्वप प्रेम और विवाह आदि प्रश्नों के समाधान का प्रयास जेनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में किया है । नारी के सम्बन में जैनेन्द्र की भावना निरन्तर सूक्ष्म होती गयी हे और उन्होने इन समस्याओं को अत्यन्त गहराई देने की चेष्टा की है ।

जैनेन्द्र जी ने मनोविश्लेषणात्मक धरातल पर अपनी रचनाओं में किसी परम्परा विशेष का निर्वाह नहीं किया हे अपितु परम्परा के प्रति विद्रोह और नवीनता के प्रतिपादन का प्रयत्न किया हे तथा इस दिशा में सबसे अधिक अगोपन नारी पात्रों का हुआ हे । अभी तक साहित्य में नारी के प्रति सूक्ष्म भाव तथा आदर भाव की प्रतिष्ठा ही रही थी । किन्तु जैनेन्द्र जी के औपन्यासिक नारी पात्रों में पुस्रूषों के अहं विलगन और काम के उन्माद दूर करने तथा विर्शेष मानसिकता के स्तर पर पुरूष के साथ मुक्त साहचर्य की प्रवृत्ति दिखाई पडती हे । नारी पात्रों के संबंध में नवीनता के इस आग्रह से उसके सतीतव का पुरातन चित्र धूमिल दिख होकर मूल्यों की स्थापना हुई ।

जैनेन्द्र जी ने हिन्दी औपन्यासिकों के परमपरागत रूढ वित्रात्मकता को अमान्य करते हुए व्यक्ति सत्ता के स्तर पर नारी के जीवन की कुण्ठा अनास्था अकांक्षा भावना , प्रेम की असफलता को उभारने का प्रयत्न किया है । जैनेन्द्र जी ने नारी पात्रों को व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि प्रदान करके नारी विद्रोह को जन्म दिया है । जैनेन्द्र जी की औपन्यासिक नारियां पति को जीवन सर्वस्व मनाने को तत्पर नहीं है । उनकी नेत्रों के समक्ष सत्य के नग्नालोक में अपनी आन्तरिक तपन साकार हो उठती हे । पति की अन्धी दासता को ही सिर्फ एक मात्र साधन स्वीकार कर वे निष्क्रिय नहीं बनी रहती । उनमें कुछ ऐसी अनयता है कि वे एक मात्र पति पर ही निर्भर नहीं है । उनके जीवन व्यतीत करने का एक नया और निजीपन हे । सामाजिक जवाबदेही को वे मानती

नहीं । उनके मन में गहरा प्रतिवाद और दुहरा संघर्ष उपस्थित रहता है, जो उनकी प्रेरणा का मूल तत्व है तथा उनके अन्तर्मन को सदा उद्वेलित करता रहता है । एक मात्र अपनत्व को लेकर जीवन की रिक्तता को वे अपूरित नहीं कर सकती और न ही यह प्रेम उनके जीवन का लक्ष्य बन सकता है । अतः अन्तर मन के साथ संयुक्त हुए बिना उनकी सम्पूर्णतः प्रतिफलित नहीं होती । सुनीता मृणाल, कल्याणी, सुखदा, भवनमोहिनी, अनिता निजा और वसुन्धरा ऐसी ही नारिया है जो अनियन्त्रित काम वासना से आक्रान्त हो किसी एक व्यक्ति में आस्थाशील नही हो पाती । इस बारे में शवीरानी गुर्टू का मत उल्लेखनीय है -"जैनेन्द्रीय नारियों में उदाम वासना का प्रवाहमान वेग है, जो महज पति से तृप्त नहीं होता, दूसरे पुरूष की ओर बरबस अनुधाक्ति होता है । वे ऐसी नहीं है जिनमें झंण के झकोरों का उन्माद जगा और शान्त हो गया ------ इच्छा वासना के आवेग अपने और बुद्धि एवं विवेक द्वारा उनका उपशमन कर दिया ---------- वे जीवन में उलझ जडता को प्रश्रय नहीं देती -------- वे चाहती है उन्हें कोई समझे, उनके रूप को परखें, उनके सौन्दर्य की कोई प्रशंसा करें और उसके प्रेमवाश में आबद्ध हो जाये ।[1]

जैनेन्द्र जी के वैयक्तिकता प्रधान नारी चारित्र्यों में स्वतंत्रता से ज्यादा स्वच्छंदता है । इसीलिये वह पति, परिवार और समाज से विलग हो 'स्व' के चिन्तन पर अपने एकात्मिक व्यक्तित्व को भोगती हुई अपने नारीत्व का दूसरे के सामने समर्पित कर तुष्टि प्राप्ति का प्रयास करती है । "परख" उपपन्यास में इसी स्वच्छंदता की वृत्ति का आंकलन करते हुए कट्टों की घर की चहारदीवारी में कैद होने से दिलाकर जीवन की नई दिशा प्रदान की है, परन्तु नारी स्वच्छन्दता की यह प्रवृत्ति विकसित ही हुई है पूर्णता को प्राप्त नहीं । उसकी प्रतिक्रिया सामाजिकता के लिए फिर भी प्रतिबद्ध है । इसका ज्यादा प्रभाव "कल्याणी नामक उपन्यास में दिखाई पडता है । कल्याणी विदेश से लौटकर अपने को इस

---

1. गुर्टू : शवीरानी : वैचारिकी : पृ0 सं0 210

के स्तर पर नितान्त स्वच्छन्द वृत्ति को अपनाकर भी अपने पतित्व को अस्वीकार नहीं करती तथा घर के टूटने एवं बाहर से जुडने की जगह पर खुद को तोडना चाहती है । यही स्वपीडा वृत्ति जैनेन्द्र जी के नारी चरित्र्य की विशेषता है । जैनेन्द्र जी के अन्य उपन्यासों में भी नारी को इस स्वच्छन्दता की वृत्ति का वर्णन हुआ है । परन्तु वहप स्वच्छन्दता उनकी वैयक्तिकता तक ही अग्रसारित होती हे जहाँ पति परिवार तथा समाज की मर्यादाएं आती है, वहाँ यह स्व्च्छन्ता स्व पीडा में बदल कर एक नया रूप धारण कर लेती है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यास की नायिकाएं मध्यवर्गीय धारणाओं में पत्नी सामान्य नायिकाए हे । घर गृहस्थी के दायित्वों तथा पति और परिवार के प्रति निष्ठा रखने वाली हे, परनतु फिर भी न जाने किन वजहों से उनमें मानसिक अन्तर्द्वन्द तथा असन्तोष पाया जाता हे । फलस्रूप वे कभी कभी गहरे अवसाद, खीझभरी, अनुभूति या किसी अनजाने अप्रात्य की प्राप्ति की इच्छा करने लगती है । बच्चों के बकन्धन, पति के भय तथा पारिवारिक परिवेश से वे किचित भी त्रस्त नहीं होती । परम्परागत व धारणाओं का अनुकरण उन्हें इष्ट नहीं उन्हें खंतरा पसन्द हे । अतः वे जीवन के विषम छारो परचलना पसन्द करती हे चाहे इस मार्ग में समस्याए ही पैदा क्यों न हो । यह समस्याएं उन्हें और भी निश्चयात्मक रूप से कार्य करने वाली नायिकाएं नहीं हे । ऐसी सामाजिक धारणाओं को वे मानती नहीं जो विवशता अथवा नियंत्रण बकनकर उनके रास्ते में रूकावट पैदा करें । इसके विपरीत 'पुरूष पात्र ऐसे अपौरूषेन नर कंकाल मात्र है,जिनमें खौलते खून और प्रर्णों के स्पन्सन का सर्वथा अभाव है -- जिनकी सरलता से उनकी पत्नियां तक त्रस्त है । अपने समग्र अस्तित्व से अनस्तित्व बन गये है ।'[1]

---

1. गूर्टू : शवीरानी : वैचारिकी : पृ0 सं0 210-216

पत्नी के हाथ की कठपुतली मात्र है । जैनेन्द्र जी के नारी पात्र पुरूष के भाग्य लिखते से प्रतीत होते है । यह शायद नारी के इतने सालों तक दासत्व के भार में दबे हुए घुटते रहने की प्रतिक्रिया है ।

जैनेन्द्र जी के उपन्यास की नारियां वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति के धरातल पर किसी पारिवारिकता से जुडी हुई नहीं है । इसलिए वह यौन स्वेच्छाचरण को परम धर्म स्वीकार कर चलती हजै । विवाह संस्था के प्रति विश्वस्त होकर भी उसकी मर्यादाओं से मुक्त रखती है । जैनेन्द्र जी का समाधान है कि नारी पति की पत्नीत्व होकर भी प्रेमी को स्नेह तो दे ही सकती है ।[1]

जैनेन्द्र जी व्यक्तिवादी उपन्यासकार है । इसी नाते वे अपनी पात्रों के मन संघर्ष का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते है । उका प्रत्येक पात्र इकाई के रूप में जब भी अपने व्यवहार आचरण और कर्तव्यों को निश्चित करता है । वहप मन के तीनो स्तरों पर जाता है । उसमें मानव सुलभ कमजोरिया (इड) है । सामाजिकता के नियमोंपनियों का वह पालन करता है । (इगो) ओर यथं बसर वह आदर्श लक्ष्यों अथवा नैतिक प्रतिमानों (सुपर इगो) की ओर भी झुकता है ।[2] ऐसा करने के लिये उसे काफी संघर्ष का सामना करना पडता हे । जैनेन्द्र जी के पात्रों की मूल समस्या योनपि है । इस क्षेत्र में असफल होने पर वे समझौता नहीं कर पाते और अपने तीव्र अहं से पीडित होकर असामान्यता ग्रहण कर लेते हे । यही वजह है कि प्रेम की असफलता उनके असाधारण कृत्य (क्रान्किारी बने) की तरफ से जाती है । तथा अपनी इस रूग्ण मानसिकता की वजह से ही है वे जब भी अपने परिचित वातावरण मं विद्यमान होते है तो उनके हाथ में रिवाल्वर होता है । इस रिवाल्वर का प्रतीकात्मक प्रयोग अपने पौरूष हीन व्यक्तित्व

---

1. प्रो0 भगनन शरण जोहरी : जैनेन्द्र : व्यक्ति कथाकार और चिन्तक, (स0 बाके बिहारी भटनागर), पृ0 सं0 101

2. डा0 मनमोहन सहगत : उपन्यासकार : जैनेन्द्र मूल्यांकन : पृ0 स0 88

के लिये ही वे करते है । यही वजह है कि डा0 देवराज उपाध्याय ने इस रिवालवर को लिंगीय प्रतीक (Phollec symbol) माना है ।[1]

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में पुरूष पात्रों का चिन्तन अपेक्षाकृत कम किया गया है । क्योंकि उनके पुरूषार्थ के प्रतीक नहीं बन सके है । उनके उपन्यासिक के नायक एकांकीजीवन व्यतीत करते है । वे निराशावादी व्यक्तित्व वाले है । जो खुद को सामाजिक विधान के अनुकूल ढाल नहीं सके अथवा अहिंसा वादी है जो मूक भाव से कष्टों को झेलना जानते है । उनमें शक्ति और विद्रोह की भावना का नितान्त अभाव है । वे अपने व्यक्तित्व को समाज कर चुके है । सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनका असंतोष साकार रूप धंरण करने में सफल नहीं रहता है । वे अपने अन्तर्द्वन्द के शिकार है । मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वे निष्क्रिय तथा कुण्ठाग्रस्त है । शवीरानी गुर्टू ने पुरूष वर्ग के इस अपौरूषेय शक्ति की तरफ सकेंत करते हुए लिखा है, कि 'जैनेन्द्र के प्रायः सभी उपन्यासों में स्त्रैण पति है । जिनके लिए पत्नी का "सेकिण्ड हेण्ड" प्रेम जरा भी तिरस्करणीय नहीं मानो ऐसे अपौरूषेय नर कंकाल मात्र है वे सब जिनमें खौलता खून और प्राणों के स्पन्दन का सर्वथा अभाव है ।'[2]

'विवर्त' नामक उपन्यास में वैरिस्टर नरेश के ये शब्द इस तथ्य की पुष्टि करते है कि "वह पहले प्रेमी थी, लेकिन यदि बाद में भी प्रेमी हो, निरन्तर प्रेमी हो, तो मुझे उसमें क्या कहना ? क्या मेरा आर्शीवाद है कि ऐसा हो ? हो है आर्शीवाद । मेरी मोहिनी को सबका प्रेम मिले । सब ही का प्रेम मिले, क्या उसके मेरी होने की सार्थकता तभी नहीं है कि अभिन्नता इतनी हो कि मेरा आरोप उस पर न आये ? यहीं है मोहिनी यही है, देखोगे कि मेरी और

---

1. डा0 देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ0 सं0 150
2. शवीरानी गुर्टू : पृ0 सं0 216

से तुम पर आरोप आने की आवश्यकता नहीं रह गई है । हे ईश्वर तू ही तो तुझसे मेरी यही प्रार्थना है ।[1] साथ ही श्रीकान्त द्वारा हरिप्रसन्न के सामने सुनीता को आत्म समर्पण का आदेश ।[2] अनिता तथा जयनत का पारस्परिक प्रणय व्यापार जानते हुए भी मिस्टर पुरवे का अपनी पत्नी को स्वेच्छया उसके प्रेमी को सौप जाना ।[3] सुखदा नामक उपन्यास में कान्त के ये शब्द 'सुखदा स्वतंत्रता तुम्हारी है और कहीं आने जाने में रोक टोक मानना मुझ पर आरोप डालना है ।[4] जैनेन्द्र जी द्वारा लिखित 'अनामस्वामी' नामक उपन्यास में कुमार द्वारा पत्नी को उपाध्याय के माध्यम से पुत्र प्राप्ति हेतु दी गई प्रेरणा ।[5]

जैनेन्द्र जी के उपन्यास के नायकों के चरित्र को देखने से यह फल प्राप्त होता है कि जैनेन्द्र के पति पात्रों में मुख्यतः दो प्रवृत्तियों का द्वन्द है एक तो पत्नी के आगे उनका व्यक्तित्व कुण्ठित है दूसरे वे इतने निरीह और न्योछावर है कि अपनी अदम्य शक्ति को पत्नी से खो बैठे है । जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यास के प्रति पात्रों को इतना सरल बनाया है कि उनकी सरलता से उनकी पत्नियां तक त्रस्त है । उन्हें अपनी इस दुर्भाग्यपूर्ण विरासत में भी सौभाग्य की सम्भावनाएं "[6] दिखाई पडती है सम्भवतः इसके पीछे जैनेन्द्र जी की व्यक्तिवादी धारणा ही क्रियाशील है ।

आलोच्य उपन्यासों में पुरूष पात्रों की एक ओर श्रेणी हो, जो स्वयं को क्रान्तिकारी प्रदर्शित करते है । इस श्रेणी में ऐसे पात्रों का चित्रण

---

1. जैनेन्द्र कुमार : विवर्त : पृ0 सं0 127
2. जैनेन्द्र कुमार : सुनीता : पृ सं0 167
3. जैनेन्द्र कुमार : व्यतीत : पृ0 स0 104
4. जैनेन्द्र कुमार : सुखदा : पृ0 सं 87
5. जैनेन्द्र कुमार : अनामस्वी : पृ0 सं0 254
6. शवीरानी गुर्टू : वैचारिकी : पृ0 सं0 126

हुआ है जो मूलतः प्रेमी है और प्रेम प्रकित्रया में नारी ससर्ग की अदम्य लालसा लिये हुए कान असुक्ति और अहंवाद से पीडित होकर वे क्रान्तिकारी बन जाते है इसीलिये उसमें देशभक्ति का उन्माद कम प्रेम का दाह अधिक है बल्कि प्रेम करना ही उनका मुख्य व्यवसाय है उनमें आत्म हनन स्वरति बिलगावं और मानसिक विकृतिया है वे अहंम की पुष्टि के लिये असामाजिक कृत्य करते है और आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर आश्रित है ।[1]

साहित्य के बारे में अपने विचार व्यक्त करते समय जैनेन्द्र ने इसके उद्देश्य पक्ष पर बहुत जोर दिया वस्तुतः प्रेमचन्द के समान जैनेन्द्र भी साहित्य की उपयोगिता को स्वीकार करते हुये इसके उन्नायक रूप और फलस्वरूप इसके दायित्वकी ओर ध्यान दिलाते है तभी तो उपन्यास की उपयोगिता के बारे में उनका कहना है उपन्यास का काम है कुछ आगे की भविष्य की सम्भावनाओं की जरा झाकी दिखाना और जो कुछ अब है उसकी तह हमारे सामने खोल कर रख देना ।[2]

अतः उनके मतानुसार जीवन की वर्तमान पेचदीगियों सुलझाते हुये इसके भावी विकास का मार्ग प्रशस्त करना उपन्यास का काम हे इस तरह वह उपन्यास में स्वप्न और सत्य वास्तव और कल्पना तथा आदर्श और सद्व्यवहार का सामंजस्य देखना चाहते है । जैनेन्द्र जी समाज के बहिरंग जीवन के चित्रण के बजाय व्यक्ति के अतंरग जीवन का चित्र खीचने का प्रयास किया हे इसलिये समाज के बाह्य जीवन के आर्थिक राजनीतिक व धार्मिक समस्याओं को लेने के बजाय उन्होने व्यक्ति के मन में उठने वाले संघर्ष और उसके मनोभावों के ज्वारभाटे के चित्रण की ओर ध्यान दिया दूसरे शब्दों में सामाजिक जीवन के विस्तार के अपेक्षा व्यक्ति के मन की गुथिंया और गहराइयों के मनोवैज्ञानिक चित्रों को अपने उपन्यास का विषय बनाया हे इसी प्रकार

---

1. शची रानी गूर्टू : वैचारिकी : पृ0 सं0 202
2. जैनेन्द्र : परख प्रस्तावना

जैनेन्द्र के उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कोटि में आते है । उन्होने व्यक्ति के मन में उठने वाले नाना संकल्पविकल्पों और घात प्रतिघातों को अपने उपन्यासों का विषय इसीलिए बनाया है कि वे इन विविध मनाभावों और जटिलताओं के मूल में स्थित नैतिक प्रश्नों ओर सामाजिक व्यवस्था के अन्दर विद्यमान नैतिक विषमताओं पर अधिक पकाश डाल सके । इस तरह व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक चित्रण के माध्यम से वे समाज की नैतिक स्थिति के चित्रण तक पहुंचना चाहते है । उनके पात्रों की मानसिक हलचलें अन्ततोगत्वा आदर्श एवं प्रवृत्ति में होने वाले विरोधों से ही उत्पन्न हुई है, इसलिये व्यक्ति की मानसिक व्याधि का निदान खोजते समय उनका मूलोद्देश्य सामाजिक जीवन की व्याधि का निदान ढूढंना है । एक तरह से जाना जाये तो व्यक्ति के माध्यम से वह सामाजिक जीवन का मूल्यांकन करना चाहते है । यही इनकी मौलिकता है ।

उपसंहार

जैनेन्द्र सजग कलाकार हे । उनकी रचनाओं में उनके युग की परिस्थितियों का गहरा प्रभाव है । जैनेन्द्र के युग की विचारों को समझने के लिये उनके युग की परिस्थितियों को जानना अत्यन्त जरूरी है । साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि कहा जाता है । वह अपने युग की राजनीतिक, आर्थिक धार्मिक तथा सामाजिक स्थितियों से प्रभावित होता हे । परिणाम स्वरूप उसकी रचाओं में युगीन परिस्थतियों की स्पष्ट छाप मिलती हे । जैनेन्द्र जी का मूलोद्देश्य राजनीतिक सामाजिक या आर्थिक न होकर व्यक्ति के आनतरिक पक्ष को प्रकट करना है । अतः उनकेऔपन्यासिक पात्र राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक मूल्य की अपेक्षा वैयक्तिक मूल्य की प्रतिस्थापना का मूल्य संक्रमणता की स्थिति से गुजरते हे ।

जैनेन्द्र के व्यक्तित्व परदो व्यक्तियों की स्पष्ट छाप पडी है । वे दोनो व्यक्ति उनकी माँ एवं मामा महात्मा भगवानदीन है । गांधीवादी विचारधारा जैन तथा बौद्ध धर्म का भी प्रभाव पडा हुआ हे । जैनेन्द्र की रचनाओं में घटनाओं एवंम चरित्रों का जो संकोचप्राप्त होता हे उसका प्रमुख कारण उनका संकोची चरित्र हे साहित्य में यह संकोच अस्पष्टता और रहस्य की सृष्टि करता है । जैनेन्द्र जी में अहंकार की भावना बिल्कुल नहीं थी । वे स्पष्टवादी सरल और ईमानदारएवं कर्मण्य और जीवन से संघर्ष करने वाले व्यक्ति थे । इनकी वेशभूषा बहुत सादी थी । इनका लेखकीय व्यक्तित्व उपन्यास की प्रत्येक पंक्ति में दिखाई पडता है । और इनकी जीवन दृष्टि की गहरी छाप प्रत्येक उपन्यास में अंकित है ।

जैनेन्द्र जी ने अनेक रचनाओं का सृजन किया है । सर्वप्रथम इन्होने कहानी की रचना की । इनकी कहानियों पर मनोविज्ञान तथा दर्शन का प्रभाव पडा हुआ है । इनकी कहानियां रूढबद्ध सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं को झकझोरती है । औपन्यासिक जीवन की बहिर्मूर्खता के प्रति विद्रोह करने वाले प्रथम उपन्यासकार जैनेन्द्र को स्वीकार किया गया हे । इनके उपन्यास में

समाजगत जीवन के प्रतिनिधित्व चित्रण की अपेक्षा व्यक्ति को मूलतः व्यक्ति स्वीकार कर उसकी धारणाओं को वाणी देने का प्रयास किया गया है । इनके उपन्यासो में व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत जीवन दर्शन और व्यक्तिगत मनोविज्ञान का निरूपण प्राप्त होता है । इसलिए इनके उपन्यासों को व्यक्तिवादी उपन्यास कहा जाता है ।

इनके निबन्धों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण पाया जाता है । इनके विचार निबन्धों में प्रस्फुटित हुए है । इन्होने अन्य कृतियों का भी सृजन किया है । इनके अनुदित ग्रन्थ सम्पादित ग्रन्थ तथा यात्रा संस्करण मिलते है ।

जैनेन्द्र जी के कथानक परमपरागत कथानक व्यैक्तिक है । समाज और व्यक्ति का संघर्ष उनमें नहीं है क्योंकि ऐसे किसी संघर्ष में लेखक को बिल्कुल भी प्रत्यय नहीं है । वहां यदि संघर्ष है तो व्यक्ति का अपने व्यक्तित्व से उसकी सीमा के परे नहीं है । इनके उपन्यासों में कथानक को गौण माना गया है । उनका आग्रह कथानक पर न होकर कानक के साध्सय पर ही अधिक है । इनके कथ्य का चयन क्षेत्र आदर्श पर राजनीति प्रेरित तथा मनोवैज्ञानिक कथ्य योजना के अन्तर्गत किया गया है । उपन्यास के कथ्य योजना का विश्लेषण करने के बाद इनके उपन्यासों के चरित्र चित्रण पर ध्यान देना जरूरी है । जैनेन्द्र जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा चिन्तन यदि किसी एक तत्व में सबसे ज्यादा प्रकट हुआ है तो वह चरित्र चित्रण में ही । क्रिया-कल्प की दृष्टि से जैनेन्द्र कुमार के सभी उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास हे । उपन्यासों में पात्रों की संख्या अति अल्प है । सभी पात्र बर्हिमुखी न होकर अन्तमुर्खी अधिक है । सामाजिक बन्धनों परम्परित मूल्यों और अपनी व्यक्तिगत समस्यापओं से घिरे रहने के कारण उनकी मनः स्थिति अत्यन्त कुण्ठित रहती है । सभी पात्र चाहे पुरूष हो या स्त्री, अभुक्त काम भावना से पीडित रहते है । इसी के फलस्वरूप उनके अन्तर्मन में द्वन्द होने लगता है ।

जैनेन्द्र जी परम्परागत सामाजिक मूल्यों का घोर विरोध करते है । उनकी धारणा है कि यदि ये मूल्य व्यक्तित्वविकास में बाधक है तो इनमें परिवर्तन अवश्य लाना चाहिए या व्यक्ति को स्वतन्त्र जीवन यापन का सुअवसर मिलना चाहिए । यदि ऐसा नहीं होगा तो व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकेगा, इससे उसकी आत्मा का हनन होगा ही साथ ही समया- नुसार वह चोरी अपराध, पाप आदि कृत्यों में भी ग्रहण लेना । जैनेन्द्र की दृष्टि में प्रेम, अन्तर्जातीय विवाह अवैध सन्तान आदि का होना अनैतिकतापूर्ण कार्य नही है । अनैतिकता तो इसमें है जब व्यक्ति चोरी छिपे इस प्रकार के कार्यो को करता है । इसलिए उनकी धारणा है कि समाज को व्यक्ति के निजी कार्यो में बाधानहीं डालनी चाहिए । समाज में रहते हुए भी जैनन्द्र के पात्र धीरे धीरे सामाजिक सम्बप्न्ध्यो से उठकर न तो साधारण ही रह पाते है और न ही असाधारण की कोटि में पहुंच पाते है । उनके व्यक्तित्व का अनिर्णीत द्वन्द लेखक के मध्यम वर्गीय चरित्र और व्यक्तित्व की दत है । जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के सामाजिक कवर्ग को तीन भागों में आर्थि आधार पर विभाजित किया गया है - उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग । इन्होने संयुक्त पारिवारिक दृष्टिकोण को आदर्श की दृष्टि से देखा है । उनके उपन्यासों में विहंखलित होने वाले पारिवारिक जीवन की अनेक विसंगतियों का विशद वर्णन हुआ है । ये वर्तमान समाज में प्रचलित दाम्पत्य पद्धति के विरोधी है । इनके लिये प्रेम भावनागत विष्य से भौतिक नहीं । इनके उपन्यासों में सामाजिक संकल्पनाओं के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है ।

जैनेन्द्र मनोविज्ञान से प्रभावित थे । उनके अधिकांश चरत्रि मनो विज्ञान के सिद्धान्तों पर खरे उतरते है । फ्रायकक के सिद्धार्नें ने व्यक्ति - मानस और व्यक्ति चेतना का जो रूप उद्घाटित कियका था उससेकउपन्यासकार जैनेन्द्र को ज्ञात हुआ कि बाह्य संघर्ष की प्रतिच्छाया या उसका विस्तृत रूप होता है । बाहर की घटनाओं में घटित होने से पहले उसे आंतरिक संघर्ष से जूझना होता है । इस तरह उपन्यासकार की दृष्टि में व्यक्ति और परिस्थिति

के संघर्ष का स्थान अन्तसंघर्ष ने ले लिया । फ्रायड , एडलर और युग के सिद्धान्तों ने उसे नई दृष्टि दी । इससे वह बडे आत्मविश्वास के साथ अपने पात्रों के मानस की चीर - फाड करने और उनके अचेतन की परत-पर परत खोलने में जुट गया । कोरे भावुकतापवूर्ण अनुमान का स्थान मनोवैज्ञानिक प्रणालियों ने ले लिया और वह अनुभवी मनोविश्लेषक की तरह मनोविश्लेषण स्वप्न विश्लेषण, प्रत्यवलोकन विश्लेषण, सम्मोह विश्लेषण को अपना नायक बनाया और सामान्य दैनिक जीवन की समस्याओं को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया ।

जैनेन्द्र जी के राजनैतिक तथा आर्थिकक चिन्तन पर गांधीवाद का प्रभाव पडा हुआ है । राजनीतिक जीवन मानवीय है । राजनीति निरंकुश नहीं होनी चाहिए । ये गांधी की तरह सत्य प्रेम अहिंसा नीति को राजनीति में देखना चाहते है । शक्ति के विकेन्द्रीकरण को महत्व देते है । साधन तो पवित्रता पर जोर देते है । राजनीति जर्जर नहीं चाहिए । इनके उपन्यासों की राजनीति पर राष्ट्रीय पुर्नजागरण का प्रभाप पड़ा हुआ है । इनका विचार है कि परमार्थ की प्रेरणा से आर्थिक विकास पर विचार कर, कार्य किया जाये तो भार का विकट आर्थिक संकट दूर हो सकता है । मानवीय गुणों से युक्त पैसों का बाजार चले तो शोषण वृत्ति और काले धन्धे अपने आप नष्ट हो जाएगें । इनके उपन्यासों में आर्थिक क्षेत्र में पूजींवाद और समाजवाद का विरोध किया गया है ।

शिल्प के क्षेत्र में भी जैनेन्द्र ने अद्‌भुत प्रयोग किए है । उन्होने परमपरागत शिल्प को ताडकर अपने उपन्यासों को नवीन शिल्प विधि पर अधिष्ठित किया हे ।2 स्वप्न फेंटेसी पूर्वदीप्ति पद्धति इत्यादि का प्रयोग करके इन्होने उपन्यासों के गुल्म कथानक को सुलझाने का प्रयास किया है । इनकी भाषा पर सुलझे हुए कलाकार की भाषा है । जो लक्षणा प्रधान तो हे । साथ ही उसमें संकेत प्रतीक बिम्बब आदि का भी आयोजन बडी सफलतापूर्वक हुआ है । इनकी भाषा में प्रसाद, माधुर्य ओज, तीनो गुण विद्यमान है । इनके

उपन्यासों में अनेक सुक्तियों के रूप में बिखरते हुए है । इनके उपन्यासों में पात्रों के संवाद मानसिक संटना के प्रतिकूल नहीं है । जैनेन्द्र जी नाटकीय अभिनयात्मक शैली के माध्यम से अपने अपने पात्रों का विकास किये है । इनके उपन्यास पर पडे हुए परिस्थिति का अपना एक अलग ही महत्व है ।

हिदी कथा साहित्य के परिप्रेक्ष्य में जैनेन्द्र की मौलिकता अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए हे । इनकी सुदीर्घ यात्रा पर पडे प्रभावों और उनसे कथा सन्दर्भो की विवेचना हुइ है । प्रेमचन्द्र तथा जैनेन्द्र आधुनिक हिन्दी उपन्यास के दो ध्रुव हे । दोनो कथाकारों में दो ध्रुवों जैसा अन्तर भी पाया जाता हे । किन्तु इनमें ठोसपन तथा केन्द्रीयता है । प्रगतिवादी परम्परा में जैनेन्द्र का विशिष्ट स्थान हे । इनके उपन्यासों में प्रगतिवादी परम्परा का प्रभाव पडा हुआ है । इन्होने अपने उपन्यासों में मानव मन के अन्तर्द्वन्द का अत्यन्त कुशलता से मार्मिक और प्रभावशाली चित्रण किया है । जैनेन्द्र , अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मानसिक उलझन, आंतरिक रहस्य आपेर मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता प्राप्त होती हे । कथानक चरित्र चित्रण संवाद योजना देश काल तथा शैली की दृष्टि से समान होते हुए भी नये नये प्रयोग नवीन शिल्प विधियां मिलती हे तथाचित कुछ महत्वपूपर्ण तथ्य इन उपन्यासकारों में अलगाव भी पैदाप कर देते है । प्रयोगवादी कथा साहित्य और जैनेन्द्र के उपन्यासों में समानता के साथ साथ वैभिन्यता भी दिखायी पडती है । प्रयोगवादी कथा साहित्य पर माक्कर्स और मनोविज्ञान का प्रभाव है तो मिलता ही है साथ ही साथ प्रकृतवादी कथा साहित्य का जैनेन्द्र के उपन्यासों पर भी प्रभाव पडा हुआ है । जैनेन्द्र अपने उपन्यास में समाज के बहिरंग जीवन के चित्रण के बजाय व्यक्ति के अंतरंग का चित्र खीचने का प्रयत्न करते है । व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक चित्रण के माध्यम से वे समाज की नैतिक स्थिति के चित्रण तक पहुंचना चाहते है । यही इनकी मौलिकता है । जैनेन्द्र जी की सदीर्घ कथा यात्रा पर पडे प्रभावों और उनसे प्रेरित कथा सन्दर्भो की

विवेचना हुयी है । उनके सहवर्ती कथा सन्दर्भो की विवेचना रचनाकारों से तुलना करते हुए जैनेन्द्र की मौलिकता का उद्‌घाटन बडे मनोयोग से किया गया है । इसी के साथ हिन्दी कथा साहित्य के सन्दर्भ से जैनेन्द्र के प्रदेय को भी अनुशीलित किया गया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

समीक्षात्मक ग्रन्थ

1. जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा : डा0 रामरतन भटनागर
2. जैनेन्द्र और उनका साहित्य : डा0 राजेन्द्रमोहन भटनागर
3. जैनेन्द्र की कहानिया एक मूल्यांकन : डा0 शकुन्तला शर्मा
4. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र : डा0 सावित्री मठपाल
5. जैनेन्द्र : व्यक्तित्व, कथाकार और चिंतक : बाकें बिहारी भटनागर
6. जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व : सं0 सत्यप्रकाश मिलिन्द
7. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास : रघुनाथ सरन झालानी
8. जैने और उनके उपन्यास : परमानन्द श्रीवास्तव
9. जैने उपन्यास ओर कला : डा0 विजय कुलश्रेष्ठ
10. जैनेन्द्र का जीवन दर्शन : कुसुम कक्कड
11. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : डा0 देवराज उपाध्याय
12. जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प : डा0 ओमप्रकाश शर्मा
13 जैनेन्द्र कुमार का उपन्यास साहित्य : श्री राम गुप्त
14. जैनेन्द्र के कथा साहित्य में अंतर्द्वन्द : रमला चतुर्वेदी
15. साहित्य का साथी : हजारी प्रसाद द्विवेदी
16. राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध : नन्द दुलारे बाजपेई
17. कुछ विचार (निबन्ध संग्रह भाग 1) प्रेमचन्द
18. बाल में बात : यशपाल
19. हिन्दी उपन्यास : डा0 सुरेश सिन्हा
20. हिन्दी उपन्यास : डा0 शिवनारायण श्रीवास्तव

21. हिन्दी उपन्यास : डा0 सुषमा धवन

22. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियां : लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

23. हिन्दी उपन्यास एवं अन्तर्यात्रा : रामदरश मिश्र

24. हिन्दी उपन्यास पहचान और परख : स0 इन्द्रनाथ मदान

25. हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता : डा0 सुखदेव शुक्ल

26. हिन्दी उपन्यास : सांस्कृतिक एवम मानववादी चेतना : डा0 सच्चिदानन्द राय

27. हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास : डा0 ओम शुक्ल

28. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना : डा0 कुंवर पाल सिंह

29. हिन्दी उपन्यास विवेचन : डा0 सत्येन्द्र

30. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना डा0 सुरेश सिन्हा

31. हिन्दी साहित्य पिछला दशक : सं0 विश्वनाथ

32. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियां : ठाकुर प्रसाद सिंह

33. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य : डा0 रमेश चन्द्र लवानिया

34. हिन्दी गद्य का वैभव काल : डा0 माधुरी दुबे

35. हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन : डा0 म0 ब0 शाह

36. हिन्दी के शरत जैनेन्द्र : डा0 रमेश जैन

37. पाश्चात्य काव्य शास्त्र सिद्धान्त और वाद : डा0 नगेन्द्र

38. प्रगतिशील साहित्य की विशेषताए : डा0 रामविलास शर्मा

39. मुक्तिबोध उपन्यास की विवेचना : डा0 गोपालराय

उपन्यास

1. परख
2. सुनीता
3. त्यागपत्र
4. कल्याणी
5. सुखदा
6. विवर्त
7 व्यतीत
8 मुक्तिबोध
9 अनन्तर
10. अनामस्वामी
11.

कहानी संग्रह

1. पंचसी
2. वातावन
3. नीलम देश की राजकन्या
4. एक रात
5. दो चिडिया
6. पाजेब
7. जय सन्धि
8. जयनेन्द्र की कहानियां भाग । से 10

निबन्ध संग्रह व आलोचना

1. जैनेन्द्र के विचार - सम्पादक प्रभाकरप नाचवे
2. प्रस्तुत प्रश्न
3 जड की बात
4. पूर्वोदय
5. साहित्य का श्रेय और प्रेय
6. मंचन
7. सोच विचार
8. काम, प्रेम और परिवार
9. राष्ट्र और राज्य
10. कहानी : अनुभव और शिल्प
11. परिपेक्ष
12. इतस्तत
13. प्रेमचन्द - एक कृति व्यक्तित्व
14. अकाल पुरूष गांधी
15. सूक्ति संचयन (जैनेन्द्र वाङ्गमय से)
16. समय हौर हम
17 समय, समस्या और सिद्धान्त
18. वृत्त विहार
19. प्रश्न और प्रश्न
20. बंगला देश एवम् पक्ष प्रश्न

अनुदित ग्रन्थ

1. मन्दालिनी (नाटक) मूल लेखक मेरी मेगेडिलीव अनुवाद सन् 1927 में और प्रकाशन सन् 1935

2. प्रेम में भगवान (कहानिया) मूल लेखक टालस्टाय (प्रकाशपन 1937
3. पाप और प्रकाश (नाट्क) मूल लेख टालस्टाय अनुवाद सन् 1937 में और प्रकाशन सन् 1953
4. यामा द पिट (उपन्यास) मूल लेख अलैक्जेंडर कप्रिम

सम्पादित ग्रन्थ

1. साहित्य चयन (निबन्ध संग्रह)
2. विचार वल्लरी (निबन्ध संग्रह)

यात्रा संस्मरण

1. ये और वे
2. कश्मीर की वह यात्रा
3. गाँधी कुछ स्मृतियाँ

पत्र पत्रिकायें

1.	हंस	: अप्रैल 1932
2.	आजकल	: मार्च 1960
3.	सारिका	: अगस्त 1963
4श	धर्म युग	: 1952
5.	साप्ताहिक हिंदुस्तान	: 1953
6.	आलोचना (त्रैमासिक) उपन्यास विशेषांक	: अक्टूबर 1951
7.	आलोचना वर्ष 2, अंक 1	
8.	आलोचना	: अप्रैल - जन0 1970
9.	ज्ञानोदय	: अगस्त 1954

ENGLISH - BOOKS

1.	Norman L. Mann	- Psychology.
2.	R.K. Mukrjee	- The Social Structure of Values.
3.	Thon Cruckshank	- The novelist as philosopher.
4.	Markes	- Brifes to a contribution to the critic of political Acconomi.
5.	H.R. Bhatia	- Elements of Educatonal Psychology.
6.	W.H. Hudson	- "An introduction to the Study of literature.
7.	Admond Foster	- Auspects oif the Novel.
8.	James E. Royce	- "Man and his nature.
9.	Young	- Contribution to Analytical Psychology.
10.	Fresud	- Dictonary of Psycholoannalysis" (Melonkalie).
11.	Adlor	- The Science of Living.